बी.ए. द्वितीय वर्ष

इतिहास, प्रथम प्रश्नपत्र

भारत का इतिहास (1200 से 1739 ई. तक)

मध्यप्रदेश भोज (मुक्त) विश्वविद्यालय – भोपाल

MADHYA PRADESH BHOJ (OPEN) UNIVERSITY-BHOPAL

Reviewer Committee

1. Dr. Ajay Khare
   Professor,
   Institute for Excellence in Higher Education,
   Bhopal.
2. Dr. Mamta Chansoria
   Professor,
   MLB College, Bhopal.
3. Dr. Rajesh Agrawal
   Professor,
   MLB College, Bhopal.

Advisory Committee

1. Dr. Jayant Sonwalkar
   Hon'ble Vice Chancellor,
   Madhya Pradesh Bhoj (Open)
   University, Bhopal.
2. Dr. L.S. Solanki
   Registrar,
   Madhya Pradesh Bhoj (Open)
   University, Bhopal.
3. Dr. L.P. Jharia
   Director DME,
   Madhya Pradesh Bhoj (Open)
   University, Bhopal.
4. Dr. Ajay Khare
   Professor,
   Institute for Excellence in Higher Education,
   Bhopal.
5. Dr. Mamta Chansoria
   Professor,
   MLB College, Bhopal.
6. Dr. Rajesh Agrawal
   Professor,
   MLB College, Bhopal.

COURSE WRITER

Jyoti Chourasia, Assistant Professor (History), Shri Guru Nanak Mahila Mahavidyalaya, Jabalpur, M.P.

Copyright © Reserved, Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal.

All rights reserved. No part of this publication which is material protected by this copyright notice may be reproduced or transmitted or utilized or stored in any form or by any means now known or hereinafter invented, electronic, digital or mechanical, including photocopying, scanning, recording or by any information storage or retrieval system, without prior written permission from the Registrar, Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal.

Information contained in this book has been published by VIKAS® Publishing House Pvt. Ltd. (Developed by Himalaya Publishing House Pvt. Ltd.) and has been obtained by its Authors from sources believed to be reliable and are correct to the best of their knowledge. However, the Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal, Publisher and its Authors shall in no event be liable for any errors, omissions or damages arising out of use of this information and specifically disclaim any implied warranties or merchantability or fitness for any particular use.

Published by Registrar, MP Bhoj (Open) University, Bhopal in 2020

VIKAS®

Vikas® is the registered trademark of Vikas® Publishing House Pvt. Ltd.

VIKAS® PUBLISHING HOUSE PVT. LTD.
E-28, Sector-8, Noida - 201301 (UP)
Phone: 0120-4078900 • Fax: 0120-4078999
Regd. Office: A-27, 2nd Floor, Mohan Co-operative Industrial Estate, New Delhi 1100 44
• Website: www.vikaspublishing.com • Email: helpline@vikaspublishing.com

SYLLABI-BOOK MAPPING TABLE

भारत का इतिहास (1200 से 1739 ई. तक)

Syllabi	Mapping in Book
इकाई—1 मध्यकालीन भारतीय इतिहास के स्त्रोत। दिल्ली सल्तनत की स्थापना एवं सुदृढीकरण – कुतुबुद्दीन ऐबक, इल्तुतमिश रजिया सुल्तान, बलबन। अलाउद्दीन खिलजी की विजय एवं सुधार। मंगोल आक्रमण।	**इकाई 1 :** मध्यकालीन भारतीय इतिहास के स्त्रोत का सर्वेक्षण, दिल्ली सल्तनत की स्थापना (कुतुबुद्दीन ऐबक, इल्तुतमिश रजिया, बलवन) तथा अलाउद्दीन खिलजी व मंगोल आक्रमण **(पृष्ठ 3–35)**
इकाई—2 मोहम्मद बिन तुगलक और फिरोजशाह तुगलक। दिल्ली सल्तलत का विकेन्द्रीकरण, विजयनगर एवं बहमनी साम्राज्य। तैमूर आक्रमण और उसका प्रभाव। मुगल आक्रमण – बाबर, हुमायूँ और शेरशाह सूरी। भारतीय इतिहास में राणा कुम्भा और राणा सांगा की भूमिका।	**इकाई 2 :** मुहम्मद बिन तुगलक, फिरोजशाह तुगलक, दिल्ली सल्तनत का विकेन्द्रीकरण और प्रांतीय शक्तियों का उदय, तैमूर का आक्रमण और उसका प्रभाव, मुगल आक्रमण – बाबर और हुमायूं, शेरशाह सूरी **(पृष्ठ 36–67)**
इकाई—3 अकबर–मुगल साम्राज्य सुदृढ़ीकरण एवं विस्तार – उसकी धार्मिक एवं राजपूत नीति। जहाँगीर और शहजहाँ, मुगल – सिक्ख संबंध। मराठों का उत्कर्ष, शिवाजी की विजय एवं उनका प्रशासन। औरंगजेब और मुगल साम्राज्य का पतन, नादिशाह का आक्रमण एवं उसके प्रभाव।	**इकाई 3 :** मुगल साम्राज्य का सुदृढ़ीकरण एवं विस्तार मुगल साम्राज्य का पतन मराठों का उत्कर्ष, यूरोपियनों का आगमन **(पृष्ठ 68–109)**
इकाई—4 सल्तनतकालीन सामाजिक व धार्मिक जीवन–भक्ति एवं सूफी आन्दोलन। भारत में संत परंपरा। सल्तनत काल– कृषि, उद्योग व्यापार, आर्थिक और प्रशासनिक व्यवस्था।	**इकाई 4 :** सल्तनतकालीन सामाजिक, धार्मिक एवं आर्थिक जीवन एवं प्रशासनिक व्यवस्था **(पृष्ठ 110–126)**
इकाई—5 मुगल प्रशासन, मनसबदारी व्यवस्था, सामाजिक एवं धार्मिक जीवन, स्त्रियों की स्थिति, मुगल काल में आर्थिक जीवन, कृषि, व्यापार, वाणिज्य एवं स्थापत्य कला। इतिहास में रानी दुर्गावती, जीजाबाई एवं चाँदबीबी की भूमिका।	**इकाई 5 :** मुगल काल का प्रशासन, सामाजिक, धार्मिक एवं आर्थिक जीवन **(पृष्ठ 127–144)**

विषय–सूची

परिचय **1–2**

इकाई 1: मध्यकालीन भारतीय इतिहास के स्त्रोत का सर्वेक्षण, दिल्ली सल्तनत की स्थापना (कुतुबुद्दीन ऐबक, इल्तुतमिश रजिया, बलवन) तथा अलाउद्दीन खिलजी व मंगोल आक्रमण **3–35**

1.0 परिचय
1.1 उद्देश्य
1.2 मध्यकालीन भारतीय इतिहास के स्त्रोत एवं सर्वेक्षण
1.3 दिल्ली सल्तनत की स्थापना : कुतुबुद्दीन ऐबक तथा इल्तुतमिश
1.4 रजिया एवं बलबन
1.5 मंगोल आक्रमण
1.6 अलाउद्दीन खिलजी की विजयें और सुधार
1.7 अपनी प्रगति जाँचिए प्रश्नों के उत्तर
1.8 सारांश
1.9 मुख्य शब्दावली
1.10 स्व-मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
1.11 सहायक पाठ्य सामग्री

इकाई 2: मुहम्मद बिन तुगलक, फिरोजशाह तुगलक, दिल्ली सल्तनत का विकेन्द्रीकरण और प्रांतीय शक्तियों का उदय, तैमूर का आक्रमण और उसका प्रभाव, मुगल आक्रमण – बाबर और हुमायूं, शेरशाह सूरी **36–67**

2.0 परिचय
2.1 उद्देश्य
2.2 मुहम्मद बिन तुगलक, फिरोजशाह तुगलक
2.3 दिल्ली सल्तनत का विकेन्द्रीकरण और प्रांतीय शक्तियों का उदय
2.4 तैमूर का आक्रमण और उसका प्रभाव
2.5 मुगल आक्रमण – बाबर और हुमायूं, शेरशाह सूरी
2.6 अपनी प्रगति जाँचिए प्रश्नों के उत्तर
2.7 सारांश
2.8 मुख्य शब्दावली
2.9 स्व-मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
2.10 सहायक पाठ्य सामग्री

इकाई 3: मुगल साम्राज्य का सुदृढ़ीकरण एवं विस्तार, मुगल साम्राज्य का पतन मराठों का उत्कर्ष, यूरोपियनों का आगमन **68–109**

3.0 परिचय
3.1 उद्देश्य
3.2 मुगल साम्राज्य का सुदृढ़ीकरण एवं विस्तार–अकबर
  3.2.1 पानीपत का द्वितीय युद्ध
  3.2.2 मुगल साम्राज्य का विस्तार
3.3 मुगल-राजपूत सम्बन्ध : महाराणा प्रताप
3.4 जहांगीर और शाहजहां : मुगल सिक्ख सम्बन्ध

3.5 मराठों का उत्कर्ष
3.5.1 मराठों के उत्कर्ष के कारण
3.5.2 शिवाजी की विजयें एवं उनका प्रशासन
3.5.2.1 शिवाजी की प्रारम्भिक विजये
3.5.2.2 बीजापुर से संघर्ष
3.5.2.3 शाइस्ता खाँ पर आक्रमण
3.5.2.4 शिवाजी द्वारा सूरत की प्रथम लूट
3.5.2.5 मिर्जा राजा जयसिंह और शिवाजी
3.5.2.6 पुरन्दर की सन्धि (जून 1665 ई.)
3.5.2.7 शिवाजी की आगरा में सम्राट से भेंट
3.5.2.8 मुगलों के साथ सन्धि
3.5.2.9 मुगलों के विरूद्ध पुनः युद्ध करना
3.5.2.10 शिवाजी का राज्याभिषेक
3.5.2.11 शिवाजी का कर्नाटक अभियान
3.5.2.12 शिवाजी के अन्तिम दिन और मृत्यु
3.5.3 शिवाजी का प्रशासन
3.6 मुगल साम्राज्य का पतन
3.6.1 मुगल साम्राज्य के पतन के लिए औरंगजेब का उत्तरदायित्व
3.6.1.1 औरंगजेब की धार्मिक नीतियाँ
3.6.1.2 औरंगजेब की दक्षिण नीति
3.6.1.3 औरंगजेब द्वारा कर वृद्धि
3.6.1.4 औरंगजेब की दोषपूर्ण प्रशासनिक व्यवस्था
3.6.1.5 औरंगजेब का शंकालु स्वभाव एवं अन्य त्रुटियाँ
3.6.2 मुगल साम्राज्य के पतन के अन्य कारण
3.7 नादिरशाह का आक्रमण एवं उनका प्रभाव
3.8 यूरोपियनों का आगमन
3.9 अपनी प्रगति जाँचिए प्रश्नों के उत्तर
3.10 सारांश
3.11 मुख्य शब्दावली
3.12 स्व-मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
3.13 सहायक पाठ्य सामग्री

इकाई 4: सल्तनतकालीन सामाजिक, धार्मिक एवं आर्थिक जीवन एवं प्रशासनिक व्यवस्था **110—126**

4.0 परिचय
4.1 उद्देश्य
4.2 सल्तनत कालीन सामाजिक जीवन
4.3 सल्तनत कालीन धार्मिक जीवन
4.4 भक्ति आन्दोलन
4.5 सूफी आन्दोलन
4.6 सल्तनत काल में आर्थिक जीवन, उद्योग-धंधे एवं कृषि
4.7 सल्तनत काल में प्रशासनिक व्यवस्था
4.8 अपनी प्रगति जाँचिए प्रश्नों के उत्तर
4.9 सारांश
4.10 मुख्य शब्दावली
4.11 स्व-मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
4.12 सहायक पाठ्य सामग्री

इकाई 5: मुगल काल का प्रशासन, सामाजिक, धार्मिक एवं आर्थिक जीवन **127—144**

5.0 परिचय
5.1 उद्देश्य
5.2 मुगलकालीन प्रशासन एवं संस्थाएँ
5.3 मनसबदारी व्यवस्था
5.4 मुगलकालीन सामाजिक जीवन एवं स्त्रियों की स्थिति
5.5 मुगलकालीन धार्मिक जीवन
5.6 मुगलकालीन आर्थिक जीवन, कृषि, व्यापार एवं वाणिज्य
5.7 स्थापत्य कला
5.8 अपनी प्रगति जाँचिए प्रश्नों के उत्तर
5.9 सारांश
5.10 मुख्य शब्दावली
5.11 स्व-मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
5.12 सहायक पाठ्य सामग्री

परिचय

टिप्पणी

किसी राष्ट्र के विकसित होने पर उसके अतीत की समीक्षा आवश्यक हो जाती है यह देखना जरुरी होता है कि उसकी विरासत का कौन सा हिस्सा प्रासंगिक है और कौन विकास के रास्ते में बाधक है। भारतीय इतिहास का मध्यकाल अक्सर तुर्क और मुगल शासन काल से की जाती है जिसका अर्थ है कि सामाजिक कारकों की जगह राजनीतिक कारकों को प्राथमिकता देना। यह अवधारणा इस मान्यता पर भी आधारित है कि पिछली कई सदियों के दौरान भारतीय समाज में बहुत थोड़ा बदलाव आया है।

भारत का इतिहास 1200 से 1739 ई. से संबंधित हैं भारत के इतिहास का 1206 से 1526 ई. तक कालखण्ड सल्तनत युग के नाम से जाना जाता है तथा 1526 से 1739 ई. तक का इतिहास मुगल युग के नाम से जाना जाता है। सल्तनत काल में मुस्लिम साम्राज्य की स्थापना हुई तथा इसकी जड़ें गहरी हुई परंतु इस व्यवस्था में स्थायित्व नहीं था। तुर्को के आधिपत्य के वर्षों में अनेक राजवंशों का उत्थान और पतन हुआ। तुर्को के बाद अफगान सत्ता में आए और उसके बाद मुगलों हाथ में सत्ता आई।

तुर्क-अफगान सुल्तानों में सल्तनत के सुदृढीकरण के प्रयासों में अपने धर्म संस्कृति और शासन प्रणाली को विजित क्षेत्रों मे डालने का प्रयास किया परंतु समय के साथ-साथ तुर्की शासन के दृष्टिकोण में भी परिवर्तन आने लगा। मुगल युग में अकबर के शासन काल में प्रशासकीय एवं राजनीति सुसंगठन के कारण मिश्रित प्रशासकीय अधो संरचना की स्थापना हुई। बाद में मुगलों के साथ पतन के साथ भारत में सामाजिक एवं राजनैतिक विखण्डन स्पष्टतः दिखाई देने लगा जो सम्भवतः प्रशासनिक शिथिलीकरण का परिणाम था इसके बावजूद मुगलकाल में भारत की सामाजिक सांस्कृतिक रचना यथावत बनी रही और समाज में पारस्परिक सहयोग एवं समन्वय की प्रक्रिया अनवरत चलती रही।

पुस्तक में महत्वपूर्ण राजनीतिक घटनाओं के साथ-साथ प्रशासनिक, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक संरचना और संस्कृति के क्षेत्र में जो महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए है और रेखांकित किया गया है।

यह पुस्तक स्व-अध्ययन सामग्री प्रारूप आधार पर तैयार की गई है जो पाँच ईकाइयों में विभक्त है। प्रत्येक इकाई विषय के परिचय से शुरु होती है जिसके बाद उस इकाई के उद्देश्य ही रुपरेखा दी गई है इन इकाईयों में विषय सामग्री को बहुत ही सरल व छात्रों की सुविधा को ध्यान में रखकर तैयार किया गया है ताकि छात्र कम से कम समय में इसका अध्ययन कर सकें। छात्रों की सुविधा हेतु संबंधित इकाई में अपनी प्रगति जाँचिए संबंधित प्रश्न उनके उत्तरों सहित दिए गए है जिससे छात्र उस इकाई के संबंध में अपने ज्ञान की परख कर सके। प्रत्येक इकाई के अंत मे स्व-मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास प्रश्न भी दिए हुए हैं जिससे लघु एवं दीर्घ उत्तरों वाले प्रश्न सम्मिलित हैं। संबंधित इकाई के अंत में इकाई का सार व मुख्य शब्दावली भी दी

हुई है जों छात्रों के पुनः सम्मिलन हेतु एक प्रभावशाली औजार के रुप में कार्य करता है। संपूर्ण पुस्तक को छात्रों को विषय के बारे में स्पष्ट, सरल और सुबोध पूर्ण बनाकर प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

मैं श्रीमान विवियन फ्रांसिस का धन्यवाद देना चाहुंगी जिन्होने पुस्तक के संबंध में समय-समय पर मुझे मार्गदर्शित करने का कार्य किया। इस पुस्तक को लिखने में मुख्य स्त्रोतों के संचयन एवं एकत्रित करने में महत्वपूर्ण सहयोग प्रदान किया, इस पुस्तक के लिए उपयुक्त सामग्री का संकलन में अपना अमुल्य सहयोग प्रदान किया, पुस्तक की शब्दावली एवं अर्थों को सूक्ष्मता से लिखने में मार्गदर्शित किया एवं इकाई वार वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के संचयन में महत्वपूर्ण सहयोग प्रदान किया।

–ज्योति चौरसिया

इकाई 1 मध्यकालीन भारतीय इतिहास के स्त्रोत का सर्वेक्षण, दिल्ली सल्तनत की स्थापना (कुतुबुद्दीन ऐबक, इल्तुतमिश, रजिया, बलवन) तथा अलाउद्दीन खिलजी व मंगोल आक्रमण

टिप्पणी

संरचना

1.0 परिचय
1.1 उद्देश्य
1.2 मध्यकालीन भारतीय इतिहास के स्त्रोत एवं सर्वेक्षण
1.3 दिल्ली सल्तनत की स्थापना : कुतुबुद्दीन ऐबक तथा इल्तुतमिश
1.4 रजिया एवं बलबन
1.5 मंगोल आक्रमण
1.6 अलाउद्दीन खिलजी की विजयें और सुधार
1.7 अपनी प्रगति जाँचिए प्रश्नों के उत्तर
1.8 सारांश
1.9 मुख्य शब्दावली
1.10 स्व-मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
1.11 सहायक पाठ्य सामग्री

1.0 परिचय

प्रथम इकाई में दिल्ली सल्तनत के राजनीतिक तथा सांस्कृतिक इतिहास का वर्णन है। इस काल में भारत में इस्लाम का विकास हुआ। इस्लाम ने भारतीय सभ्यता तथा संस्कृति को गंभीर रूप से प्रभावित किया। भारतीय राजा-महाराजाओं में आपसी एकता का अभाव था, इसी कारण मुस्लिम शासकों को भारत में सफलता मिली। बहोत साल तक मुस्लिमो ने भारत में शासन किया।

1.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- सल्तनतकाल में भारत में साम्राज्य की जड़ें गहरी हुई, परन्तु फिर भी व्यवस्था में स्थायित्व नहीं था।
- सल्तनतकाल में राजसत्ता निरन्तर परिवर्तित होती रही।

1.2 मध्यकालीन भारतीय इतिहास के स्त्रोत एवं सर्वेक्षण

टिप्पणी

सल्तनतकालीन भारतीय इतिहास का स्त्रोत

प्राचीन भारतीय इतिहास की तुलना में मध्यकालीन भारतीय इतिहास से संबंधित ऐतिहासिक सामग्री प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होती है। इसका मुख्य कारण प्राचीनकाल में ऐतिहासिक ग्रंथों का अभाव था। हमारा प्राचीन साहित्य मूलतः धार्मिक है, किन्तु मध्यकाल में यह समस्या नहीं है। प्राचीनकाल की अपेक्षा इस युग में अनेक ऐतिहासिक ग्रंथों की रचना हुई। विदेशी मुसलमानों के सम्पर्क में आने के कारण भारतीयों के दृष्टिकोण में परिवर्तन आया। सल्तनत काल में फारसी और अरबी के ग्रंथों की पर्याप्त रचना की गई। इन लेखकों को हम वैज्ञानिक इतिहासकारों की श्रेणी में नहीं रख सकते, क्योंकि वे केवल तत्कालीन शासकों के कार्यकलापों तक ही सीमित थे, परन्तु उन्होंने जो कुछ भी लिखा है, उससे सल्तनतकालीन इतिहास और कालक्रम की अच्छी जानकारी प्राप्त होती है।

सल्तनतकालीन प्रमुख ऐतिहासिक स्त्रोत

फारसी तथा अरबी साहित्य

तुर्क अफगान शासक मूलतः सैनिक थे और स्वयं शिक्षित नहीं थे। उन्होंने इस्लामी विधाओं और कलाओं को प्रोत्साहन दिया। प्रत्येक सुल्तान के दरबार में फारसी लेखकों, विद्वानों तथा कवियों का जमाव रहता था। उनके द्वारा लिखे ग्रंथों से उस काल के इतिहास की महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त होती है। इनका संक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार है–

तारीख-उल-हिन्द– इस ग्रंथ का लेखक अलबरूनी था। वह महमूद गजनवी के आक्रमण के समय भारत आया था। वह अरबी और फारसी भाषा का विद्वान था। इस ग्रंथ में उसने 11 वीं शताब्दी के प्रारंभ के हिन्दुओं के साहित्य, विज्ञान तथा धर्म का आंखों देखा सजीव वर्णन किया है। इस ग्रंथ के अध्ययन से तत्कालीन सामाजिक दशा का पर्याप्त ज्ञान प्राप्त होता है।

पंचनामा– यह ग्रंथ अरबी भाषा में लिखा गया है। बाद में इसका फारसी भाषा में अनुदान किया गया। इस ग्रंथ में मोहम्मद बिन कासिम के आक्रमण से पहले और बाद के सिन्ध के इतिहास का वर्णन मिलता है। इस ग्रंथ अरब आक्रमण के समय भारत की दशा का वर्णन भी मिलता है। इससे उस समय के इतिहास की अच्छी जानकारी मिलती है।

ताजुल मासिर– इस ग्रंथ का लेखक हसन निजामी था। इस ग्रंथ में 1192 ई. से 1228 ई. तक भारत की घटनाओं का विवरण दिया गया है। इसमें राजनीतिक घटनाओं के साथ-साथ सामाजिक तथा धार्मिक जीवन का उल्लेख किया गया। इस पुस्तक में विभिन्न स्थानों, मेलों तथा मनोरंजन के साधनों का उल्लेख किया गया है। दिल्ली सल्तनत के प्रारंभिक दिनों का प्रामाणिक इतिहास इस ग्रंथ में पर्याप्त रूप से मिल जाता है।

तारीख-ए-फिरोजशाही– इस ग्रंथ का लेखक जियाउद्दीन बरनी था। वह तुगलक शासकों का समकालीन था। इस ग्रंथ में उस काल के सामाजिक, आर्थिक तथा न्याय सुधारों का बड़ा सुन्दर वर्णन किया है। बरनी राजस्व के पद पर कार्यरत था। अतः उसने अपने ग्रंथ में राजस्व स्थिति का बड़े विस्तार से वर्णन किया है। उसने अपने ग्रंथ

टिप्पणी

में तत्कालीन संतों, दार्शनिकों, इतिहासकारों, कवियों, चिकित्सकों आदि के विषय में भी अपने ग्रंथ में लिखा है। बरनी ने अपने ग्रंथ में उस काल में सामाजिक तथा आर्थिक जीवन का भी परिचय दिया है। इसके साथ ही अलाउद्दीन खिलजी के शासन काल की सामाजिक तथा आर्थिक दशा का इस ग्रंथ में अच्छा प्रकाश डाला है, किन्तु इस ग्रंथ में धार्मिक पक्षपात की झलक है। फिर भी इस ग्रंथ का ऐतिहासिक महत्व है।

फतुहात-ए-फिरोजशाही– इस ग्रंथ में फिरोज तुगलक के शासन प्रबंध का बहुत अच्छा वर्णन किया गया है। इस ग्रंथ के लेखक के विषय में कहा जाता है कि स्वयं फिरोज तुगलक ने इसे लिखा है।

जैनुल-अखबार– इस ग्रंथ के लेखक अबु सईद थे। इस ग्रंथ में ईरान के इतिहास का वर्णन किया है। इस ग्रंथ से महमूद गजनवी के जीवन तथा क्रियाकलापों की जानकारी मिलती है।

तबकात-ए-नासिरी– इस ग्रंथ के लेखक मिनहाज-उस-सिराज था, जिसने गौरी की भारत विजय से लेकर 1260 ई. तक का वर्णन किया है। इस ग्रंथ निष्पक्ष रूप से घटनाओं का वर्णन नहीं किया है। फिर भी अनेक विद्वानों ने इस ग्रंथ की प्रशंसा की है। "फरिश्ता'' इस ग्रंथ को उच्चकोटि का ग्रंथ मानता है। हिन्दुओं के साथ क्या अत्याचार किये गये। उनका इस ग्रंथ में उल्लेख नहीं किया गया। इसलिए इसको हम निष्पक्ष नहीं कह सकते।

सीरत-ए-फिरोजशाही– इस ग्रंथ में फिरोजशाह के समय की जानकारी मिलती है। अनुमानतः इस ग्रंथ की रचना भी फिरोजशाह तुगलक द्वारा करवाई गई।

तारीखे-मसूदी– इस ग्रंथ का लेखक अबुल फजल मुहम्मद बिन हुसैन-अल-बहरी था। इस ग्रंथ में दरबारी षड़यंत्र तथा राजनीतिक चालों का सुन्दर वर्णन किया गया है।

किताब-उल-रहला– इस ग्रंथ का लेखक मोक्को यात्री इब्नबतूता था। सन् 1313 ई. में भारत आया और यहां 1342 ई. तक रूका। उसने मुहम्मद बिन तुगलक के दरबार में न्यायिक पद पर कार्य किया। अरबी भाषा में लिखे ग्रंथ में मुहम्मद बिन तुगलक के शासनकाल की राजनीतिक तथा सामाजिक स्थिति का अच्छा चित्रण किया है।

तारीख-ए-सलातीन-ए-अफगान– इस ग्रंथ में अफगानों के इतिहास का वर्णन किया गया है। इसमें लोदी वंश के शासनकाल का पर्याप्त इतिहास मिलता है।

हिन्दी, संस्कृत तथा स्थानीय भाषाओं का साहित्य

सल्तनतकाल के इतिहास की बहुत सी जानकारी हिन्दी, संस्कृत तथा स्थानीय भाषाओं के साहित्य से मिलती है। इस साहित्य में उस समय के ज्ञान-विज्ञान का अच्छा परिचय मिलता है। इस काल में रामानुज ने 'ब्रह्मसूत्रों' पर टीकाएं लिखीं। पार्थसार्थी ने 'कर्म मीमांसा' पर अनेक ग्रंथ लिखे। 'शास्त्रदीपक' इसमें प्रमुख है। जयदेव ने 'गीत-गोविन्द', 'हरकेलि ललित-विग्रह तथा 'प्रसन्न राघव' नाटकों की भी रचना की। जयसिंह सूरी ने 'हम्मीर-मद-मद्रन', रवि वर्मन ने 'प्रद्युस्नाभ्युदय', विद्यानाथ ने 'प्रताप रूद्र कल्याण', वामन भट्ट ने 'पार्वती परिणय' आदि नाटक लिखे गए। प्रसिद्ध कानून ग्रंथ 'मिताक्षर' की रचना विज्ञानेश्वर ने इस काल में की थी। यह इतिहास की अमूल्य निधि है। ज्योतिष के प्रसिद्ध विद्वान भाष्कराचार्य ने 'योग वैशेषिक' तथा 'न्याय-दर्शन' पर टीकाएं लिखीं। कल्हण की 'राजतरंगिनी' इस काल में लिखी गई। यह एक ऐतिहासिक ग्रंथ है।

प्रादेशिक भाषाओं में साहित्य से भी हमें महत्वपूर्ण ऐतिहासिक सामग्री मिलती है। 'चन्द बरदायी' के 'पृथ्वीराज रासो' नामक ग्रंथ से पृथ्वीराज चौहान के समय के इतिहास की जानकारी प्राप्त होती है। सारंगधर द्वारा रचित 'हम्मीर रासो' तथा 'हमीर काव्य' से हमें रणथम्भौर के राणां हम्मीर की जानकारी मिलती है। जगनक के आल्हा खण्ड से आल्हा-ऊदल नामक दो वीर सरदारों के इतिहास की जानकारी मिलती है। इसी प्रकार मैथली, बांगला, राजस्थानी तथा मराठी में अनेक ग्रंथ लिखे गये, जिनका ऐतिहासिक महत्व है।

विदेशी यात्रियों का विवरण

सल्तनतकाल में अनेक विदेशी यात्री भारत आये। उन्होंने भारत भ्रमण करके उसका सजीव चित्रण किया। उनके वर्णन, ग्रंथ इस काल के इतिहास की जानकारी के महत्वपूर्ण साधन हैं। उन यात्रियों के विवरण निम्नानुसार हैं–

अलबरूनी–

अलबरूनी ख्वारिज्म से भारत आया था। फारसी तथा अरबी भाषा का अच्छा ज्ञाता था। उसने संस्कृत, हिन्दू धर्म तथा दर्शन का अध्ययन किया। उसने अनेक ग्रंथों की रचना की, जिसमें से तारीख उल हिन्द प्रसिद्ध है। इससे 11वीं शताब्दी में प्रारंभ के हिन्दुओं के साहित्य, विज्ञान, धर्म, सामाजिक परम्पराओं का अच्छा ज्ञान प्राप्त होता है।

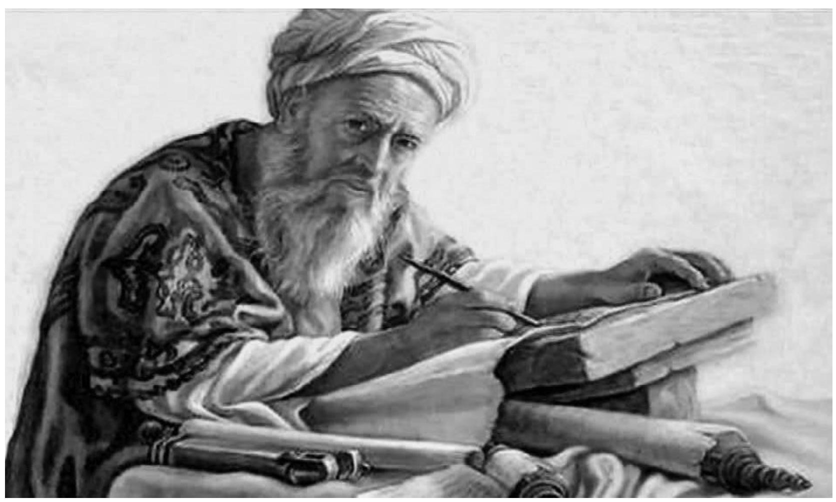

अलबरूनी
1017-1020 के मध्य भारत की यात्रा पर आये थे।
इनकी प्रमुख रचना किताब-उल-हिन्द थी।

इब्नबतूता–

इब्नबतूता 1313 ई. में भारत आया था। आठ वर्ष भारत में रहने के दौरान उसने भारत में अनेक स्थानों की यात्राएं की और भारतीयों के खान-पान, रहन-सहन, धर्म, परम्परा आदि के विषय में बारीकी से लिखा। मुहम्मद तुगलक के दरबार में काम करने के कारण उसे दरबारी राजनीति का भी व्यावहारिक ज्ञान था। प्रति प्रेम होने के कारण उसके भारत वर्णन में पशु-पक्षियों, वनस्पति का बड़ा सुन्दर वर्णन मिलता है। अपने ग्रंथ किताब उल-रहला में उसने भारत के विषय में वृहद रूप में लिखा है।

मार्कोपोलो–

मार्कोपोलो 13 वीं शताब्दी में भारत आया था। उसने दक्षिण भारत के सामाजिक जीवन का अच्छा चित्रण किया है।

मार्कोपोलो
इनको मध्यकालीन यात्रियों का राजकुमार की उपाधि दी गई।

अब्दुर्रज्जाक–

अब्दुर्रज्जाक 1442 ई. में भारत आया था। उसने विजयनगर साम्राज्य के काल के सामाजिक तथा आर्थिक जीवन का विस्तार से वर्णन किया है।

माहौन–

1405 ई. में चीनी सेना का एक दल भारत आया था, जिसमें माहौन नाम का एक मंत्री भी था। माहौन ने बंगाल तथा मालाबार के विषय में विस्तार से वर्णन किया है।

निकोलीकोन्टी–

निकोलीकोन्टी इटली का यात्री था। सन् 1520 ई. में भारत आया था। उसके वर्णन से तत्कालीन भारतीय समाज के रीति-रिवाज, रहन-सहन आदि की बहुमूल्य सामग्री प्राप्त होती है।

निकोलीकोन्टी
1420 ई. मे भारत आया एवं विजयनगर साम्राज्य की महत्वपूर्ण जानकारी इनके ग्रंथो से मिलती है।

टिप्पणी

डोमीगोडापेइज–

डोमीगोडापेइज पुर्तगाली यात्री था। उसने दक्षिण भारत की यात्रा के दौरान विजयनगर साम्राज्य का विस्तार से वर्णन किया।

उपर्युक्त विदेशी यात्रियों के अतिरिक्त और भी अनेक यात्री भारत आये। उनके लेखों से भी ऐतिहासिक सामग्री उपलब्ध होती है। एडो? बारबोसा (1516 ई.) निकटीन तथा स्टेफनो भारत आये। उन्होंने भारत भ्रमण कर, अपने ज्ञान तथा अनुभवों को लेखबद्ध किया है।

पुरातात्विक साधन–

सल्तनतकाल के इतिहास की जानकारी पुरातात्विक साधनों से भी होती है। इस काल की अनेक इमारतें आज भी उस काल के इतिहास को बताती है। इस काल की शैली भारतीय तथा विदेशी शैलियों का मिश्रण थीं। प्रारंभिक तुर्क विजेता ने हिन्दू, जैन मन्दिरों की सामग्री से मस्जिदों का निर्माण करवाया। कुतुबुद्दीन ऐबक ने कुतुब-उल-इस्लाम मस्जिद, अजमेर में ढाई दिन का झोपड़ा नामक मस्जिद तथा कुतुबमीनार बनवाई। यह तुर्की स्थापत्य कला का प्रसिद्ध नमूना है।

इस काल की इमारतों में बलबन का लालमहल, अलाउद्दीन खिलजी द्वारा निर्मित जमैया खाना मस्जिद तथा अलाई दरवाजा प्रसिद्ध है। तुगलक कालीन इमारतों में तुगलक शाह का मकबरा, तुगलकाबाद का नगर तथा कोटला फिरोजशाह प्रसिद्ध है। इन इमारतों को देखकर ऐसा लगता है कि स्थापत्य कला में कलात्मकता नहीं थी।

मुगलकालीन भारतीय इतिहास के स्त्रोत

मुगलकालीन इतिहास की जानकारी के प्रमुख साधन निम्नानुसार हैं–

मुगलकालीन साहित्य–

मुगलकाल में अनेक ऐतिहासिक ग्रंथों की रचना की गई, जो इस काल के इतिहास के आधार हैं। उनका वर्णन इस प्रकार है–

तुजुक-ए-बाबरी–

तुजुक-ए-बाबरी का लेखक स्वयं बाबर था। बाबर शिक्षित विद्वान अरबी, फारसी एवं तुर्क भाषा का ज्ञाता था। वह कविता भी करता था। उसके ग्रंथ तुजुकेबाबरी में भारत की राजनीतिक दशा का सुन्दर वर्णन मिलता है। तुजुके बाबरी के विषय में लेनपूल ने लिखा है – 'उसकी आत्मकथा उन बहुमूल्य लेखों में से एक है, जो समस्त युगों में बहुमूल्य रही है। बाबर के इस ग्रंथ से बाबर राजनीतिक तथा धार्मिक क्रिया-कलापों तथा विचारों की अच्छी जानकारी प्राप्त होती है।

हुमायूंनामा–

इस ग्रंथ की रचना गुलबदन बेगम ने की थी। इसमें हुमायूं के शासनकाल की जानकारी मिलती है।

तारीख-ए-शेरशाही और तारीख-ए-दौदी–

इन दोनों ग्रंथों से शेरशाह के शासनकाल के सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक स्थिति की जानकारी मिलती है।

तबकात-ए-बाबरी–

इस ग्रंथ के लेखक शेख जैतुद्दीन थे। इस रचना में तत्कालीन राजनीतिक घटनाओं का सटीक चित्रण किया गया है।

तारीख-ए-रशीदी–

इस ग्रंथ की रचना मिर्जा हैदर दुधलर ने की थी। इस ग्रंथ में बाबर के अंतिम दिनों व हुमांयू व शेरशाह के शासनकाल की घटनाओं का विवरण मिलता है।

तारीख-ए-फरिश्ता–

इस ग्रंथ में बाबर तथा हुमांयू के शासनकाल की अच्छी जानकारी प्राप्त होती है। इस ग्रंथ में दिया हुआ विवरण संतुलित तथा सही है।

तबकात-ए-अकबरी–

इस ग्रंथ का लेखक निजामुद्दीन अहमद था। इस ग्रंथ में हुमांयू तथा अकबर से संबंधित विषयों की चर्चा की गई है। फरिश्ता इस ग्रंथ को पूर्ण मानता है।

अकबरनामा–

इस ग्रंथ का लेख अबुल फजल था। यह ग्रंथ मुगलकालीन भारत का महत्वपूर्ण ग्रंथ है। इसमें तत्कालीन परिस्थितियों के साथ-साथ मनोरंजन के साधनों, रहन-सहन, वेशभूषा, खानपान, धर्म आदि का वर्णन मिलता है।

तुजके जहांगिरी–

यह जहांगीर की आत्मकथा का ग्रंथ है। इसमें तत्कालीन सामाजिक अवस्था का अच्छा चित्रण किया गया है। इससे हिन्दू समाज की दशा का अच्छा ज्ञान प्राप्त होता है। इससे इस काल की ललित कलाओं, साहित्य तथा चित्रकला की प्रगति का पर्याप्त ज्ञान प्राप्त होता है।

शाहजहां कालीन ऐतिहासिक ग्रंथ

इस काल के प्रमुख ग्रंथ बादशाहनामा तथा शाहजहांनामा हैं। बादशाहनामा की रचना अब्दुल हमीद लाहौरी तथा शाहजहांनामा की रचना इनायत खां ने की थी। इन ग्रंथों में शाहजहां के शासनकाल के राजनीतिक तथा सामाजिक जीवन, साहित्य तथा कला का अच्छा चित्रण किया गया है।

औरंगजेब कालीन ऐतिहासिक ग्रंथ

औरंगजेब के काल में मुन्त खान-उल-लुबाब, आलमगीर नामा तथा नुसखा-ए-दिलकश आदि ग्रंथों की रचना हुई। इन ग्रंथों से औरंगजेब कालीन राजनीतिक, सामाजिक तथा धार्मिक स्थिति की अच्छी जानकारी प्राप्त होती है।

साहित्यिक ग्रंथ

मुगलकालीन सभ्यता तथा संस्कृति की जानकारी साहित्यिक ग्रंथों से भी होती है। ऐतिहासिक ग्रंथों के समान सत्य, प्रामाणिक न होकर कल्पना पर आधारित होता है। इस काल में सूरदास, तुलसीदास, रहीम, रसखान, बीरबल आदि के ग्रंथों से तत्कालीन समाज की जानकारी मिलती है।

मुगलकाल में संस्कृत के भी ग्रंथ लिखे गए, जिनमें भानुचंद्र चरित्र, हरि सौभाग्य ग्रंथ, रस गंगाधर तथा गंगा लहरी ग्रंथ से कुछ जानकारी मिलती है। क्षेत्रीय भाषाओं में तुलसीदास, सूरदास तथा मीराबाई के बहुत लोकप्रिय ग्रंथ रामचरित मानस, सूरसागर प्रसिद्ध ग्रंथ लिखे गए, जिनसे उस काल के सामाजिक, धार्मिक तथा आर्थिक जीवन की अच्छी जानकारी प्राप्त होती है।

पुरातात्विक साधन

पुरातात्विक साधनों से मुगलकालीन इतिहास की महत्वपूर्ण जानकारी मिलती है। इस काल में स्थापत्य कला, चित्रकला तथा संगीत कला का चरम विकास हुआ। इस काल में अनेक किले, स्मारक, महल, मकबरे आदि का निर्माण हुआ। इस काल के भवनों में शेरशाह का मकबरा, हुमांयू का मकबरा, आगरा का लाल किला, फतेहपुर सीकरी की इमारतें, ऐतमादुल्ला का मकबरा, ताजमहल, दिल्ली का लाल किला, दीवान-ए-आम, दीवान-ए-खास, शीश महल, मोती मस्जिद, जामा मस्जिद आदि प्रसिद्ध हैं।

विदेशी यात्रियों का विवरण

जहांगीर के काल में दो प्रसिद्ध यात्री हॉकिन्स तथा टॉमस रो भारत आये। हॉकिन्स को जहांगीर ने अपने दरबार में मनसबदार बनाया था। हॉकिन्स ने बादशाह के रहन-सहन, दरबारी परम्पराओं तथा सामाजिक जीवन का बड़ा ही सुन्दर चित्रण किया है। सर टॉमस रो का भारत आने का उद्देश्य जहांगीर के साथ व्यापारिक संबंध स्थापित करना था। उसने मुगल साम्राज्य के वैभव का चित्रण किया। उनके विवरणों से भी बहुत सी ऐतिहासिक सामग्री उपलब्ध होती है।

अपनी प्रगति जाँचिए

1. तारीख-उल-हिन्द के लेखक का नाम था?
   (क) अलबरूनी   (ख) फिरोजशाह तुगलक
   (ग) बरनी   (घ) इब्नबतूता
2. तारीख-ए-फिराजशाही का लेखक था?
   (क) हसन निजामी   (ख) अलबरूनी
   (ग) बरनी   (घ) इब्नबतूता
3. तबकात-ए-अकबरी का लेखक था?
   (क) निजामुद्दीन अहमद   (ख) अबुल फजल
   (ग) मिर्जा हैदर दुधलर   (घ) शेख जैतुद्दीन

4. प्रसिद्ध कानून ग्रंथ 'मिनाक्षर' की रचना किसने की थी।

(क) वामन भट्ट	(ख) जयसिंह सूरी
(ग) विज्ञानेश्वर	(ख) भास्कराचार्य

टिप्पणी

1.3 दिल्ली सल्तनत की स्थापना : कुतुबुद्दीन ऐबक तथा इल्तुतमिश

दिल्ली सल्तनत काल में सबसे पहले गुलाम वंश के शासकों का शासनकाल रहा। मुहम्मद गौरी का अपने गुलाम पुत्रों पर अत्यन्त विश्वास था। सन् 1206 ई. में गौरी की अचानक मृत्यु हो गई। गजनी के शासन महमूद बिन गियासुद्दीन ने ऐबक को दिल्ली के शासक के रूप में मान्यता दी। कुतुबुद्दीन ऐबक ने एक नए साम्राज्य की नींव डाली। उसे गुलाम वंश कहते हैं। सन् 1206 ई. से 1290 ई. तक दिल्ली पर तीन वंशों ने शासन किया। कुतुबुद्दीन को छोड़कर सबने गद्दी पर बैठने के पूर्व ही दासता से मुक्ति प्राप्त कर ली थी। इस काल को दिल्ली सुल्तानों का काल कहा जाता है।

कुतुबुद्दीन ऐबक (1206 से 1210 ई.)

कुतुबुद्दीन की कठिनाईयाँ तथा उनका समाधान–

गौरी की सफलताओं का बहुत कुछ श्रेय कुतुबुद्दीन को था। अपने स्वामी की अनुपस्थिति में 1195 तथा 1196 ई. में राजपूतों के विद्रोह का दमन किया। सन् 1202 ई. में कालिंजर पर अधिकार किया। दिल्ली की सत्ता सम्भालते समय गौरी की मृत्यु के पश्चात् उसने अनेक कठिनाइयों का बड़ी सफलता के साथ सामना किया–

1. प्रतिद्वन्दियों की समस्या–

गौरी के गुलामों में अनेक ऐसे महत्वाकांक्षी लोग थे, जो शासक बनना चाहते थे। मुल्तान और उच्च का हाकिम कुबाचा, जिसके साथ ऐबक ने अपनी पुत्री का विवाह कर दिया। उसने ऐबक की अधीनता स्वीकार कर ली। दूसरा अली मर्दान खाँ था, जो बंगाल के शासक की हत्या करके वहाँ का शासक बन बैठा था, किन्तु वहाँ के खिलजी सरदार उससे घृणा करते थे। अली मर्दान ने ऐबक की अधीनता स्वीकार करके उसकी सहायता से बंगाल पर अपनी सत्ता स्थापित करके सरदारों का दमन किया।

2. पश्चिमोत्तर सीमा की रक्षा का प्रश्न–

याल्दौज के गजनी का शासक बन जाने के कारण पश्चिमोत्तर सीमा की सुरक्षा का प्रश्न पैदा हो गया था। याल्दौज स्वयं को गौरी का उत्तराधिकारी समझने के कारण दिल्ली को अपनी अधीनता में मानता था। इस समस्या को भांपकर ऐबक ने कुबाचा से मित्रता करके अपनी स्थिति मजबूत बना ली। याल्दौज कुबाचा से नाराज था। उसने कुबाचा पर आक्रमण कर दिया, लेकिन ऐबक ने याल्दौज को पराजित कर दिया और गजनी पर अधिकार कर लिया। गजनी के लोगों के विरोध के कारण वह दिल्ली लौट आया।

3. विद्रोहियों की समस्या–

गौरी की मृत्यु के पश्चात् अनेक हिन्दू शासकों ने तुर्की सत्ता को उखाड़ फेंकने का प्रयास किया। चंदेल शासक त्रैलोक्य वर्मा ने कालिंजर पर अधिकार कर लिया। प्रतिहार वंश के शासकों ने ग्वालियर का दुर्ग छीन लिया और तुर्कों को वहां से भगा दिया। हरिश्चंद्र के नेतृत्व में फर्रुखाबाद एवं बदायूं के क्षेत्र पर पुनः सत्ता स्थापित कर ली। सेन शासक पुनः बंगाल को जीतने का प्रयास करने लगे थे। कुतुबुद्दीन उत्तर-पश्चिम एवं बंगाल के अभियानों में लगा होने के कारण इन विद्रोहों के दमन के लिए सैनिक कार्यवाही नहीं कर सका।

4. मध्य एशिया से आक्रमण की आशंका–

भारत के नए तुर्की राज्य को सबसे अधिक खतरा मध्य एशिया की ओर से था। ऐबक का सबसे महत्वपूर्ण कार्य ख्वारिज्म के शाह को दिल्ली आने से रोकना था। उसने स्वयं मध्य एशिया की राजनीति से अलग रखा तथा दिल्ली को मध्य एशिया की राजनीति में फंसने नहीं दिया और दिल्ली को शाह के आक्रमण से सुरक्षित रखा।

कुतुबुद्दीन के कार्यों का मूल्यांकन

कुतुबुद्दीन ऐबक योग्य सेनापति, अचूक तीरन्दाज, साहसी तथा प्रतिभाशाली व्यक्ति था। एक गुलाम की अवस्था से उठकर सुल्तान के पद पर पहुँचना उसकी योग्यता तथा प्रतिभा का ही परिचय था। कुतुबुद्दीन का राजत्व राजनीतिक विचारों पर आधारित था। विजय और युद्ध उसको प्रेरणा देने वाले राजनीतिक तत्व थे। राजनीतिक ढाँचे को शक्तिशाली बनाए रखने के लिए विजित प्रदेशों को संगठित तथा सुरक्षित रखना आवश्यक मानता था। याल्दौज एवं कुबाचा के प्रति नीति, उसकी राजनीतिक कुशलता का प्रमाण है। उसने अपने हर युद्ध में सैन्य प्रदर्शन न करके नरमी दर्शाई, जो उस समय की महत्वपूर्ण परिस्थिति की आवश्यकता थी।

ऐबक को एक विजेता के रूप में माना जाता है। गौरी की सफलताओं में ऐबक का बड़ा हाथ था। उसने अपने नए तुर्की राज्य को शत्रुओं का दमन करके तुर्की सत्ता को सुदृढ़ बनाने का प्रयास किया। उसकी उदारता के कारण उसे "लाखबख्श'' (लाखों का दान करने वाला) कहा गया, किन्तु **ए.एल. श्रीवास्तव का मत है कि – ''उसने सहिष्णुता तथा उदार की नीति का अनुसरण नहीं किया। उसने लाखों व्यक्तियों का वध करवाया।''**

सैनिक योग्यता के साथ-साथ वह साहित्य, कलाप्रेमी था। उसने दो मस्जिद – कुबत-उल-इस्लाम और अजमेर में ढाई दिन को झोपड़ा का निर्माण करवाया। कुतुबमीनार का निर्माण उसी के द्वारा प्रारंभ किया गया, 1210 ई. में पोलो खेलते समय घोड़े से गिरकर उसकी मृत्यु हो गई।

इल्तुतमिश (1211-1236 ई.)

प्रारंभिक जीवन–

इल्तुतमिश इल्बारी तुर्क माता-पिता की संतान था। पिता के विशेष स्नेह के कारण ईर्ष्यावश भाईयों ने इसे बेच दिया। गुलाम के रूप में इल्तुतमिश ने अपनी स्वामीभक्ति का परिचय

दिया, जिससे वह अपने स्वामी ऐबक का कृपापात्र बन गया। अपनी योग्यता और प्रतिभा के कारण वह उच्च पद प्राप्त करता गया। खोखरों से युद्ध में उसके प्रदर्शन से प्रसन्न होकर गौरी ने उसे दासत्व से मुक्त कर दिया। कुतुबुद्दीन ने अपनी पुत्री का विवाह कर दिया। ऐबक की मृत्यु के बाद वह दिल्ली का सुल्तान बना।

टिप्पणी

इल्तुतमिश की कठिनाइयाँ तथा उसकी सफलताएं

दिल्ली का सुल्तान बनते ही उसे अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। उस समय दिल्ली का साम्राज्य छिन्न-भिन्न हो चुका था। राजपूत विद्रोह कर रहे थे। कुबाचा ने अपनी शक्ति बढ़ाकर कुछ क्षेत्रों पर अपना अधिकार जमा लिया था। जालौर, रणथम्भौर, ग्वालियर, दोआब तुर्कों के हाथ से निकल चुके थे। दिल्ली पर मंगोलों के आक्रमण का भय बना हुआ था। अतः इन समस्या को दूर करने की दिशा में इल्तुतमिश को निर्णय इस प्रकार लेने पड़े।

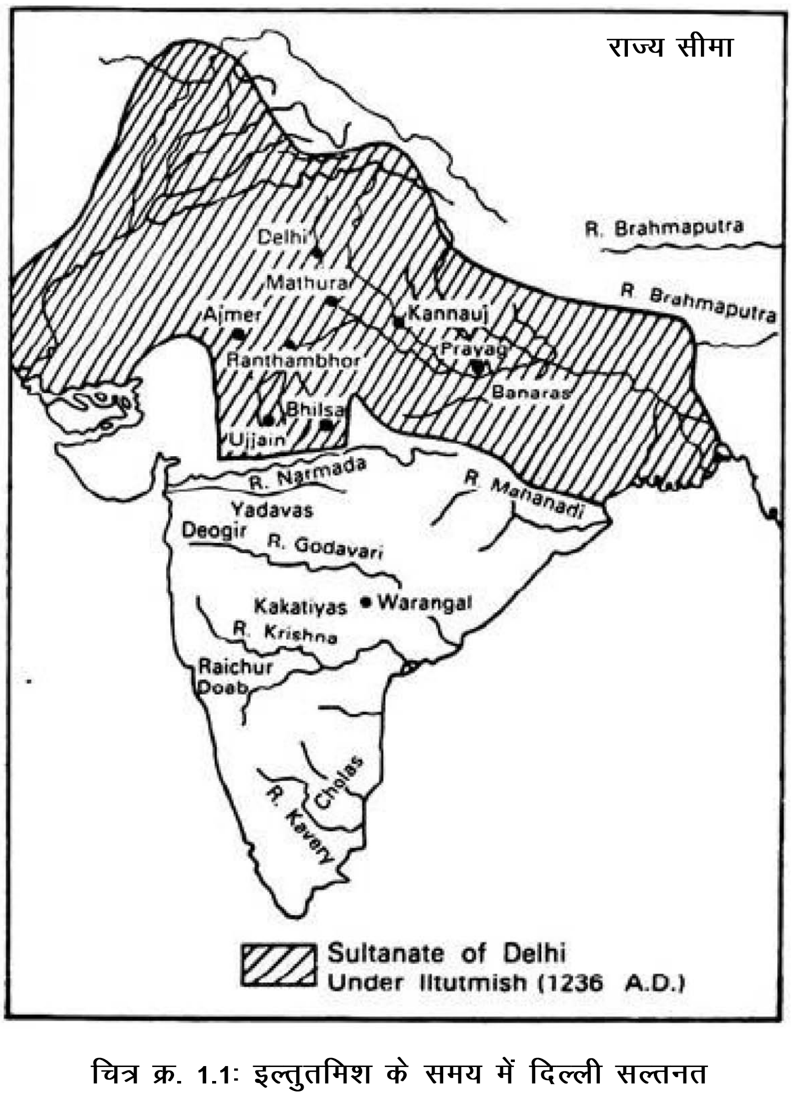

चित्र क्र. 1.1: इल्तुतमिश के समय में दिल्ली सल्तनत

1. दिल्ली के अमीरों का दमन–

दिल्ली के अमीर इल्तुतमिश को सुल्तान के रूप में मान्यता देने के लिए तैयार नहीं थे। उन्होंने सुल्तान के विरूद्ध षड़यंत्र रचना प्रारंभ कर दिया। अतः इल्तुतमिश ने सर्वप्रथम

टिप्पणी

दिल्ली के षड़यन्त्रकारी अमीरों का दमन किया और सैनिक जागीरदारों को अपने कब्जे में कर लिया। इस प्रकार दिल्ली में उसने अपनी स्थिति मजबूत कर ली।

2. याल्दौज का दमन–

याल्दौज इल्तुतमिश का मुख्य प्रतिद्वन्द्वी था। ख्वारिज्म के शाह के आक्रमण के समय वह भागकर लाहौर आ चुका था। अतः इल्तुतमिश ने ख्वारिज्म के शाह के आरल आक्रमण से बचने के लिए याल्दौज के विरूद्ध तराईन के मैदान में युद्ध कर उसे बंदी बनाकर दिल्ली को सुरक्षित कर लिया।

3. बंगाल के विद्रोहियों का दमन–

बंगाल के गियासुद्दीन तुगलक ने इल्तुतमिश की अधीनता मानने से इंकार कर दिया, जो इल्तुतमिश को नागवार लगा। सन् 1225 ई. में उसने बंगाल पर आक्रमण के लिए विशाल सेना भेजी। गयासुद्दीन सेना का सामना नहीं कर सका और उसने इल्तुतमिश की अधीनता स्वीकार कर ली। आगे खिलजी के पुत्र ने पुनः विद्रोह कर दिया। इल्तुतमिश ने पुनः आक्रमण करके बंगाल पर अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया।

4. कुबाचा का दमन–

याल्दौज के दमन के बाद इल्तुतमिश ने कुबाचा की ओर ध्यान दिया। मंगोलों के आक्रमण से भयभीत होकर शाह का उत्तराधिकारी भागकर पंजाब आया। उसने सिंध, दोआब तथा मुल्तान के कुछ हिस्सों पर अधिकार कर लिया, जिससे कुबाचा की शक्ति क्षीण हो गई। इस स्थिति का लाभ उठाकर इल्तुतमिश ने कुबाचा पर दो दिशाओं लाहौर और उच से आक्रमण कर दिया। आतंकित होकर कुबाचा भागते समय सिंध नदी में डूबकर मर गया। उसके राज्य पर इल्तुतमिश ने अधिपत्य कर लिया।

5. चालीस अमीरों के दल का गठन–

इल्तुतमिश ने चालीस तुर्क अमीर तथा गुलामों के दल को संगठित किया। इसमें योग्य, विश्वसनीय, प्रतिभाशील व्यक्ति थे। इस दल को उसने राजत्व का एक अंग बना लिया। इनके सहयोग से अपनी शक्ति को सुदृढ़ करने में बड़ा सहयोग मिला।

6. खलीफा का प्रमाण-पत्र–

1229 ई. में बगदाद के खलीफा ने एक घोषणा-पत्र द्वारा इल्तुतमिश को सुल्तान-ए-हिन्द की उपाधि प्रदान की और एक खिलाफत भिजवाई। इससे उसकी स्थिति और बढ़ गई। अब सही मायनों में इल्तुतमिश इस्लामिश जनता का शासक बन गया था। इल्तुतमिश की बनियान पर आक्रमण करने जाते वक्त बीमार पड़ने के कारण अप्रैल 1236 ई. में मृत्यु हो गई।

इल्तुतमिश का चरित्र एवं कार्यों का मूल्यांकन–

डॉ. ए.एल. श्रीवास्तव के अनुसार – ''उसने कुतुबुद्दीन के अधूरे कार्य को पूरा किया और उत्तरी भारत में शक्तिशाली तुर्की साम्राज्य की स्थापना की।''

1. सफल कूटनीतिज्ञ–

इल्तुतमिश वीर विजेता ही नहीं था, वरन् सफल कूटनीतिज्ञ भी था। अपने शत्रुओं को उसने दूरदर्शिता तथा कूटनीति द्वारा भी पराजित किया। अपनी शक्ति दृढ़ करने के लिए उसने तुर्क सरदारों का शक्तिशाली संगठन बनाया, जिसे 'चालीसा' या 'चहलगानी' कहा जाता है। इन्हीं अमीरों के बल पर उसने अपने सुल्तान पद की प्रतिष्ठा बढ़ाने में सफलता प्राप्त की।

2. योग्य प्रशासक–

इल्तुतमिश का अधिकांश समय यद्यपि युद्धों में व्यतीत हुआ, फिर भी उसने प्रशासन की ओर समुचित ध्यान दिया। के.ए. निजामी के अनुसार – ''इल्तुतमिश ने दिल्ली सल्तनत की शासन प्रणाली को एक रूप और तत्व प्रदान किया।'' वह पहला तुर्क सुल्तान था, जिसने शुद्ध अरबी सिक्के जारी किये। न्याय व्यवस्था की इब्नबतूता ने प्रशंसा की है। हिन्दुओं के प्रति इल्तुतमिश का व्यवहार कठोर था। उसे कला एवं साहित्य से लगाव था। कुतुबुद्दीन द्वारा प्रारंभ कुतुबमीनार का निर्माण पूर्ण करने का श्रेय इल्तुतमिश को है।

वास्तव में मुस्लिम साम्राज्य का वास्तविक संस्थापक इल्तुतमिश ही था, क्योंकि उसे नवनिर्मित तुर्की राज्य को नष्ट होने से बचाया, उसे वैधानिक स्थिति प्रदान करना, दिल्ली की गद्दी पर अपने वंश को उत्तराधिकारी की नींव स्थापित करने का प्रमुख श्रेय है। डॉ. आर.पी. त्रिपाठी का मत है कि **''भारत में मुस्लिम सम्प्रभुता का इतिहास वास्तव में इल्तुतमिश से ही प्रारंभ होता है।''**

अपनी प्रगति जाँचिए

5. अपनी योग्यता व प्रतिभा के कारण वह कुतुबुद्दीन ऐबक का कृपापत्र बनना गया।
   (क) अलाउद्दीन (ख) गयासुद्दीन
   (ग) इल्तुतमिश (घ) काश ने बुद
6. बगदाद के खासिफाने इल्तुतमिश को उपाधी प्रदान की।
   (क) सुल्तान-ए-हिन्द (ख) कुबाच-ए-डच
   (ग) सिंध (घ) हिन्दु
7. पहला सुल्तान–जिसने शुद्ध अरबी सिक्के जारी किये।
   (क) नासिरख (ख) कुतुबुद्दीन
   (ग) इल्तुतमिश (घ) बलबन
8. कुतुबुद्दीन दिल्ली का सुल्तान कब बना?
   (क) 1204 ई. (ख) 1205 ई.
   (ग) 1206 ई. (घ) 1207 ई.

9. मुस्लिम साम्राज्य का वास्तविक संस्थापक किसे माना जाता है?
   (क) कुतुबुद्दीन ऐबक (ख) इल्तुतमिश
   (ग) बलबन (घ) अलाउद्दीन खिलजी
10. चालीस मंडल का गठन किस शासक ने किया था?
   (क) बलबन (ख) कुतुबुद्दीन ऐबक
   (ग) इल्तुतमिश (घ) रजिया बेगम

1.4 रजिया एवं बलबन

रजिया (1236-1240 ई.)

रजिया सुल्तान, इल्तुतमिश की योग्य पुत्री थी। मिन्हाज लिखता है कि वह अपने पिता के समय राज्य व्यवस्था में भाग लेती थी। उसकी योग्यता व साहस को देखकर इल्तुतमिश ने उसे अपना उत्तराधिकारी बनाने का निश्चय किया। इल्तुतमिश की मृत्यु के बाद यद्यपि तुर्क अमीरों ने इल्तुतमिश की इच्छा की अवहेलना कर रूकनुद्दीन को गद्दी पर बैठा दिया, परन्तु वह अयोग्य सिद्ध हुआ। अतः दिल्ली की जनता अमीरों तथा सेना ने रजिया को सिंहासन (1236 ई.) पर बैठा दिया।

रजिया सुल्तान

(1236-1240 ई.) प्रथम मुस्लिम महिला शासिका जिसने सल्तनत काल मे अहम भूमिका का निर्वहन किया।

रजिया की कठिनाइयाँ एवं सफलताएं–

गद्दी पर बैठते ही रजिया के सामने कठिनाइयों का अंबार लग गया। कुछ तुर्क सरदार रजिया को पसंद नहीं करते थे और उसे सुल्तान मानने को तैयार नहीं थे। सल्तनत

का वजीर निजामुद्दीन जुनैदी, रजिया के विरोधियों से जा मिला था। रजिया स्त्री थी, स्त्री शासक की अधीनता में रहना तुर्क अमीर अपना अपमान समझते थे।

रजिया यह अच्छी तरह समझती थी कि शक्ति के बल पर ही सुल्तान की गद्दी की रक्षा की जा सकती है। उसने अपने विरोधियों एवं विद्रोहियों को कूटनीति एवं युद्ध द्वारा पराजित करने की नीति अपनाई। इस नीति के कारण महत्वपूर्ण तुर्क सरदार रजिया के साथ मिल गये और उन्होंने विद्रोही सरदारों की शक्ति कुचलने में रजिया का साथ दिया। लखनौती से देवल तक सभी मलिक तथा अमीर उसके आज्ञाकारी बन गये।

रजिया की सफलता के कारण तुर्क अमीरों एवं मलिक उससे ईर्ष्या करने लगे और कुछ समय बाद ही रजिया के विरूद्ध विद्रोह, असंतोष बढ़ने लगा। रजिया की निरंकुशता तुर्क अमीरों को सहन नहीं हुई, क्योंकि वे स्वयं को राज्य का स्तंभ समझते थे। दूसरी ओर कट्टर धार्मिक मुसलमान एक स्त्री शासिका और उसके बेपर्दा रहने, पुरुषों के वस्त्र धारण से क्रुद्ध रहने लगे और उसे गद्दी से उतारने के लिए षड़यंत्र करने लगे। एक हब्शी को अमीर पद के साथ-साथ उससे विशेष स्नेह अन्य तुर्क सरदारों के लिए असंतोष का बड़ा कारण बन गया।

रजिया का पतन–

रजिया को अमीर कठपुतली सुल्तान के रूप में गद्दी पर बैठाना चाहते थे, किन्तु सुल्तान बनते ही रजिया ने शक्ति बल का प्रयोग एवं स्वतंत्र निर्णय लेकर अमीरों को रूष्ट करना शुरू कर दिया। अतः भटिण्डा, लाहौर के सूबेदार एवं अन्य तुर्क सरदारों ने रजिया के विरूद्ध षड़यंत्र रचा, जिसमें आगे सफल होकर रजिया की हत्या (1240 ई.) हो गई।

रजिया का चरित्र, मूल्यांकन एवं पतन के कारण–

रजिया ने 3 वर्ष 6 माह 6 दिन शासन किया। वह अत्यंत सफल शासिका थी, जिसने रूकनुद्दीन के समय की बिगड़ी स्थिति को संभाला। तुर्क सरदारों के विद्रोहों को कुचलने, सुल्तान पद की प्रतिष्ठा बढ़ाने, सल्तनत के प्रति अमीरों को आज्ञाकारी बनाने जैसे कठिन कार्यों में सफलता हासिल की।

1238 ई. के पश्चात् उसका विरोध उग्र होने लगा। अन्ततः तुर्क सरदारों को उसे गद्दी से हटाने में सफलता मिली। ऐसा माना जाता है कि रजिया के पतन में उसका स्त्री होना उत्तरदायी था। मिनहाज लिखता है – ''भाग्य ने उसे पुरुष नहीं बनाया। अतः उसके समस्त गुण उसके लिए लाभप्रद हो सकते थे। रजिया के पतन में एक कारण यह माना जाता है कि याकूत के प्रति उसका विशेष अनुराग अन्य तुर्क अमीरों को पसन्द नहीं आया। यह उसकी अक्षम्य भूल थी। वास्तव में तुर्की अमीरों की स्वार्थपरता तथा महत्वाकांक्षा ही उसके पतन का मुख्य कारण थी।

गयासुद्दीन बलबन (1266-1287 ई.)

प्रारंभिक जीवन–

गयासुद्दीन बलबन इलबरी तुर्क था। बचपन में मंगोलों ने पकड़कर इसे गुलाम के रूप में बेच दिया। अपनी योग्यता के बल पर बलबन उन्नति करता गया तथा इल्तुतमिश के ''चालीसा'' का सदस्य बनने में सफल हो गया। रजिया को अपदस्थ करने वाले षड़यंत्र

में उसने भाग लिया। नासिरूद्दीन महमूद को गद्दी पर बैठाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इस काल में वह अच्छा प्रभावशाली बन चुका था। नासिरूद्दीन की मृत्यु के बाद बलबन दिल्ली की गद्दी पर बैठा।

बलबन की समस्याएं तथा उनका समाधान

1. ताज की शक्ति तथा प्रतिष्ठा में वृद्धि–

इल्तुतमिश के निर्बल उत्तराधिकारियों के कारण राज्य का वैभव क्षीण हो चुका था। चारों ओर अव्यवस्था का राज्य था। तुर्क सरदार अनियंत्रित हो चुके थे और सुल्तान उनके हाथ की कठपुतली थे। बलबन ने सर्वप्रथम इस दुर्दशा का अन्त करने तथा ताज की शक्ति तथा प्रतिष्ठा की स्थापना करने का निश्चय किया। गद्दी पर बैठते ही उसने साधारण लोगों से मिलना-जुलना छोड़ दिया। राजत्व के संबंध में उसने दैवीय अधिकारों पर बल दिया। उसने सिजदा और पाबोस का नियम लागू किया। अपने दरबार को ईरानी तौर-तरीकों से सजाया। इस प्रकार बलबन ने लोगों के मन में भय, विलासिता स्थापित करके ताज की प्रतिष्ठा पुनः स्थापित की।

2. चालीसा दल का नाश–

इल्तुतमिश के काल में निर्मित चालीस अमीरों का दल बलबन के काल तक आते-आते निरंकुश, महत्वाकांक्षी एवं अत्यंत प्रभावशाली हो चुका था। वे सुल्तान के मार्ग की बाधा बन चुके थे। इनके प्रभाव एवं बढ़ी हुई शक्ति को कमजोर करने तथा सुल्तान को शक्तिशाली बनाने के उद्देश्य से बलबन ने इनकी शक्ति कुचलने का कार्य किया। इसके लिये छोटे-छोटे अपराध के लिए इन अमीरों को कठोर दण्ड दिये गये। इस प्रकार उसने कपटपूर्ण तथा बर्बर तरीके से चालीस के मण्डल का नाश कर दिया और अपनी निरंकुशता स्थापित की।

3. विद्रोहों का दमन–

बलबन के गद्दी पर बैठने के समय हिन्दुओं ने विद्रोह करने शुरू किये थे। वे निरन्तर स्वतंत्र होने के प्रयास में लगे हुये थे। अवध तथा दोआब में निरन्तर विद्रोह होते रहे। तुर्कों के ठिकानों पर धावे करते रहते थे। दिल्ली के आसपास उन्होंने लूटमार मचा रखी थी। सर्वप्रथम बलबन ने विद्रोही मेवातियों के विरूद्ध प्रशिक्षित सेना भेजकर उनका बड़ी कठोरता पूर्वक दमन किया। उनके कत्लेआम करवाये गये, जंगल कटवा दिये गये। स्त्रियों एवं बच्चों को दास बनाकर बेच दिया गया। उनका दमन करने के लिए एक सेना वहीं रखवा दी गई। इस प्रकार रक्तपात का पालन कर बलबन ने मेवातियों के विद्रोह का दमन किया।

सन् 1279 ई. में बंगाल में तुगरिल बेग ने विद्रोह खड़ा कर दिया और अपने नाम के सिक्के जारी कर दिये। बलबन ने उसका दमन करने के किये लगातार तीन बार सेनाएं भेजी, जिसमें असफलता मिली, अंक में क्रोधित होकर स्वयं बलबन ने दो लाख सेना लेकर बंगाल पहुंचा, जिसे देखकर डरकर तुगलक भाग निकला, पीछा करते हुए ढांका के पास उसका वध कर दिया गया। बाकी पकड़े गये उसके साथियों को बलबन ने बाजार में फांसी पर लटकाया, देखने वालों ने ऐसा भंयकर दृश्य कभी नहीं देखा था। इस दृश्य को देखकर लोग अत्यधिक आतंकित हो गये।

4. उलेमाओं को राजनीति से पृथक करना–

बलबन से पहले उलेमा का राजनीति में बड़ा महत्व था। धीर-धीरे उलामोओं में दोष उत्पन्न होने लगे थे एवं इस्लामी राजनीति में सक्रिय भूमिका निभाने लगे थे। बरनी के अनुसार बलबन के समय में उलेमा न तो ईमानदार थे और न उनमें धार्मिकता रह गई थी। अतः बलबन ने उनके दबाव एवं अनावश्यक हस्तक्षेप खत्म करने के लिए उनसे सलाह लेना बंद कर दिया। धीरे-धीरे उनके राजनीतिक हस्तक्षेप पर रोक लगा दी गई।

1. राजस्व का सिद्धांत– राजस्व से तात्पर्य उन सिद्धांतों, नीतियों तथा कार्यो से हैं, जिन्हें सुल्तान अपनी प्रभुसत्ता, अधिकार एवं शक्ति को स्पष्ट करने के लिए अपनाता हैं। के.ए. निजामी के अनुसार–**'बलबन दिल्ली का संगठन एक मात्र ऐसा सुल्तान हैं, जिसने राजस्व के विषय में विचार स्पष्ट रूप से रखे।**

(अ) दैवीय सिद्धांत का समर्थन– 'बलबन ने राजा के दैवीय अधिकार का समर्थन किया बरनी के अनुसार–रसूल के अतिरिक्त और कोई भी व्यक्ति इतना सम्मानित तथा महान् नहीं है। जितना कि सुल्तान पृथ्वी पर सुल्तान ईश्वर का प्रतिनिधि हैं। बलबन ने जिल-अल्लाह (ईश्वर की छाया) की उपाधि धारण की बलबन ने यह सिद्ध करने का प्रयास किया कि सुल्तान की शक्ति का आधार जनता तथा अमीर नहीं हैं।

(ब) शाही वंशज होने का दावा– बलबन ने स्वयं को तूफान के अफरासियाब का वंशज बताया उसे अपने पौत्रों के नाम भी तूरानी परम्परानुसार रखे। उच्च वंश का होने पर उसे बड़ा गर्व था। राज्य के उच्च पदों पर उसने उच्च वंश के लोगों को ही नियुक्त किया। उसने शुद्ध रखने के तुर्की के लोगों को ही अपने दरबार में स्थान दिया था।

(स) सर्वसाधारण वर्ग से पूरी– सिंहासन पर बैठते ही बलबन ने अपने व्यवहार में गंभीरता धारण कर ली। वह जानबूझकर एकांतवास करने लगा। सर्वसाधारण वर्ग से बात करना भी उसने बंद कर दिया। एक बार 'फखर बाउनी नामक धनाढ्य व्यक्ति उससे भेंट कर नजराना देना चाहता था, किन्तु उसने अस्वीकार कर दिया।

(द) कठोर शिष्टाचार का पालन– बलबन शिष्टाचार पालन के प्रति बड़ा गंभीर था। वह हमेशा शाही वस्त्रों में रहता था। अपने निजी सेवकों के सम्मुख राजकीय वस्त्रों में रहता था। वह दरबार में सदा गंभीर बना रहता था। पुत्र की मृत्यु का समाचार सुनकर भी उसने अपनी मनोदशा में कोई परिवर्तन नहीं होने दिया। कभी किसी अमीर से उसने घनिष्ठता नहीं बनाई। वह किसी से हंसी-मजाक नहीं करता था और न ही दरबार में किसी को ऐसे व्यवहार की अनुमति थी।

(य) ईरानी आदर्शों एवं परम्पराओं का पालन– सुल्तान बलबन ने दरबारी वैभव की स्थापना को समस्त कार्यों में महत्वपूर्ण समझा। उसने दरबारी सजावट, प्रबन्ध तथा अनुशासन पर विशेष ध्यान दिया। उसने दरबार में ईरानी आदर्शों को स्थापित किया। 'सिजदा' और 'पाबोस की प्रथा शुरू की। उसके अंगरक्षक लम्बे तथा भयानक व्यक्ति थे। ईरानी त्यौहार 'नौरोज' को मनाना उसने प्रारंभ किया। बलबन के दरबार तथा सवारी के वैभव को देखने के लिए दूर-दूर से लोग आते थे।

टिप्पणी

सेना का संगठन–

बलबन ने अपनी निरंकुशता कायम रखने के लिए सेना के संगठन की ओर ध्यान दिया। बलबन से पहले तुर्की सैनिकों को सेवा के बदले जागीर देने की प्रथा प्रचलित था। अधिकांश भूमि बूढ़े सैनिकों, विधवाओं तथा नाबालिगों के अधिकार में थी। बलबन ने इन लोगों के जीवित रहते तक इस भूमि पर उनका अधिकार मान्य कर लिया, मृत्यु उपरांत ये भूमि राज्य के अधिनस्थ मानी गई।

बलबन ने सैनिकों की संख्या में वृद्धि की और उनके वेतन बढ़ा दिए। बलबन ने घोड़ों को दागने की प्रथा का प्रारंभ किया। इस व्यवस्था से सेना पूर्ण अनुशासित तथा सुव्यवस्थित हो गई।

गुप्तचर विभाग का संगठन–

बलबन की शासन व्यवस्था को सुचारू रूप से संचालित करने का श्रेय गुप्तचर व्यवस्था को था। उसने राज्य के प्रत्येक विभाग में गुप्तचर रखे। प्रत्येक प्रांत तथा जिले में गुप्त संवाददाता नियुक्त किए। उनके द्वारा प्रतिदिन राज्य के महत्वपूर्ण समाचार सुल्तान के पास पहुँचते थे, जो गुप्तचर अपने कर्तव्य का पालन नहीं करता था। उसे कठोर दण्ड दिया जाता था। गुप्तचरों को नकद वेतन मिलता था। वे सीधे सुल्तान के नियंत्रण में होते थे।

न्याय व्यवस्था–

बलबन की न्याय व्यवस्था कठोर तथा पक्षपात रहित थी। अपराधियों को वह बर्बरतापूर्वक दण्ड देता था। दण्ड देने में अवस्था, पद तथा स्त्री-पुरुष का भेद नहीं करता था। अपने प्रभावशाली अमीर बकबक (बदायूंका) को जिसने नौकर की कोड़ों से मारकर हत्या की थी। उसकी विधवा को ऐसे ही कोड़े मारकर हत्या करने के लिए सौंप दिया और कहा – "वह हत्यारा मेरा गुलाम था, अब तुम्हारा है। जैसे इसने तुम्हारे पति की हत्या की तुम भी इसको मार डालो।" सुल्तान प्रमुख अपराधों से संबंधित मामलों का न्याय स्वयं करता था।

चरित्र तथा कार्यों का मूल्यांकन–

दिल्ली के मध्यकालीन सुल्तानों में बलबन का स्थान बहुत ऊँचा है। उसने चालीस वर्ष तक दिल्ली सल्तनत की सेवा की। नवनिर्मित तुर्की साम्राज्य को सुदृढ़ के पद तक पहुँच जाना उसकी विलक्षण योग्यता तथा प्रतिभा का प्रतीक था। उसने पूर्ण स्वामी भक्ति के साथ नासिरूद्दीन महमूद की सेवा की। वास्तव में बलबन ने अपनी बुद्धि, योग्यता तथा स्वामी भक्ति के कारण उन्नति की।

प्रशासक के रूप में बलबन सफल रहा। उसकी शासन व्यवस्था का आधार रक्त तथा लौह नीति थी। उसने अपने विरोधियों का नृशंसतापूर्वक दमन करके चारों ओर आतंक पैदा कर दिया, किन्तु शांति स्थापित करने लिए इतनी कठोरता आवश्यक थी। बलबन ने अपने साम्राज्य का विस्तार नहीं किया। इसका अर्थ यह नहीं था कि, उसमें सैनिक निपुणता या योग्यता नहीं थी। उसने अपने सभी विरोधियों एवं विद्रोहियों का सेना के बल पर ही दमन किया और दिल्ली को मंगोलों के आक्रमण से सुरक्षित रखा।

टिप्पणी

शाहजादा मुहम्मद की मृत्यु का बलबन के स्वास्थ्य पर घातक प्रभाव पड़ा और सन् 1287 ई. में बलबन की मृत्यु हो गई।

गुलाम वंश के पतन के कारण–

कुतुबुद्दीन ऐबक द्वारा स्थापित गुलाम वंश सन् 1290 में कैकुबाद की मृत्यु के साथ समाप्त हो गया, 85 वर्षों के शासनकाल में दिल्ली सल्तनत पर कुतुबुद्दीन, इल्तुतमिश तथा बलबन जैसे योग्य शासकों ने शासन किया, परन्तु फिर भी इस वंश का पतन शीघ्र हो गया। इसके निम्न कारण थे–

1. उत्तराधिकारी के निश्चित नियम का अभाव–

तुर्कों में उत्तराधिकारी का कोई निश्चित नियम नहीं था। इस्लामी प्रभुत्व सिद्धांत के अनुसार कोई भी मुसलमान शक्तिशाली व योग्य हो, राजपद प्राप्त कर सकता था। कई बार योग्यता के अभाव में अयोग्य को गद्दी पर बैठाया गया।

2. दुर्बल उत्तराधिकारी–

दिल्ली सल्तनत की सत्ता सम्भालने में वही सुल्तान सफल हो पाया जो योग्य था। इल्तुतमिश के पुत्रों की अयोग्यता एवं विलासिता के कारण सत्ता दुर्बल हो गई और तुर्क अमीर शक्तिशाली हो गए।

3. दलबन्दी और विद्रोह–

प्रायः प्रत्येक सुल्तान ने सिंहासन पर बैठने के पश्चात् अपने विश्वस्त सेवकों के दल का गठन किया। इल्तुतमिश ने 'चालीसा' के बल पर सुल्तान की प्रतिष्ठा को बढ़ाया, किन्तु उसकी मृत्यु के पश्चात रजिया के लिए ये दल परेशानी का कारण बना। उसने और बलबन ने अपने विश्वस्तों का दल बनाया। दरबार में इस प्रकार की दलबंदी ने षड़यंत्रों को जन्म दिया। असन्तुष्ट सरदारों ने सुल्तानों के विरूद्ध विद्रोह करके सल्तनत को कमजोर बनाने का कार्य किया। कभी पश्चिम में विद्रोह उठता तो कभी पूर्व में, इन विद्रोहों का दमन करने के लिए सुल्तानों को अपने साम्राज्य विस्तार को छोड़ना पड़ा।

4. हिन्दुओं में असंतोष–

गुलाम शासक निरंकुश व स्वेच्छाचारी शासक थे। उनके शासन का आधार साम्प्रदायिक था। उन्होंने अपनी बहुसंख्यक हिन्दू प्रजा के प्रति असहिष्णु धार्मिक नीति का पालन किया। शासन कार्य में उनके कोई सहयोग नहीं लिया। इस पक्षपातपूर्ण नीति के कारण हिन्दुओं में निरन्तर असंतोष बढ़ता गया और सुल्तानों के विरूद्ध उनमें विद्रोह की प्रवृत्ति बढ़ती गई।

5. अमीरों की असीमित महत्वाकांक्षा–

अमीरों की असीमित महत्वाकांक्षा गुलामों के पतन का एक प्रमुख कारण थी। अमीरों ने राज्य के हितों की अपेक्षा व्यक्तिगत स्वार्थों को अधिक महत्व दिया। वे सुल्तान को अपने हाथ की कठपुतली बनाकर रखना चाहता था। कमजोर सुल्तानों के समय ये अमीर अत्याधिक महत्वाकांक्षी होते थे। जब बलबन ने इन पर प्रतिबंध लगाने शुरू किये तो उनमें असंतोष बढ़ने लगा।

टिप्पणी

6. सैन्य बल पर आधारित शासन–

सुल्तानों ने प्रायः सैन्य बल पर आधारित शासन की ही स्थापना की। सैन्य कमी के कारण पूरी तरह से विद्रोहों को कुचलने में सफल नहीं हो सके। उनकी नीतियों, सैन्य शक्ति पर निर्भर थी। यही कारण है कि निर्बल सुल्तानों की शीघ्र ही हत्या कर दी गई। इसी प्रकार उत्तर पश्चिमी सीमा पर मंगोल आक्रमण का भय सदैव बना रहा। इन कारणों से गुलाम सुल्तानों में से कोई भी राज्य की सीमाओं में वृद्धि नहीं कर पाया।

डॉ. ए.एल. श्रीवास्तव लिखते हैं "दिल्ली सल्तनत सैनिक राज्य था और जनता की इच्छा पर नहीं, बल्कि शक्ति पर आधारित था। इस प्रकार उपर्युक्त समस्त कारणों से तथाकथित गुलाम वंश के शासन का अंत हुआ।

अपनी प्रगति जाँचिए

11. गुप्तचर विभाग का संगठन किसने किया।
    (क) इल्तुतमिश (ख) बलबन
    (ग) रजिया (घ) कुतुबुद्दीन
12. गुलामों के पतन का मुख्य कारण था।
    (क) अमीरोंकी असीमिन महत्वाकांक्षा (ख) विलासिता
    (ग) बलबन (घ) कुतुबुद्दीन
13. रजिया के पतन का सबसे मुख्य कारण था?
    (क) उसका स्त्री होना (ख) याकूत से प्रेम करना
    (ग) पर्दा त्यागना (घ) तुर्की अमीरों का विरोध
14. राजत्व का सिद्धांत किसने स्थापित किया?
    (क) कुतुबुद्दीन ऐबक (ख) इल्तुतमिश
    (ग) बलबन (घ) रजिया बेगम

1.5 मंगोल आक्रमण

मंगोल जाति, मंगोलिया की बहादुर तथा लड़ाकू जाति थी। उन्होंने मध्य एशिया में आतंक मचा रखा था। मंगोलों ने ख्वारिज्म साम्राज्य की जड़ों को भी हिला दिया। मंगोलों ने मध्य एशिया के मुस्लिम राज्यों को छिन्न-भिन्न कर दिया और अफगानिस्तान, गजनी तथा पेशावर पर अधिकार कर लिया। उसके परिणामस्वरूप दिल्ली सल्तनत की पश्चिमी सीमाएं सुरक्षित नहीं रही। दिल्ली सुल्तानों के सामने पश्चिमी सीमा की सुरक्षा की समस्या पैदा हो गई। दिल्ली सल्तनत काल में मंगोलों ने भारत पर अनेक बार आक्रमण किये, जिसका दिल्ली सल्तनत पर गंभीर प्रभाव पड़ा।

दिल्ली सुल्तानों की मंगोल नीति

दिल्ली सल्तनत की राजनीति में स्थिरता बनाए रखने के लिए यह आवश्यक था कि सुल्तानों का काबुल, गजनी और कंधार क्षेत्र पर नियंत्रण स्थापित रहे। के.ए. निजामी

के अनुसार दिल्ली के सुल्तानों द्वारा उत्तर-पश्चिमी सीमा की रक्षा और मंगोलों के आक्रमणों को रोकने के लिए अपनाई गई नीति को तीन श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है–

1. अलगाव की नीति (1221 ई. से 1240 ई.)
2. उदासीनता की नीति (1240 ई. से 1266 ई.)
3. संघर्ष की नीति (1266 ई. से 1355 ई.)

अलगाव की नीति–

मंगोल आक्रमण का भय सबसे पहले सुल्तान इल्तुतमिश के समय में उत्पन्न हुआ। चंगेज खान के आक्रमणों ने ख्वारिज्म साम्राज्य को तहस-नहस कर डाला। इन परिस्थितियों में जलालुद्दीन भारत के लाहौर, मुल्तान के क्षेत्र में पहुँच गया, किन्तु चंगेज खां उसका पीछा करता रहा। इल्तुतमिश इस समय अपनी शक्ति संगठित करने में लगा हुआ था। मंगबरनी ने इल्तुतमिश से सहायता मांगी। सिन्धु नदी के उस पार चंगेज खान की उपस्थिति ने इल्तुतमिश की स्थिति कमजोर कर दी। इन परिस्थितियों में इल्तुतमिश ने प्रतिरक्षा की नीति अपनाई, जिसके अनुसार दिल्ली सल्तनत को मध्य एशिया की राजनीति से दूर रखने के लिए अलगाव की नीति अपनाएगा।

जलालुद्दीन मंगबरनी के दूत की इल्तुतमिश ने हत्या करवा दी और शरण देने के लिए मना कर दिया। इस प्रकार इल्तुतमिश ने मंगोलों को आपत्ति प्रकट करने का कोई मौका नहीं दिया। रजिया बेगम ने भी इल्तुतमिश की नीति का ही पालन किया। गजनी पर निरन्तर मंगोल आक्रमण से परेशान होकर करलूग ने भागकर भारत में आकर रजिया से मंगोलों के विरूद्ध संधि का एक प्रस्ताव किया, परन्तु संधि से इंकार कर रजिया ने अलगाव नीति को लागू रखा।

उदासीनता की नीति–

1240 से 1266 ई. के मध्य तीन सुल्तानों बहराम शाह, मसूद शाह और नासिरूद्दीन महमूद ने शासन किया। इन सुल्तानों की निर्बलता का लाभ उठाकर मंगोल पंजाब, सिंध, मुल्तान तक पहुँच गए थे। इन सुल्तानों के उदासीनता के नीति के कारण पश्चिमोत्तर सीमा पर मंगोल का प्रभाव बढ़ने लगा था।

संघर्ष की नीति–

बलबन के गद्दी पर बैठते ही उसने मंगोलों के प्रति आक्रमक नीति अपनाई। व्यास नदी सल्तनत की सीमा मान ली गई। बलबन ने मंगोलों से सल्तनत की रक्षा करने के लिए सेना और प्रशासन में परिवर्तन किये। उत्तर-पश्चिमी सीमा प्रांतों में सैनिक क्षमता को बढ़ाया। लाहौर को सैनिक प्रांत बनाया। शेर खां को सूबेदार नियुक्त कर उन प्रांतों में नए किले बनवाए एवं कुशल सेना नियुक्त की। मंगोलों के आक्रमण के भय से साम्राज्य विस्तार की नीति का परित्याग किया। फिर भी बलबन के दृढ़ प्रयासों के बावजूद 1279 में मंगोलों ने आक्रमण कर सतलज पार किया, जिसमें बलबन ने जवाब में अपने पुत्र को सेना लेकर भेजा, जिसमें उसने मंगोलों को प्रभावी रूप से रोका, किन्तु इस युद्ध में उसकी मृत्यु हो गई।

टिप्पणी

1292 ई. में हलाकू के पौत्र अब्दुल्ला के नेतृत्व में मंगोलों ने पंजाब पर आक्रमण किया। मुल्तान प्रांत के सुल्तान द्वारा मंगोलों को पराजित कर वापस जाने को विवश किया। अभी तक मंगोलों के आक्रमण लूटमार तक सीमित थे, परन्तु अलाउद्दीन खिलजी के समय में उन्होंने भारत-विजय तथा प्रतिकार की भावना से आक्रमण किए। अलाउद्दीन के शासनकाल में मंगोलों का पहला आक्रमण कादर के नेतृत्व में 1297-98 ई. में हुआ। उलुग खां एवं जफर खां के नेतृत्व में खिलजी सेना ने मंगोलों को पराजित किया, जिसमें हजारों मंगोल मारे गए। सन् 1299 ई. में 'साल्दी' के नेतृत्व में मंगोलों ने सिन्ध पर आक्रमण किया। अलाउद्दीन ने इस आक्रमण को रोकने के लिए जफर खां को भेजा, जिसने मंगोलों को बुरी तरह पराजित किया। उसने साल्दी मंगोल नेता एवं कई मंगोलों को बंदी बनाकर दिल्ली लाया। साल्दी के आक्रमण के कुछ समय पश्चात् 1299 ई. में ही कुतुमुलुग ख्वाजा ने आक्रमण किया। वह आक्रमण करता हुआ सीधा दिल्ली के पास पहुँचा। इस आक्रमण का सामना उलुग खां तथा जफर खां ने मिलकर किया। मंगोलों को पराजित होकर भागना पड़ा। भागते समय पीछा करते हुए जफर खां मारा गया।

1303 ई. में तरगी के नेतृत्व में चालीस हजार मंगोल पुनः दिल्ली के निकट पहुंच गये। अलाउद्दीन की सेना युद्ध के लिए तैयार नहीं थी। उसने सीरी के दुर्ग में शरण ली। मंगोल अलाउद्दीन की सुरक्षा व्यवस्था तोड़ नहीं पाये और उन्हें वापस लौटना पड़ा। मंगोलों ने दो बार दिल्ली को संकट में डाल दिया था। अतः उत्तर-पश्चिमी सीमा की सुरक्षा के लिए प्रभावकारी उपाय किए। उसने इन स्थानों में नए किलों का निर्माण कराया एवं पुराने किलों की मरम्मत करवाई तथा यहां अनुभवी योग्य सैनिक एवं सेनापतियों की नियुक्ति की। तरगी के पश्चात् 1305 ई. में अलीबेग तथा ख्वाजाताश की सम्मिलित सेनाओं तथा उसके बाद कुबुक और इकबालमन्द ने भारत पर आक्रमण किए, परन्तु शाही सेनाओं ने मंगोलों को बुरी तरह पराजित किया, हजारों मंगोल मार डाले गए। सन् 1308 ई. के बाद मंगोलों को भारत पर आक्रमण करने का साहस नहीं हुआ। बरनी के अनुसार – "दिल्ली और उसके प्रांतों से मंगोलों का आतंक समाप्त हो गया और शांति स्थापित हो गई। अलाउद्दीन खिलजी के पश्चात् गयासुद्दीन तुगलक (1320-1325 ई.) के समय हरिमुगल के नेतृत्व में मंगोलों ने भारत पर आक्रमण किया। इस आक्रमण को तुगलक की सेनाओं ने विफल कर दिया। सन् 1326-27 ई. में मंगोल नेता तरमशीरी ने दिल्ली के आसपास के क्षेत्रों में लूटपाट की, तब मुहम्मद बिन तुगलक धन एवं भेंट देकर वापस चल दिया। यह आक्रमण अंतिम आक्रमण था।

मंगोलों की पराजय के कारण–

मंगोल आक्रमणकारियों की असफलता के अनेक कारण थे–

1. चंगेज खां ने भारत पर आक्रमण नहीं किया। उसकी मृत्यु के पश्चात् मंगोल में फूट पड़ गई। ऐसी स्थिति में मंगोलों की आपसी वैमनस्यता के कारण उनकी शक्ति दुर्बल हो गई। **प्रो. हबीब के अनुसार – "मंगोलों के पारस्परिक विद्वेष और उनके पारस्परिक युद्धों ने दिल्ली सल्तनत की रक्षा की।"**

2. मंगोल आक्रमणकारी अपने साथ अपने स्त्रियों तथा बच्चों को भी साथ लाते थे। इससे उनकी सैनिक कुशलता में कमी हो जाती थी। मंगोलों में अपने पूर्वजों के समान फुर्ती, गतिशीलता, धैर्य गुण नहीं थे। **प्रो. निजामी के अनुसार – "मंगोल अब चंगेज द्वारा अर्जित ख्याति के योग्य नहीं रह गये थे। उनमें महत्वाकांक्षा तो थी, पर क्षमता नहीं रही।"**

3. इल्तुतमिश तथा बलबन ने कूटनीति अपनाकर मंगोलों को भारत में प्रवेश नहीं करने दिया था, किन्तु अलाउद्दीन खिलजी ने अपनी सैन्य योग्यता एवं श्रेष्ठ सैनिकों द्वारा मंगोलों को बहुत बुरी तरह पराजित किया। मंगोलों की अपेक्षा तुर्क सैनिक प्रशिक्षित एवं निपुण थे। अपने श्रेष्ठ सेनानायकों की वजह से अलाउद्दीन मंगोलों के आक्रमण विफल कर पाया।

मंगोल आक्रमण का प्रभाव–

दिल्ली सल्तनत की आंतरिक एवं बाह्य नीति पर मंगोलों के आक्रमण का गंभीर प्रभाव पड़ा। जब तक यह संकट रहा, तब तक दिल्ली के शासकों को अपनी सैनिक शक्ति मजबूत रखनी पड़ी। इल्तुतमिश से लेकर मुहम्मद बिन तुगलक तक सभी सुल्तानों को अपनी सेना पर सबसे अधिक ध्यान देना पड़ा था और अधिक धन व्यय करना पड़ा था। इसके अतिरिक्त उन्हें आंतरिक विद्रोहों तथा फूट को रोकने के लिए सतर्कता अपनानी पड़ी, जिससे आक्रमणकारी कोई लाभ न उठा सके। इन सुल्तानों ने शक्तिशाली सीमान्त नीति अपनाई। अपनी उत्तर-पश्चिम सीमा की सुरक्षा का विशेष ध्यान रखा, जिससे राजधानी दिल्ली सुरक्षित रह सके। बड़ा मात्रा में अस्त्र-शस्त्रों का निर्माण करवाया गया। साथ ही एक बड़ी विशाल प्रशिक्षित सेना बनाई, जिसमें सैनिकों की भरती एवं विशेष सुविधाएं सैन्य सामग्री का पूरा ध्यान रखा गया। दिल्ली सल्तनत कालीन सुल्तानों में अलाउद्दीन खिलजी ही एकमात्र ऐसा सुल्तान निकला, जिसने मंगोल आक्रमणों का सामना करने के साथ-साथ साम्राज्य विस्तार की भी नीति अपनाई। जब मुहम्मद तुगलक ने ऐसा करने का प्रयास किया तो उसे विफलता का सामना करना पड़ा। इस प्रकार मंगोलों के आक्रमण के भय से सल्तनत की नीति प्रभावित होती रही। इस प्रकार मंगोल आक्रमणों ने भारत की राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक क्षेत्रों को प्रभावित किया।

अपनी प्रगति जाँचिए

15. मंगोल आक्रमण का भय सबसे पहले इस सुल्तान के समय उत्पन्न हुआ।

(क) बलबन (ख) इल्तुतमिश

(ग) तुगबक (घ) खिलजी

16. सन् 1299 में किसके नेतृत्व में मंगोलो ने सिन्ध पर आक्रमण किया।

(क) रजिया (ख) मसूद

(ग) सालदी (घ) महमूद

17. अलाउद्दीन खिलजी के काल में पहला मंगोल आक्रमण किसने किया?

(क) तरगी का (ख) कुतुमुलुग ख्वाजा का

(ग) कादर का (घ) अलीबेग तथा ख्वाजा का

18. सल्तनतकाल के किस सुल्तान ने मंगोलों से संघर्ष की नीति बनाई?

(क) इल्तुतमिश (ख) बलबन

(ग) मुहम्मद बिन तुगलक (घ) अलाउद्दीन खिलजी

टिप्पणी

1.6 अलाउद्दीन खिलजी की विजयें और सुधार

सन् 1290 ई. में जलालुद्दीन खिलजी गद्दी पर बैठा। अपने उदार व्यवहार से उसने शीघ्र ही दिल्ली की जनता तथा तुर्की अमीरों का विश्वास प्राप्त करने में सफलता प्राप्त की। अपने छ वर्ष के अल्प शासन में इतनी उदारता दर्शाई, जिसका अलाउद्दीन खिलजी ने पूरा फायदा उठाया और उसका विश्वासघात करते हुए धोखे से हत्या करवा दी। सन् 1296 में अलाउद्दीन ने स्वयं को सुल्तान घोषित कर दिया।

अपने चाचा एवं ससुर की हत्या कर अलाउद्दीन ने दिल्ली की गद्दी हासिल की थी। अपने इस कलंक को वह धोना चाहता था। अतः उसने दैवीय राजत्व सिद्धांत एवं निरंकुशवाद पर आधारित शासन की स्थापना की। अपने शासन के प्रारंभिक वर्षों में उसने अपने विरूद्ध होने वाले विद्रोहों को बड़ी कठोरता से कुचला तथा बड़े कठोर प्रतिबंध लगाए, जिससे कि उसके विरूद्ध विद्रोह की संभावना नहीं हो। डॉ. लाल के अनुसार – "अलाउद्दीन ने अमीरों को दासों की स्थिति में ला दिया था।''

अलाउद्दीन खिलजी

इनका शासन काल 1296-1316 ई. तक रहा
असफल होते हुए भी सफल शासक कहा जाता है।

अलाउद्दीन की विजयें

अलाउद्दीन एक महत्वाकांक्षी शासक था। अपने प्रारंभिक अभियानों में उसे सफलता मिली। अभी भी उत्तर भारत के बहुत से क्षेत्र अलाउद्दीन के अधिपत्य से मुक्त थे। अतः शासक बनने के बाद उसने अपने साम्राज्य विस्तार की ओर ध्यान दिया।

उत्तर भारत की विजय–

गुजरात पर आक्रमण– गुजरात का राज्य उपजाऊ भूमि एवं व्यापार के कारण समृद्ध था। अलाउद्दीन के समय यहां का शासक रायकरण था। इस राज्य पर आक्रमण के लिए अलाउद्दीन ने दो दिशाओं से सेना भेजी। उलुग खां को सिंध की ओर से तथा नुसरत खां को राजपूताना के मार्ग से भेजा। शाही सेनाओं ने मार्ग में आने वाले शहरों को लूटा। गुजरात का शासक इस आक्रमण का सामना नहीं कर पाया और दक्षिण की ओर भाग गया। सुल्तान की सेना ने अन्हिलवाड़ा, खंबात, सोमनाथ आदि नगरों को खूब लूटा।

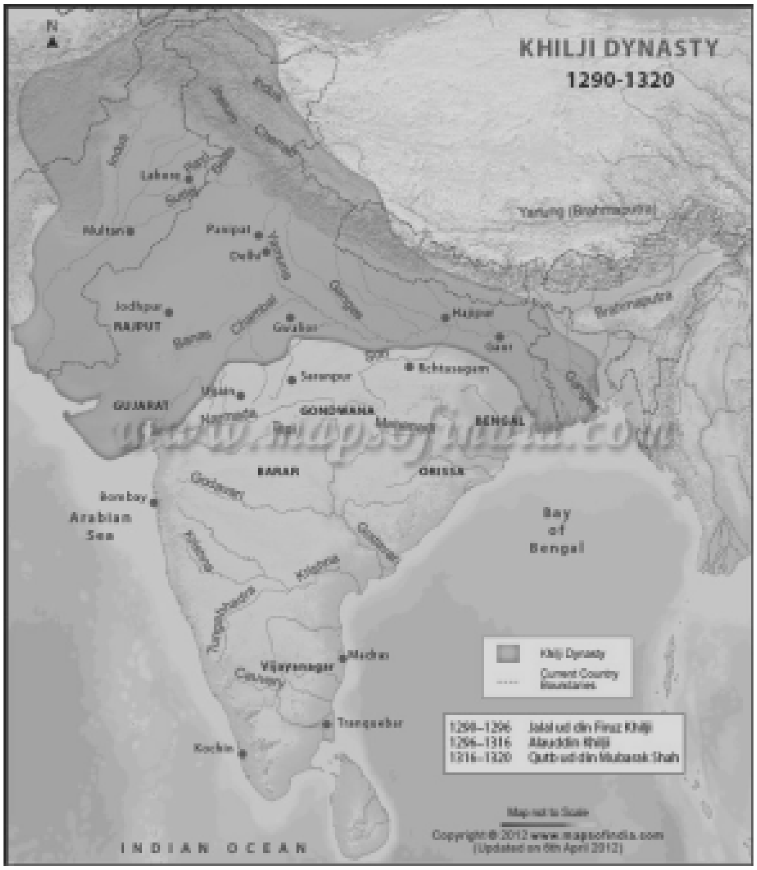

चित्र क्र. 1.2: अलाउद्दीन का साम्राज्य राज्य सीमा

रणथंभौर पर आक्रमण– रणथंभौर राजपूताना का सबसे अधिक शक्तिशाली राज्य माना जाता था। यह पहले दिल्ली राज्य का अंग रह चुका था। यहां के शासक हम्मीरदेव ने कुछ विद्रोही मुसलमानों को अपने यहां शरण दी थी। उलुग खां एवं नसरत खां को यहां आक्रमण के लिए भेजा। उन्होंने किले पर घेरा डाल दिया, जो एक वर्ष तक बराबर चलता था। किले के भीतर की सामग्री धीरे-धीरे समाप्त होने लगी और बाहर से सहायता मिलना कठिन हो गया। अन्त में 1301 ई. में हम्मीर देव का प्रधानमंत्री सुल्तान से जा मिला। इससे राजपूतों का मनोबल गिर गया। राणा हम्मीरदेव तथा उसके वंश के सभी वीर गति को प्राप्त हुए। नुसरत खां भी इस युद्ध में मारा गया।

चित्तौड़ की विजय– रणथंभौर के पश्चात् 1303 ई. में अलाउद्दीन ने चित्तौड़ पर आक्रमण किया। यहां की रानी पद्मिनी की सुन्दरता से प्रभावित होकर अलाउद्दीन ने

चित्तौड़ आक्रमण की योजना बनाई। रानी की सुन्दरता पर मोहित होकर विश्वासघात द्वारा उसने राणा रतनसिंह को कैद कर लिया। रानी के बदले राणा की रिहाई का वादा किया, किन्तु स्वाभिमानी सैनिकों ने स्त्रियों के वेश धरकर सुल्तान के डेरे पर आक्रमण कर दिया। राजमहल में रानी ने स्त्रियों के साथ जौहर कर लिया। इस प्रकार धोखे से चित्तौड़ को जीत कर अलाउद्दीन ने अपने पुत्र खिज्रखां को वहां का शासक नियुक्त कर दिया।

मालवा की विजय— चित्तौड़ की विजय के बाद राजपूतों की रियासतों ने अलाउद्दीन की अधीनता स्वीकार करना प्रारंभ कर दिया। उसमें मालवा के राजा ने अधीनता स्वीकार नहीं की। अलाउद्दीन आईन-उल-मुल्क-मुल्तानी को जालौर तथा उज्जैन पर आक्रमण के लिए 1305 ई. में भेजा, जहाँ पर उन्हें कठिन प्रतिरोध झेलना पड़ा, किन्तु अंत में उज्जैन, माण्डू, धार, चंदेरी तथा जालौर पर सुल्तान का अधिकार हो गया।

मारवाड़ की विजय— 1308 ई. में सुल्तान ने मारवाड़ को जीतने का प्रयास किया। इस उद्देश्य के लिए सिवाना दुर्ग का घेरा डाल दिया। यह घेरा लंबे समय तक चलता रहा। आक्रमणकारियों को कोई सफलता नहीं मिली। तब सुल्तान स्वयं सेना लेकर सिवाना पहुँचा। उसने वहाँ के राजा शीतलदेव को संधि करने के लिए बाध्य किया। सिवाना का राज्य उसने अमीरों में बाँट दिया।

दक्षिण भारत की विजयें— सुल्तान अलाउद्दीन पहला शासक था, जिसने दक्षिण भारत के राज्यों पर आक्रमण किया।

देवगिरी का आक्रमण— सुल्तान बनने से पहले भी 1294 ई. में अलाउद्दीन ने देवगिरी के राजा को पराजित किया था, किन्तु यहां के राजा ने सुल्तान को कर देना बंद कर दिया था। साथ ही उसने गुजरात के शासक कर्णदेव को शरण दी थी। इसलिए अलाउद्दीन ने 1306-07 ई. में मलिक काफूर को देवगिरी पर आक्रमण के लिए भेजा। मलिक काफूर ने रामचंद्र देव को पराजित कर दिल्ली भेज दिया। अलाउद्दीन ने राजा के साथ अच्छा व्यवहार किया और उसे 'रायरायन' की उपाधि दी और उसका राज्य वापस कर दिया। इस व्यवहार से रामचन्द्र देव इतना प्रभावित हुआ कि उसने फिर कभी भी सुल्तान के विरूद्ध विद्रोह नहीं किया।

तेलंगाना की विजय— 1303 ई. में तेलंगाना के असफल अभियान के कलंक को धोने के लिए अलाउद्दीन ने 1308 ई. में मलिक काफूर के नेतृत्व में एक सेना भेजी। राजधानी वारंगल चारों ओर सुदृढ दीवारों से घिरी थी। काफूर ने एकाएक आक्रमण कर दिया और वारंगल को चारों ओर घेर लिया। वहां का शासक बड़ी वीरतापूर्वक लड़ा, लेकिन अंत में उसे आत्म-समर्पण करना पड़ा। सुल्तान की अधीनता स्वीकार कर उसने भी वार्षिक कर देना स्वीकार किया।

पाण्डय राज्य की विजय— 'पाण्डय राज्य दक्षिण के अंतिम छोर पर स्थित था। वहाँ सुंदर पाण्डय और वीर पाण्डय दोनों भाईयों के बीच सिंहासन को लेकर गृहयुद्ध था। सुन्दर पाण्डय ने अपने भाई के विरूद्ध सुल्तान से सहायता मांगी। सुल्तान के लिए अच्छा अवसर था। अतः सुल्तान के आदेश पर 1311 ई. में काफूर ने पाण्डय राज्य पर आक्रमण कर मदुराई पर अधिकार कर लिया। वीर पाण्डय वहां से भाग खड़ा हुआ। काफूर ने नगर को जी भरकर लूटा, अनेक मंदिर नष्ट किये। अपने साथ वह लूट की अपार धन-सम्पत्ति लाया, जो इसके पूर्व कभी नहीं लाया था।

देवगिरी पर पुनः आक्रमण– राजा रामचन्द्रदेव की मृत्यु के बाद उसका पुत्र शंकरदेव गद्दी पर बैठा। उसने अपने को दिल्ली शासन से स्वतंत्र कर लिया और कर देना बंद कर दिया। इसलिए 1313 ई. में सुल्तान ने मलिक काफूर को पुनः वहाँ आक्रमण के लिए भेजा। इस युद्ध में शंकरदेव मारा गया। यहाँ भी काफूर ने विभिन्न नगरों को खूब लूटा।

दक्षिण विजयों से अलाउद्दीन को अपार धन-सम्पत्ति प्राप्त हुई। दक्षिण अभियान में सुल्तान को पूर्ण सफलता प्राप्त हुई। इसका मुख्य कारण यह था कि अलाउद्दीन ने इन राज्यों को जीतने के पश्चात् दिल्ली साम्राज्य में उन्हें मिलाया नहीं। वहाँ के राजाओं को ही वापस सत्ता सौंप दी। काफूर जैसे योग्य, वीर, साहसी सेनापति के नेतृत्व में सेना ने बड़ी कुशलता का परिचय दिया तो दूसरी ओर दक्षिणी राज्यों में एकता नहीं थी। इसलिए उन पर विजय प्राप्त करना आसान हो गया।

अलाउद्दीन के सुधार

एक प्रशासक के रूप में अलाउद्दीन खिलजी मध्यकालीन इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान रखता है। **डॉ. लाल के अनुसार ''अलाउद्दीन एक प्रशसकीय प्रयोगकर्ता था। उसने नवीन विचारों को जन्म दिया और नवीन भूमि पर उन्हें सोंपा।''**

शासन का केन्द्रीयकरण– सुल्तान निरंकुशता में विश्वास करता था। उसने अपने विरोधियों का नम्रतापूर्वक दमन करके सारी सत्ता अपने हाथ में केन्द्रित कर ली थी। यद्यपि उसने अपने सहयोग के लिए मंत्री परिषद नियुक्त किया था, किन्तु उन्हें केवल सुल्तान की आज्ञा का पालन करना पड़ता था। उसने अमीरों का दमन करके साधारण लोगों को उच्च पदों पर सम्मानित किया। वह अपनी इच्छानुसार ही कार्य करता था। इस प्रकार उसका शासन पूर्ण निरंकुश था।

न्याय व्यवस्था– अपने साम्राज्य में शांति एवं व्यवस्था की स्थापना के लिए उसने न्याय व्यवस्था की ओर ध्यान दिया। उसने परिस्थितियों के अनुसार जिन नियमों को उचित समझा उन्हें ही न्याय का आधार बनाया। न्यायाधीशों की सहायता के लिए पुलिस तथा गुप्तचरों की भी नियुक्ति की। दण्ड-विधान अत्यधिक कठोर था। अपराधियों के साथ-साथ सन्देह होने पर सहयोगियों को भी मृत्यु-दण्ड तथा अंग-भंग का दण्ड दिया जाता था। दण्ड देने में किसी के साथ रियायत नहीं की जाती थी। **ईश्वरीप्रसाद ने लिखा है – ''वह भाईचारे अथवा पारिवारिक संबंधों की भी चिंता नहीं करता था और बिना किसी भेदभाव के दण्ड दिया करता था।''**

सैनिक सुधार–

1. स्थायी सेना की व्यवस्था– अलाउद्दीन खिलजी पहला सुल्तान था जिसने स्थाई सेना की व्यवस्था की जो हमेशा राजधानी में तैयार रहती थी। सैनिकों की भर्ती के लिए उसने एक सेना मंत्री की नियुक्ति कर दी। उसके साथ वह स्वयं भी सैनिकों की भर्ती किया करता था। सैनिक योग्यता के आधार पर भर्ती किए जाते थे न कि वंश अथवा जाति के आधार पर। सैनिकों का हुलिया दर्ज किया जाता था, ताकि किसी प्रकार की प्रतिनियुक्ति न हो सके।

2. सैनिकों की नकद वेतन व्यवस्था– अलाउद्दीन से पूर्व सैनिकों को जागीर देने की प्रथा प्रचलित थी, जिससे सैनिकों का जागीर प्रबंध में ही समय बर्बाद होता था। अतः अलाउद्दीन ने इस प्रथा को बंद कर दिया और राजकोष से सैनिकों को नकद वेतन दिया जाने लगा। एक सैनिक का वेतन 234 टंका प्रतिवर्ष था। एक अतिरिक्त घोड़ा रखने पर 78 टंका अधिक मिलते थे। सैनिकों को घोड़े, हथियार तथा अन्य सामग्री राज्य की ओर से दी जाती थी।

3. घोड़ों को दागने की प्रथा– बहुधा सैनिक अच्छे घोड़ों के स्थान पर घटिया घोड़े दर्शाते थे, जो युद्ध के समय काम नहीं कर पाते थे। इस दोष को दूर करने के लिए सुल्तान ने घोड़े दागने की प्रथा प्रारंभ की। उपर्युक्त सुधारों से सेना का संगठन अच्छा हुआ और वह अपने सैनिक अभियानों में सफल रहा।

आर्थिक सुधार–

1. व्यक्तिगत संपत्ति तथा जागीरों का अपहरण– अलाउद्दीन खिलजी का यह मानना था कि अधिक धन के कारण लोगों में विद्रोह की भावना पनपती है। अतः उसने दान में दी हुई भूमि, माफीदारों की भूमि तथा राज्य द्वारा दी गई सम्पत्ति, ईनाम में दी गई भूमि सभी जब्त कर ली। उसने जागीर प्रथा का अंत कर दिया। इस प्रकार अपना स्वतंत्र अस्तित्व स्थापित करने वाले अमीरों पर नकेल कसी। इस प्रकार की भूमि पर राज्य का नियंत्रण होने से राज्य के राजस्व में भी वृद्धि हुई।

2. कर वृद्धि एवं वसूली में कठोरता– अलाउद्दीन ने करों में अत्यधिक वृद्धि कर दी। हिन्दुओं से भूमि कर उपज का 50 प्रतिशत तथा मुसलमानों से एक चौथाई लिया जाता था। हिन्दुओं को जजिया कर देना पड़ता था। इन सभी करों को वसूल करने के लिए कठोर नियम बनाए तथा कर वसूली का कार्य सेना को सौंप दिया। सैनिक बड़ी कठोरता तथा निर्दयता के साथ कर वसूलते थे। इससे राज्य की आय में वृद्धि हुई।

3. हिन्दू पदाधिकारियों के विशेषाधिकारों की समाप्ति– पुरानी राजस्व व्यवस्था के अनुसार हिन्दू मुकद्दम, खुत तथा चौधरी भूमि कर वसूल किया करते थे। इसलिए उन्हें कुछ विशेषाधिकार प्राप्त थे, लेकिन अलाउद्दीन ने उन्हें इन अधिकारों से वंचित कर दिया। अन्य सामान्य नागरिकों के समान उन्हें भी राज्य को सभी प्रकार के कर देने पड़ते थे। बरनी के अनुसार इन नियमों के परिणाम स्वरूप ''चौधरी, खुत और मुकद्दम इस योग्य नहीं रह गए थे कि वे घोड़े पर चढ़ सकते, हथियार बांध सकते अथवा अच्छे वस्त्र धारण कर सकते।''

4. भूमि का नाप– अलाउद्दीन के आर्थिक सुधारों में सबसे महत्वपूर्ण सुधार भूमि का नाप करवाना था। इसका उद्देश्य यह पता लगाना था कि कितनी भूमि पर कृषि होती है और वास्तविक उपज क्या है। अलाउद्दीन पहला सुल्तान था, जिसने इसके महत्व को समझा और इसे व्यवहारिक रूप दिया। इस व्यवस्था को लागू कराने के लिए उसने योग्य और ईमानदार अधिकारी नियुक्त किए।

बाजार नियंत्रण की नीति–

अलाउद्दीन का सबसे अनोखा एवं महत्वपूर्ण कार्य बाजार नियंत्रण था। विद्रोहियों का दमन, मंगोलों के आक्रमणों से सुरक्षा तथा साम्राज्य विस्तार के लिए बड़ी सेना रखना आवश्यक था, किन्तु इतनी बड़ी सेना का व्यय घटाने के लिए उसने बाजार-नियंत्रण की नीति अपनाई।

1. वस्तुओं के मूल्यों पर नियंत्रण– अलाउद्दीन ने जीवन-निर्वाह की आवश्यक वस्तुओं के मूल्य को मांग तथा पूर्ति के नियमानुसार घटने तथा बढ़ने नहीं दिया, बल्कि उनका मूल्य स्थाई रूप से तय कर दिया था। उसने आवश्यक वस्तुओं का मूल्य इतना कम कर दिया कि एक सैनिक कम वेतन में आराम से अपना गुजारा कर सकता था। उसने अनाज, कपड़ा तथा अन्य वस्तुओं का मूल्य साधारण बाजार की दर से बहुत कम तय किया। उसने यह भी तय किया कि मूल्य वही होगा, जो सरकार द्वारा निर्धारित मूल्य सूची में दिया हुआ है। सभी वस्तुएं सूची में रखी गई थी।

2. वितरण की व्यवस्था– सामान के वितरण के लिए दिल्ली में तीन बाजारों की व्यवस्था की गई। एक बाजार सराय-अदल कहलाता था। पंजीकृत व्यापारियों को सराय-अदल में माल लाना और बेचना अनिवार्य था। दूसरा बाजार शहनाये-मण्डी था। तीसरे बाजार के नाम का उल्लेख नहीं है। उपभोक्ताओं को आज्ञा-पत्र के अनुसार ही वस्तुएं मिलती थी।

3. शासकीय भण्डारण व्यवस्था– अलाउद्दीन यह बात अच्छी तरह समझता था कि मूल्य नियंत्रण से ही वस्तुएं कम कीमत में नहीं बिक सकती, वरन् उसका भण्डारण भी आवश्यक है। अतः उसने अनाज के भण्डारण के लिए बड़े-बड़े गोदाम बनवाए। इन गोदामों का अनाज केवल आपातकाल की स्थिति में निकाला जाता था। ऐसे भी प्रमाण मिलते हैं कि अलाउद्दीन ने राशनिंग की व्यवस्था भी लागू की थी। बरनी लिखता है कि – "वर्षा की अनियमितता होने पर भी दिल्ली में अकाल नहीं पड़ा।''

4. व्यापारियों पर नियंत्रण– व्यापारियों पर सरकार का कड़ा नियंत्रण था। प्रत्येक व्यापारी को शहान-ए-मण्डी के कार्यालय में अपना पंजीयन करना पड़ता था। व्यापारियों को तय किये गये मूल्य पर ही अपना सामान बेचना पड़ता था। चोरी-छुपे माल बेचने अथवा नाप-तौल में गड़बड़ी करने पर व्यापारियों को कठोर दण्ड दिया जाता था। मूल्यवान वस्तुएं खरीदने के लिए सरकारी आज्ञा लेनी पड़ती थी। व्यापारियों को राजकोष से अग्रिम धनराशि भी दी जाती थी, जिससे माल खरीदकर नियंत्रित दरों में बेच सके। ऐसा प्रतीत होता है कि जिन व्यापारियों को दिल्ली में व्यापार करने के लिए लगाया गया था, वे स्वतंत्र व्यापारी न होकर सरकारी एजेण्ट थे।

5. बाजार के कर्मचारी– बाजार नियंत्रण को सफल बनाने के लिए अलाउद्दीन ने योग्य, ईमानदार तथा अनुभवी लोगों को नियुक्त किया। बाजार का सबसे बड़ा अधिकारी 'दीवान-ए-रियासत' कहलाता था, जिसकी नियुक्ति सुल्तान करता था। इसके अधीन तीन पदाधिकारी– (1) शाहनाज (निरीक्षक), (2) बरीद (लेखक) एवं (3) मुहीमन नियुक्त किए गए। शाहनाज बाजार के सामान्य कार्यों की देखभाल करता था। बरीद बाजार में घूम-घूमकर देखता था कि कार्य ठीक चल रहा है अथवा नहीं एवं समस्त कार्यों की सूचना शाहनाज को देता था। शाहनाज उसे 'दीवान-ए-रियासत' के पास भेजता था। दीवान-ए-रियासत सुल्तान को सूचनायें देता था। मुहीमान बाजार की गुप्त रिपोर्ट भेजता था। वह वेश बदलकर घूमा करता था और कोई गलत कार्य करता हुआ मिलता था, तो उसकी गुप्त रूप से सूचना भेजता था।

बाजार नियंत्रण की नीति के संबंध में इतिहासकारों का मत है कि मूल्य नियंत्रण केवल दिल्ली के लिए था। मोरलैण्ड के अनुसार – "सारे देश में भाव घटाने का कोई

प्रयास नहीं किया गया। यह प्रयास केवल दिल्ली तक ही सीमित रखा गया, जहाँ सेना केन्द्रित थी', किन्तु कुछ इतिहासकारों का मत है कि यह व्यवस्था पूरी सल्तनत में लागू थी।

अलाउद्दीन के अंतिम दिन बड़े संकट में बीते। मलिक काफूर के षड़यंत्र पुत्रों की अयोग्यता एवं विलासिता पूर्ण जीवन के कारण सुल्तान अलाउद्दीन का स्वास्थ्य बिगड़ने के कारण 2 जनवरी 1316 को मौत हो गई।

चरित्र एवं मूल्यांकन

अलाउद्दीन के चरित्र तथा कार्यों के संबंध में इतिहासकार एकमत नहीं हैं। कुछ इतिहासकार उसके शासनकाल को गौरवपूर्ण मानते हैं और उसे सफल शासक की कोटि में रखते हैं, लेकिन कुछ विद्वान उसे बर्बर, अत्याचारी एवं अन्याई शासक मानते हैं। एलफिंस्टन के अनुसार – ''उसका शासन बड़ा शानदार था। अनेक अनियमितताओं और मूर्खताओं के बावजूद भी वह सफल शासक था, उसने अपनी शक्ति का उचित प्रकार से प्रयोग किया।'' बरनी का मत है – ''निरक्षर होने के बावजूद सुल्तान की सारी योजनाएं सफल रहीं'', परन्तु स्मिथ एवं डॉ. ईश्वरीप्रसाद ने उसकी आलोचना की।

खिलजी का पतन

अलाउद्दीन की मृत्यु के बाद अयोग्य व्यक्तियों के हाथ में सत्ता आई। शिहाबुद्दीन उमर, कुतुबुद्दीन मुबारकशाह तथा नासिरूद्दीन खुसरोशाह गद्दी पर बैठे, किन्तु कोई भी योग्य साबित न हो सका, 8 सितम्बर 1320 को गयासुद्दीन तुगलक ने खुसरो शाह की हत्या कर स्वयं को सुल्तान घोषित कर दिया। इस प्रकार खिलजी वंश का अंत हो गया।

खिलजी वंश के पतन के कारण

1. निरंकुश एवं स्वेच्छाचारी शासन–

अलाउद्दीन का शासन निरंकुश एवं स्वेच्छाचारी था। वह सैनिक बल पर आधारित था। उसने जनहित का विचार किए बिना अपने स्वार्थों पर आधारित निर्णय लिए। अलाउद्दीन ने शासन सुधारों में समाज के सभी वर्गों को असन्तुष्ट कर दिया था। गुप्तचर विभाग की कठोरता के कारण उच्च तथा मध्य वर्ग के लोग आतंकित हो गये थे और इस स्थिति से छुटकारा पाने के लिए बैचेन थे। उलेमा उसकी स्वच्छंद नीति से असंतुष्ट थे।

2. अलाउद्दीन के निर्बल उत्तराधिकारी –

अलाउद्दीन की मृत्यु के पश्चात् कोई भी ऐसा शासक नहीं हुआ कि इतने विशाल साम्राज्य को संगठित रख सकता। सुल्तान के एक भी पुत्र में उसके जैसी योग्यता नहीं थी। उत्तराधिकारियों की निर्बलता का लाभ उठाकर अनेक प्रांतों में विद्रोह उठ खड़े हुए। शासन में अराजकता फैल गई।

इस प्रकार खिलजी वंश का पतन सुनिश्चित हो गया।

टिप्पणी

अपनी प्रगति जाँचिए

19. खिलजी वंश का संस्थापक कौन था?
    (क) जलालुद्दीन खिलजी (ख) अलाउद्दीन खिलजी
    (ग) शिहाबुद्दीन (घ) आरामशाह
20. दिल्ली का पहला सुल्तान जिसने दक्षिण की विजय की थी?
    (क) बलबन (ख) अलाउद्दीन खिलजी
    (ग) मुहम्मद बिन तुगलक (घ) इल्तुतमिश
21. आर्थिक सुधार करने वाला सल्तनतकालीन प्रथम सुल्तान कौन था?
    (क) अलाउद्दीन खिलजी (ख) बलबन
    (ग) इल्तुतमिश (घ) कुतुबुद्दीन ऐबक
22. बाजार नियन्त्रण की नीति लागू करने वाला सुल्तान था?
    (क) बलबन (ख) इल्तुतमिश
    (ग) अलाउद्दीन (घ) जलालुद्दीन

1.7 अपनी प्रगति जाँचिए प्रश्नों के उत्तर

1.	(क)	9.	(क)	17.	(ग)
2.	(ग)	10.	(ग)	18.	(घ)
3.	(क)	11.	(क)	19.	(क)
4.	(ग)	12.	(क)	20.	(ख)
5.	(ग)	13.	(घ)	21.	(क)
6.	(क)	14.	(ग)	22.	(ग)
7.	(ग)	15.	(ख)		
8.	(ग)	16.	(ग)		

1.8 सारांश

इतिहास के विद्यार्थियों के लिए आवश्यक है कि मध्यकालीन भारत के इतिहास के अध्ययन के पूर्व वे उस काल के ऐतिहासिक सामग्री से परिचित हों। अतः प्रथम अध्याय से ऐतिहासिक स्त्रोतों की जानकारी मिलती है। सल्तनत की स्थापना 1206 ई. में गुलामवंश के शासकों द्वारा की गई एवं उनका प्रयास रहा कि वे भारत में एक शक्तिशाली राज्य की स्थापना करें। अपने इसी उद्देश्य के लिए खिलजी सुल्तानों ने विशेषतया अलाउद्दीन खिलजी ने जब अपनी सत्ता स्थापित की, उस समय में भी तुर्क अमीरों का प्रभुत्व था। अलाउद्दीन ने अमीरों एवं बाह्य रूप से मंगोलों, इन दोनों शक्तियों को सफलता पूर्वक जीता

और इनकी शक्ति कुचल दी। वही पहला सुल्तान था, जिसने प्रशासनिक व्यवस्था की नींव रखी तथा दक्षिण भारत तक अपनी विजयी पताका फैलाई एवं सफलतापूर्वक मंगोलों का सामना भी किया।

टिप्पणी

1.9 मुख्य शब्दावली

- **विद्रोह उठ खडे हुएः** विरोध करने के लिए तैयार हुए।

1.10 स्व-मूल्यांकन प्रश्न एंव अभ्यास

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. मध्यकालीन साहित्यिक स्त्रोतों पर प्रकाश डालिए।
2. मध्यकालीन पुरातात्विक स्त्रोतों का उल्लेख कीजिए।
3. मध्यकालीन स्मारकों पर प्रकाश डालिए।
4. मध्यकालीन भारतीय स्त्रोतों पर प्रकाश डालिए।
5. मध्यकालीन विदेशी स्त्रोतों बताइए।
6. स्मारकों का स्त्रोतों के रुप में महत्व बताइए।
7. एक सुल्तान के रुप में कुतुबुद्दीन ऐबक का मूल्यांकन कीजिए।
8. इल्तुतमिश की सेन्य उपलब्धियों पर प्रकाश डालिए।
9. रजिया सुल्तान पर एक टिप्पणी लिखिए।
10. बलधन की सैन्य उपलब्धियों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।
11. गुलामवंश के पलन के कारणों पर प्रकाश डालिए।
12. बलबन के राजत्व संबंधी सिद्धांत के विषय में आप क्या जानते है स्पष्ट कीजिए।

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. सल्तनतकालीन इतिहास के प्रमुख स्त्रोतों का वर्णन कीजिए?
2. मुगलकालीन इतिहास के प्रमुख स्त्रोतों का वर्णन कीजिए?
3. कुतुबुद्दीन ऐबक के कार्यों का मूल्यांकन कीजिए?
4. इल्तुतमिश की कठिनाईयाँ क्या थीं, उसने उनका समाधान किस प्रकार किया?
5. रजिया के पतन के कारणों का वर्णन कीजिए?
6. दिल्ली सल्तनत को स्थिरता प्रदान करने के लिए बलबन ने क्या किया?
7. दिल्ली सल्तनत पर मंगोलों के आक्रमण एवं उसके प्रभावों पर प्रकाश डालिए?
8. अलाउद्दीन खिलजी की दक्षिण विजयों का वर्णन कीजिए?
9. अलाउद्दीन खिलजी के शासन संबंधी सुधारों का वर्णन कीजिए?
10. अलाउद्दीन खिलजी की बाजार नियंत्रण की नीति का वर्णन कीजिए?

1.11 सहायक पाठ्य सामग्री

1. बालकृष्ण पंजाबी, मध्यकालीन भारत का इतिहास (1206 से 1761), मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल (म.प्र.)।
2. विपिन बिहारी सिन्हा, मध्यकालीन भारत का इतिहास।
3. व्ही.डी. महाजन, सल्तनतकालीन भारत।
4. व्ही.डी. महाजन, मध्यकालीन भारत।
5. हरिशंकर शर्मा, मध्यकालीन भारत, रावत बुक सेलर्स, जयपुर।

इकाई 2 मुहम्मद बिन तुगलक, फिरोजशाह तुगलक, दिल्ली सल्तनत का विकेन्द्रीकरण और प्रांतीय शक्तियों का उदय, तैमूर का आक्रमण और उसका प्रभाव, मुगल आक्रमण – बाबर और हुमायूं, शेरशाह सूरी

संरचना

2.0 परिचय
2.1 उद्देश्य
2.2 मुहम्मद बिन तुगलक, फिरोजशाह तुगलक
2.3 दिल्ली सल्तनत का विकेन्द्रीकरण और प्रांतीय शक्तियों का उदय
2.4 तैमूर का आक्रमण और उसका प्रभाव
2.5 मुगल आक्रमण – बाबर और हुमायूं, शेरशाह सूरी
2.6 अपनी प्रगति जाँचिए प्रश्नों के उत्तर
2.7 सारांश
2.8 मुख्य शब्दावली
2.9 स्व-मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
2.10 सहायक पाठ्य सामग्री

2.0 परिचय

इकाई में तुगलक वंश, मुगलकाल के भारत के राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास का वर्णन है। तुगलक वंशीय शासकों की नीतियाँ, बाबर का भारत पर आक्रमण एवं भारत में मुगल साम्राज्य की स्थापना, बाबर द्वारा साम्राज्य विस्तार करते हुए जिन राजपूत राजाओं से युद्ध हुए, उसमें राणा सांगा का नाम प्रमुख है। इस काल के इतिहास विवेचना में देशभक्ति की भावना को जागृत करने तथा संकीर्ण साम्प्रदायिक विचारों के ऊपर उठकर व्यापक दृष्टिकोण से सोचने की शक्ति पैदा हो, इसका ध्यान रखा है।

2.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप इस काल के इतिहास को जानने योग्य हो सकेंगे कि–

- मुहम्मद बिन तुगलक ने अपने कार्यकाल के दौरान योजनाएं बनाई, जिसके सल्तनत पर गंभीर परिणाम पड़े। तुगलक वंश के पतन के पश्चात् भारत में विजयनगर एवं बहमनी राज्य जैसे क्षेत्रीय प्रांतीय सत्ताएं भी अस्तित्व में आई।
- भारत में बाबर के नेतृत्व में मुगल सत्ता की स्थापना हुई।
- मुगलों ने भारत में दीर्घकाल तक शासन किया एवं राजनीतिक स्थिरता प्रदान की।

टिप्पणी

2.2 मुहम्मद बिन तुगलक, फिरोजशाह तुगलक

तुगलक वंश का संस्थापक गाजी मलिक था, जो कि गयासुद्दीन तुगलक शाह 'गाजी' के नाम से सिंहासन पर बैठा। उसका जन्म एक निम्न कुल में हुआ था। उसका पिता तुर्क और माँ जाटनी थी। उसने अपना जीवन एक साधारण सैनिक के रूप में प्रारंभ किया था और 1305 ई. में वह पंजाब के सूबेदार के पद तक पहुंच गया, लेकिन वह बड़ा ही महत्वाकांक्षी व्यक्ति था। उसने खुसरव के विरूद्ध विद्रोह संगठित किया और अन्त में खुसरव को पराजित किया, उसे मार डाला और स्वयं 8 सितंबर 1320 ई. को वटसीरी के राजभवन में राजसिंहासन पर आरूढ़ हुआ।

मुहम्मद बिन तुगलक (1325-1351 ई.)

1325 ई. में जूनाखाँ ने षड़यंत्र से अपने पिता का वध करके दिल्ली की गद्दी को हथिया लिया था और मुहम्मद बिन तुगलक के नाम से गद्दी पर बैठा, किन्तु दिखाने के लिए उसने तुगलकाबाद में रहकर चालीस दिन तक शोक मनाया, जिससे कि दूसरे लोग शंका न करें। चालीस दिन के बाद उसने अपने राज्याभिषेक के लिए दिल्ली प्रस्थान किया।

मुहम्मद बिन तुगलक
(1325 ई.-1351 ई. तक)
तुगलक वंश का सफलतम शासक जिसनें अपने आश्चर्यचकित निर्णयों के साथ शासन व्यवस्था का चलाया था।

शासन सम्बन्धी योजनाएँ

1. दोआब में कर वृद्धि

कर की दर – सिंहासन पर बैठने के कुछ समय पश्चात् सम्राट ने दोआब में कर वृद्धि कर दी, किन्तु कर में कितनी वृद्धि की गई थी। बरनी ने 'यके व देह' शब्द का प्रयोग किया है, जिसका अर्थ दस गुना होता है, किन्तु बदायूंनी ने 'यके व देह बिस्त' शब्द का प्रयोग किया है, जिसका अर्थ 10 से 20 के अनुपात में हुआ अर्थात् दुगना हो गया, लेकिन कर-वृद्धि के सम्बन्ध में जो सामग्री उपलब्ध होती है, उससे यही पता चलता है कि कर अत्यधिक बढ़ा दिया गया था।

कर वृद्धि के कारण– बरनी ने लिखा है कि ''सुल्तान का खजाना खाली हो गया था, जिसकी पूर्ति के लिए कर वृद्धि की थी।''

गार्डनर ब्राउन के अनुसार, ''दोआब साम्राज्य का सबसे अधिक धनी तथा समृद्धशाली भाग था। अतएवं इस भाग से साधारण दर से अधिक कर वसूल किया जा सकता था।''

बदायूंनी का कथन है कि ''दोआब की विद्रोही प्रजा को दण्ड देने तथा उस पर नियंत्रण रखने के लिए कर लगाया गया था।'' यही मत सर हेग का है।

कर-वृद्धि योजना की अनेक इतिहासकारों ने कटु आलोचना की है। अनेक विद्वानों ने इसके लिए सुल्तान को दोषी माना है, किन्तु वास्तव में देखा जाए, तो इसकी असफलता के लिए केवल सुल्तान ही दोषी नहीं था, बल्कि वह परिस्थितियों का शिकार हो गया था। कर-वृद्धि करना अनुचित नहीं कहा जा सकता। ब्राउन का मत है, ''दोआब साम्राज्य का सबसे अधिक धनी तथा समृद्धशाली भाग था। अतः इस भाग से साधारण दर से अधिक कर वसूल करना न्यायसंगत था।''

योजना की असफलता के कारण–

1. जिस समय कर-वृद्धि की गई, उसी समय भयंकर अकाल पड़ने के कारण जनता की कमर टूट गई और उसमें कर अदा करने की क्षमता नहीं रही।

2. दोआब के लोग बढ़ी हुई दर पर कर देने को तैयार नहीं थे।

3. कर की वसूलयाबी इतनी कठोरता से की गई कि जनता कराह उठी और सुल्तान के प्रति भयंकर असंतोष पैदा हो गया।

राजधानी परिवर्तन– सन् 1326-27 ई. में मुहम्मद तुगलक ने दिल्ली को छोड़कर देवगिरी को राजधानी बनाने का निश्चय किया, जिसका नाम बदलकर दौलताबाद रख दिया था। अब प्रश्न यह है कि सुल्तान ने राजधानी परिवर्तन क्यों किया था?

देवगिरी का केन्द्र में स्थित होना– इसका सबसे पहला कारण देवगिरी का साम्राज्य के केन्द्र में स्थित होना था। सुल्तान ऐसे स्थान को राजधानी बनाना चाहता था, जो सामाजिक महत्व का होने के साथ-साथ राज्य के केन्द्र में स्थित हो। इतिहासकार बरनी ने लिखा है कि 'देवगिरी को भौगोलिक महत्व के कारण ही राजधानी चुना गया था।'

दिल्ली के लोगों को सजा देना– इब्न बतूता ने लिखा है कि ''दिल्ली निवासियों ने सुल्तान के विरूद्ध निन्दनीय पत्र लिखे थे। इसलिए उनको सजा देने के उद्देश्य से आज्ञा दी गई कि सभी दिल्ली निवासी शहर छोड़कर दूर देवगिरी को प्रस्थान करें।''

मंगोल आक्रमण से दिल्ली की असुरक्षा– इतिहासकार गार्डनर ब्राउन का मत है कि मंगोलों के आक्रमण के भय से राजधानी का परिवर्तन किया गया। उसने कहा कि मंगोलों के निरन्तर आक्रमणों से साम्राज्य की राजनीतिक गतिविधियों का केन्द्र उत्तरी भारत से खिसक कर धीरे-धीरे दक्षिणी भारत बनता गया, किन्तु इस तर्क को भी नहीं माना जा सकता, क्योंकि मुहम्मद तुगलक के राजगद्दी प्राप्त करने के समय तक मंगोलों के आक्रमण प्रायः समाप्त हो गए थे।

योजना की असफलता के कारण–

सुल्तान की राजधानी परिवर्तन की योजना गलत नहीं थी, किन्तु उसने इस योजना को जिस तरीके से व्यावहारिक रूप दिया, वह अवांछनीय तथा अबौद्धिक था। उसे सारी जनता को एकदम ले जाने की आवश्यकता नहीं थी। सर्वप्रथम उसे दरबारी, पदाधिकारी, व्यापारी तथा दुकानदारों को ले जाना चाहिए था। दूसरे, सुल्तान यह न समझ सका कि लोग अपने पैतृक निवास को छोड़ने में कितना कष्ट अनुभव करेंगे। दौलताबाद पहुँचकर दिल्लीवासियों का मन न लगा और वे दिल्ली लौटने को आतुर हो उठे। तीसरे, दौलताबाद से मंगोलों के आक्रमणों को रोकना सम्भव नहीं था। इसलिए उसने अपनी भूल स्वीकार कर ली और अपना दरबार उठाकर दिल्ली ले आया।

सांकेतिक मुद्रा का चलाना–

मुहम्मद तुगलक ने अपने शासन के प्रारंभ में मुद्रा में कई सुधार किये, किन्तु उसका सबसे अधिक साहसिक कार्य तांबे तथा पीतल के सिक्के चलाना था। सांकेतिक मुद्रा का प्रचलन करने के अनेक कारण थे।

कारण–

1. सुल्तान अपनी विजय-योजनाओं को पूरा करने के लिए राज्य की आय अधिक से अधिक बढ़ाना चाहता था, जिससे एक विशाल सेना का निर्माण किया जा सके।

2. सुल्तान को नए प्रयोग करने में रूचि थी तथा उस समय परिस्थितियाँ भी इसके अनुकूल थीं। डॉ. ईश्वरीप्रसाद ने लिखा है, ''मुद्रा प्रसार करने की इच्छा के अतिरिक्त सुल्तान को नए प्रयोग से भी प्रेम था, क्योंकि उसके मस्तिष्क में मौलिकता बहुत थी और अपने युग की कलाओं तथा विज्ञानों से वह भली-भाँति परिचित था। इसलिए वैज्ञानिक ढंग से एक नया प्रयोग करने की उसको प्रेरणा हुई होगी।''

उसने यह आदेश दिया कि क्रय-विक्रय में सांकेतिक मुद्रा को सोने तथा चांदी की मुद्रा के समान प्रचलित किया जाए, किन्तु इस आदेश का परिणाम यह हुआ कि लोग सोने-चांदी के सिक्कों को जमा करने लगे।

योजना की असफलता के कारण–

मुद्रा के प्रचलन पर नियन्त्रण का अभाव– यद्यपि सुल्तान की यह योजना उचित थी, किन्तु वह सांकेतिक मुद्रा के प्रचलन पर नियन्त्रण न रख सका। मुद्रा पर जब तक राज्य का एकाधिकार नहीं होता, तब तक सांकेतिक मुद्रा के प्रचलन में सफलता प्राप्त करना सम्भव नहीं। सुल्तान सिक्कों की ढलाई को न रोक सका। सिक्कों पर कोई सरकारी मोहर आदि का चिन्ह नहीं था, इसलिए लोग आसानी से सिक्कों की ढलाई करके सरकारी सिक्कों के साथ चलाने लगे। टॉमस ने लिखा है, ''सुल्तान ने ऐसी कोई विशेष व्यवस्था नहीं की, जिससे राजकीय टकसाल के सिक्कों तथा साधारणतया कुशल कारीगरों द्वारा बनाए हुए निजी सिक्कों का अन्तर मालूम किया जा सकता। साधारण जनता द्वारा जाली सिक्कों के बनाने पर ही किसी प्रकार का प्रतिबन्ध था।''

समय की परिस्थितियों को न समझना– सुल्तान की सबसे बड़ी कमी यह थी कि वह अपने समय की परिस्थितियों को न समझ सका और न वह अपनी सांकेतिक मुद्रा में जनता का विश्वास पैदा कर सका। अतः इस योजना की असफलता का उत्तरदायित्व सुल्तान पर ही है।

चरित्र एवं कार्यों का मूल्यांकन–

मुहम्मद तुगलक के चरित्र के संबंध में इतिहासकारों ने विरोधी मत व्यक्त किये हैं। उसके समकालीन लेखक बरनी तथा इब्न बतूता मुहम्मद तुगलक के चरित्र के संबंध में एकमत नहीं हैं। एक ओर उन्होंने सुल्तान को बड़ा ही उदार, दानशील तथा धर्मपरायण बतलाया है और दूसरी ओर उसे निर्दयी, रक्तपिपासू तथा धर्म भ्रष्ट कहा है। उसका समकालीन लेखक बरनी स्वयं उसे नहीं समझ पाया तो अन्य विद्वानों के लिए अध्ययन तथा कल्पनाओं के द्वारा एकमत होना सम्भव नहीं। बरनी ने लिखा है कि ''ईश्वर ने सुल्तान मुहम्मद को एक अद्भुत जीव बनाया है। उसके विरोधाभासी गुणों तथा योग्यताओं को समझना बुद्धिमानों के लिए भी सम्भव नहीं। उसे देखकर बुद्धि चकरा जाती है और उसके गुणों को देखकर चकित तथा स्तब्ध रह जाना पड़ता है।'' मुहम्मद तुगलक के चरित्र का मूल्यांकन हम इस प्रकार से कर सकते हैं–

शासक के रूप में मुहम्मद तुगलक पूर्ण असफल रहा। जिस समय वह गद्दी पर बैठा उस समय उसके साम्राज्य में लगभग समस्त उत्तर तथा दक्षिणी भारत सम्मिलित था, किन्तु वह इस विशाल साम्राज्य को कायम नहीं रख सका। अनेक प्रान्तों में विद्रोह उठ खड़े हुए और उन्होंने अपने को दिल्ली सल्तनत से मुक्त कर लिया।

एकफिंस्टन तथा परवर्तीय यूरोपीय इतिहासकारों ने मुहम्मद तुगलक को पागल बादशाह कहा है। सम्भवतः एलफिंस्टन के मत का आधार बरनी का यह कथन है कि सुल्तान बड़ा निर्दयी था और उसे मुसलमानों का खून बहाने में आनन्द आता था। कोई दिन या सप्ताह ऐसा व्यतीत नहीं होता था, जबकि अनेक मुसलमानों की हत्या न कराई जाती हो, किन्तु इस आधार पर सुल्तान को पागल बताना न्यायसंगत नहीं है, क्योंकि वह लोगों को मृत्युदण्ड इसलिए नहीं देता था कि वह पागल था। प्रायः मध्य युग के सभी सुल्तानों के समय में मृत्यु-दण्ड दिया जाता था। अलाउद्दीन खिलजी तथा बलबन ने मुहम्मद तुगलक की अपेक्षा कहीं अधिक कत्लेआम किया और कठोरतम दण्ड दिये, किन्तु उनको किसी ने भी पागल नहीं कहा।

चित्र क्र. 2.1: मोहम्द बिन तुगलक का साम्राज्य (1335 ई.)

डॉ. ईश्वरीप्रसाद का भी यह मत है कि मुहम्मद के चरित्र में विरोधी तत्वों का आश्चर्यजनक योग था। डॉ. मेंहदी हुसैन का मत है कि उसके चरित्र में विरोधी गुण तो विद्यमान थे। डॉ. आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव का मत है कि मुहम्मद तुगलक में विरोधी गुण विद्यमान थे और उनका प्रकाट्य एक ही समय में और साथ-साथ आया और वे गुण जीवनपर्यन्त तक उसके चरित्र का अंग बने रहे।

कुछ विद्वानों ने उसे भाग्यहीन आदर्शवादी' कहा है। इस दृष्टि से उसे महान् व्यक्ति भी नहीं कहा जा सकता।

फीरोजशाह तुगलक (1351-1388 ई.)

मुहम्मद तुगलक की मृत्यु के पश्चात् 23 मार्च, 1351 ई. को उसका चचेरा भाई फीरोज तुगलक सिंहासन पर बैठा। फीरोज के पिता का नाम रजब और माँ का नाम नैला बीबी था, जो राजपूत सरदार की पुत्री थी। इस प्रकार उसकी नसों में हिन्दू-मुस्लिम रक्त का मिश्रण था। सुल्तान मुहम्मद की उस पर बड़ी कृपा थी। और बरनी के अनुसार सुल्तान ने फिरोज को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त किया था। राजधानी से दूर थट्टा के निकट सुल्तान मुहम्मद की मृत्यु के पश्चात अमीरों, मलिकों, उलेमाओं आदि ने फीरोज को एक मत से सुल्तान घोषित किया।

टिप्पणी

फीरोजशाह तुगलक

(1351 ई. 1380 ई.) अपने प्रजा के प्रति व्यवहार के लिए जाने जाते है।

फीरोज की राजस्व एवं ग्रामीण कृषि व्यवस्था

रिक्त राजकोष की पूर्ति, व्यापार एवं वाणिज्य की उन्नति तथा जनता की आर्थिक कठिनाइयों को दूर करने के लिए फीरोज ने राजस्व एवं ग्रामीण कृषि व्यवस्था में सुधार किए।

किसानों द्वारा अकाल के समय पूर्व सुल्तान से ऋण लिए गए थे। फीरोज ने वे ऋण माफ कर दिए। पदाधिकारियों के वेतन में वृद्धि की। राजस्व विभाग के कर्मचारियों को दिए जाने वाले अनुचित दण्डों पर प्रतिबन्ध लगा दिया। किसानों के कर-भार को हल्का करने के लिए उसने सूबेदारों द्वारा दी जाने वाली भेंट की प्रथा को समाप्त कर दिया–

1. कर व्यवस्था–

भू-राजस्व (खराज)– खराज की वसूली के विषय में बरनी लिखता है, **"खराज को उत्पत्ति निश्चित करने के लिए ख्वाजा हुसामुद्दीन जुनैदी को नियुक्त किया, जिसने घूम-घूम कर राजस्व लेखों का निरीक्षण किया और उसके आधार पर 6 करोड़ 85 लाख तनके भू-राजस्व निश्चित किया। डॉ. आशीर्वादीलाल के अनुसार, "स्थायी रूप से भूमि-कर निश्चित करना फीरोज की एक महान् की एक महान् सफलता थी।''**

जजिया— जजिया की वसूली के लिए फीरोज ने उत्साह का प्रदर्शन किया। वह पहला सुल्तान था, जिसने ब्राह्मणों पर जजिया कर लगाया।

खुम्स— सुल्तान फीरोज ने खुम्स के वितरण को पुनः शरा के अनुकूल निश्चित किया। उसने 1/5 भाग इस्लामी राजकोष में जमा करने एवं 4/5 भाग युद्ध करने वालों को देने के आदेश दिये।

कृषि विकास के कार्य— कृषि के विकास के लिए फीरोज ने नहरों का निर्माण करवाया। बरनी के अनुसार, 50 से 60 कोस लम्बी नहरें खोदी गई। अफीफ के अनुसार, फीरोज ने फतेहाबाद तथा हिसार फिरोजा नामक नगर बसाए और इन दोनों स्थानों पर 80 से 90 कोस दूर से नहरें पहुँचवाई। नहरों के किनारे नई आबादी बसी। खेती की उपज भी बढ़ी।

सुल्तान फीरोज के कृषि एवं राजस्व सुधारों के फलस्वरूप प्रजा समृद्ध हो गई। अफीफ लिखता है कि सामग्री बहुत सस्ती हो गई। उसके पूरे 40 वर्ष के शासनकाल में लोगों ने अकाल नहीं देखा।

फीरोज की सैन्य व्यवस्था— सुल्तान फीरोज की सेना का संगठन जागीर प्रथा पर आधारित था। उसने अलाउद्दीन की भाँति स्थायी सेना की पद्धति को त्याग दिया। सैनिकों को जागीरों के रूप में वेतन दिया जाने लगा। फीरोज की अत्यधिक उदार, सहनशील एवं क्षमा करने की नीति के कारण सेना के अनुशासन में कमी हुई। अत्यधिक सुख-सुविधा का उपभोग करने के कारण सेना की कुशलता में कमी आई।

फीरोज के कल्याणकारी कार्य— जनता के कल्याण की दृष्टि से फीरोज ने अनेक महत्वपूर्ण कार्य किए—

1. बेकारी की समस्या के समाधान के लिए एक अलग विभाग स्थापित किया।

2. राजधानी में दीवान-ए-खैरात नामक एक दान-विभाग खोला। उसके माध्यम से गरीब मुसलमानों को अपनी लड़कियों के विवाह के लिए और विधवाओं तथा अनाथों की मदद की जाती थी।

3. गरीबों को मुफ्त दवा के वितरण हेतु उसने दार-उल-शफा नामक अस्पताल खुलवाया। उसमें योग्य चिकित्सक नियुक्त किए गए।

फीरोज की मृत्यु और मूल्यांकन

सुल्तान फीरोजशाह के जीवन-काल में ही उसके उत्तराधिकार के प्रश्न को लेकर गृह-युद्ध की स्थिति उत्पन्न हो गई थी, परन्तु सुल्तान के हस्तक्षेप से स्थिति नियन्त्रण में आयी। 20 सितम्बर, 1388 ई. को 80 वर्ष की आयु में सुल्तान फीरोजशाह की मृत्यु हो गई।

आधुनिक इतिहासकार एलफिंस्टन ने उसे 'सल्तनत युग का अकबर' कहा है, परन्तु यह तुलना अतिशयोक्तिपूर्ण है। अकबर की तुलना में फीरोज कहीं नहीं ठहरता है।

इस प्रकार यद्यपि फीरोज ने अपनी मृत्युपर्यन्त लगभग 37 वर्षों तक बड़ी सफलतापूर्वक शासन किया, परन्तु फीरोज को यह दावा करने का अधिकार नहीं है कि उसके समय में राज्य में एकता बनी रही। उसके पूरे शासनकाल में प्राणघातक बीमारी के कीटाणु राज्य रूपी शरीर की अन्तड़ियों में पलते रहे। सल्तनत की नींव फीरोज की नीतियों के कारण खोखली हो गई।

तुगलक वंश के पतन के कारण–

दिल्ली सल्तनत की स्थापना (1206 ई.) से लेकर तुगलक वंश (1413 ई.) तक जितने भी राजवंशों ने दिल्ली पर राज्याधिकार स्थापित रखा, उनमें तुगलक वंश का शासनकाल सबसे दीर्घकालीन रहा। तुगलक वंश का पतन निम्नलिखित महत्वपूर्ण कारणों से हुआ–

1. मुहम्मद बिन तुगलक की महत्वाकांक्षी योजनाओं की असफलता के कारण सुल्तान का सम्मान घट गया। सुल्तान ने अपनी इन योजनाओं की असफलता का कारण अमीरों एवं जनता की उदासीनता को मानकर उन्हें कठोर दण्ड दिये, जिससे अमीर एवं जनता ने सुल्तान के विरूद्ध बगावत की। उसके शासनकाल में विद्रोह हुए, जिसके साम्राज्य के विघटन की प्रक्रिया प्रारंभ हो गई।

2. फिरोजशाह तुगलक ने दया तथा क्षमाशीलता की नीति अपनाकर मुसलमानों का विश्वास तो प्राप्त किया, किन्तु सल्तनत की नींव कमजोर कर दी। फिरोज द्वारा जारी की गई जागीर प्रथा, भ्रष्ट सरकारी तंत्र एवं वंशानुगत पदों की घोषणा और दास प्रथा का प्रारंभ इन कार्यों से विघटनकारी प्रवृत्तियों को प्रोत्साहन मिला।

3. फिरोज तुगलक के दुर्बल एवं विलासी उत्तराधिकारी, शासन चलाने में नितांत अयोग्य साबित हुये, जिससे अमीरों को षड़यंत्र करने का अवसर मिला, जिसके परिणाम स्वरूप सल्तनत की शक्ति क्षीण होती चली गई और मंगोलों को भारत पर आक्रमण करने का अवसर मिल गया।

4. अमीरों के बढ़ते प्रभाव, षड़यंत्र एवं विलासतापूर्ण जीवन ने दरबार में गुटबंदी पूर्ण वातावरण स्थापित कर दिया, जिससे सल्तनत की सत्ता कमजोर हो गई।

5. कमजोर राजनीतिक अवसर का लाभ उठाकर तैमूर ने भारत पर आक्रमण कर दिया। उसका सामना दिल्ली के सुल्तान नहीं कर पाए। तैमूर ने अपने आक्रमण में दिल्ली, आगरा, राजस्थान के कुछ हिस्सों पर जमकर लूटपाट की एवं हत्याएं की, जिससे सल्तनत बुरी तरह तहस-नहस हो गई।

अपनी प्रगति जाँचिए

1. वह पहला सुल्तान कौन था, जिसने ब्राम्हणो पर 'जाजिया' कर लगाया था।

   (क) फीरोज   (ख) तुगलक

   (ग) गयासुद्दीन   (घ) मुहम्मद

2. मुहम्मद तुगलक गद्दी पर कब बैठा?

   (क) 1296 ई. में   (ख) 1325 ई. में

   (ग) 1351 ई. में   (घ) 1320 ई. में

3. राजधानी परिवर्तन करने वाला शासक था?

   (क) गयासुद्दीन तुगलक   (ख) फिरोजशाह तुगलक

   (ग) मुहम्मद तुगलक   (घ) अलाउद्दीन फिरोज

टिप्पणी

4. तुगलक की आत्मकथा किस नाम से जानी जाती है?
   (क) तारीखे फिरोजशाही (ख) फुतुहाते फिरोजशाही
   (ग) तुगलकनामा (घ) फतवा-ए-जहाँदारी

2.3 दिल्ली सल्तनत का विकेन्द्रीकरण और प्रांतीय शक्तियों का उदय

सुल्तान मुहम्मद तुगलक की मृत्यु के पूर्व ही दिल्ली सल्तनत का आकार सिकुड़ने लगा। दक्षिण स्वतन्त्र हो गया, बंगाल ने दिल्ली सल्तनत से अपने सम्बन्ध विच्छेद कर लिए और वह जब मृत्यु शैया पर था, सिन्ध सल्तनत के आधिपत्य से निकलने की प्रक्रिया में था। जो प्रान्त दिल्ली सल्तनत की अधीनता में थे, उनमें विद्रोह और अन्तर्द्वन्द्व चल रहे थे। इसके अतिरिक्त विशाल साम्राज्य में आवागमन की उचित व्यवस्था के अभाव में केन्द्र का नियन्त्रण प्रान्तों पर ढीला पड़ना स्वाभाविक था और इस महत्वपूर्ण तथ्य से प्रान्तीय शासकों को स्वतन्त्र होने के लिए प्रेरित किया। परिणाम यह हुआ कि सल्तनत के विकेन्द्रीकरण की प्रक्रिया तीव्र हुई।

उत्तर भारत के प्रादेशिक राज्य

उत्तर भारत में निम्नलिखित प्रादेशिक राज्यों की स्थापना हुई–

1. जौनपुर का राज्य– स्वतन्त्र जौनपुर राज्य की स्थापना का श्रेय जौनपुर के सूबेदार ख्वाजा जहाँ मालिक सरवर को जाता है। 1392 ई. में मुहम्मद शाह का वजीर बना। मुहम्मदशाह की मृत्यु के पश्चात् उसके पुत्र महमूद का सिंहासनारोहण मलिक सरवर की ही कूटनीति और कार्यकुशलता से सम्पन्न हो सका। अतः सुल्तान महमूद शाह (1394-1412) ने उसे अपना प्रधानमन्त्री नियुक्त किया। महमूद शाह ने ही उसे 1394 में जौनपुर का सूबेदार नियुक्त किया। जौनपुर पहुँचने के पश्चात् सरवर ने वहाँ के विद्रोही तत्वों का दमन किया एवं शान्ति व्यवस्था स्थापित की।

2. मालवा– मालवा के सूबेदार दिलावर खाँ गौरी ने तैमूर के आक्रमण के बाद दिल्ली की राजनीति अराजकता का लाभ उठाकर 1402 ई. में मालवा में स्वतन्त्र सत्ता की स्थापना की। इस वंश का संस्थापक महमूद खलजी मालवा के मुस्लिम शासकों में सबसे अधिक योग्य था। उसने गुजरात, दिल्ली, बहमनी और मेवाड़ के साथ युद्ध किए, 1531 ई. तक खलजी वंश के शासकों ने मालवा पर शासन किया। 1531 ई. में गुजरात के बहादुरशाह ने मालवा की स्वतन्त्रता को समाप्त किया।

3. गुजरात– गुजरात में स्वतन्त्र सत्ता की स्थापना जफर खाँ ने की। सुल्तान फीरोजशाह तुगलक के एक उत्तराधिकारी नासिरूद्दीन मुहम्मद शाह ने 1391 ई. में जफर खाँ को गुजरात का सूबेदार नियुक्त किया था। जफर खाँ ने गुजरात में अपनी शक्ति को संगठित किया। तिर्मिजी के अनुसार, "महमूद बेगढ़ा को न केवल गुजरात का सबसे महान् शासक माना जाता है, बल्कि भारत के महान् योद्धा शासकों में भी उसका उच्च्व स्थान है।''

4. राजस्थान– तुगलक वंश के उत्तरार्ध में दिल्ली सल्तनत की सीमाएँ अत्यन्त संकुचित हो गई थीं। इस समय राजस्थान में अनेक राजपूत राजवंशों का विभिन्न स्थानों पर शासन था। इन राजपूत राज्यों ने दिल्ली सल्तनत की अधीनता कभी स्वीकार नहीं की।

5. बंगाल– बंगाल की दिल्ली से दूरी होने के कारण एवं यातायात के साधनों के अभाव के कारण बंगाल पर नियन्त्रण कठिन कार्य था। मुहम्मद तुगलक के समय इलियास शाह ने 1345 ई. में अपनी स्वतन्त्र सत्ता की स्थापना कर ली।

6. अन्य राज्य– इनके अतिरिक्त समाना में गालिब खाँ ने बयाना में शम्स खाँ औहादी ने कालपी और महोबा में मुहम्मद खाँ ने और ग्वालियर में एक हिन्दू शासक ने स्वतन्त्र राज्यों की स्थापना की। इसी प्रकार उड़ीसा तथा कामरूप (आसाम) में भी स्वतन्त्र सत्ता की स्थापना हुई।

विजयनगर एवं बहमनी साम्राज्य

दिल्ली सल्तनत के विघटन के परिणामस्वरूप दक्षिण में दो महत्वपूर्ण राज्यों की स्थापना हुई। ये दो राज्य थे – विजयनगर एवं बहमनी। इन दोनों राज्यों की स्थापना मुहम्मद तुगलक के शासनकाल में हुई। इन दोनों राज्यों के महत्व को देखते हुए इनका पृथक-पृथक अध्ययन आवश्यक है।

विजयनगर साम्राज्य

स्थापना और विस्तार–

विजयनगर साम्राज्य की स्थापना सुल्तान मुहम्मद तुगलक के काल में हिन्दुओं के असन्तोष के परिणामस्वरूप हुई थी। प्रो. गुर्ती वेंकट राव के अनुसार "यह तुर्की प्रभुत्व के विरूद्ध प्रबल हिन्दू प्रतिक्रिया का फल था।'' विजयनगर साम्राज्य की उत्पत्ति के विषय में विद्वानों में मतभेद है, परन्तु इतना निश्चित है कि संगम के पाँच पुत्रों में से हरिहर और बुक्का ने विजयनगर साम्राज्य की स्थापना की।

संगम वंश (1336-1486 ई.)–

हरिहर प्रथम (1336-1356 ई.)– विजयनगर के संस्थापक हरिहर और बुक्का द्वारा संस्थापित वंश उनके पिता संगम के नाम पर संगम वंश के नाम से जाना जाता है। विजयनगर साम्राज्य के प्रथम शासक हरिहर प्रथम ने कोई उपाधि धारण नहीं की, क्योंकि होयसल वंश का शासक बल्लाल तृतीय अभी जीवित था, जिसकी सेवा में हरिहर और बुक्का ने अपनी उन्नति प्रारम्भ की थी। हरिहर ने अपने अनेक प्रबल विरोधियों का सामना करने के लिए तथा अपने नवस्थापित राज्य की रक्षा के लिए सैनिक शक्ति को सुदृढ़ बनाया तथा दुर्गों की मरम्मत की।

बुक्का (1336-1379 ई.)– हरिहर प्रथम की मृत्यु के पश्चात् उसका भाई बुक्का गद्दी पर बैठा। उसने 1379 ई. तक शासन किया। बुक्का ने विजयनगर साम्राज्य की सीमाओं में और वृद्धि की। तमिल राज्य का शासक राजनारायण विजयनगर की अधीनता से स्वतन्त्र होने का प्रयास कर रहा था। अतः बुक्का ने तमिल राज्य पर आक्रमण कर उस पर अधिकार कर लिया। बुक्का ने बहमनी सुल्तानों मुहम्मदशाह और मुजाहिदशाह के विरूद्ध भी संघर्ष किया। इसके पश्चात् बुक्का ने रेड्डी राज्य के शासक प्रोलयवेमा के उत्तराधिकारी को पराजित किया और उसका राज्य विजयनगर में मिला लिया।

हरिहर द्वितीय (1379-1404 ई.)– 1379 ई. में बुक्का की मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र हरिहर द्वितीय विजयनगर का शासक बना। उसने महाराजाधिराज की उपाधि धारण की। अभिलेखों से यह ज्ञात होता है कि हरिहर द्वितीय के समय विजयनगर तथा मुस्लिम राज्यों में निरन्तर संघर्ष चलते रहे। वह एक महान् विजेता तथा महान् सम्राट था। उसे अपना राज्य सुसंगठित करने तथा उसे प्रतिष्ठा दिलाने के लिए दो शांतिमय दशक प्राप्त हुए। उसके अधिकार में पूर्वी, दक्षिणी तथा पश्चिमी सागर से घिरा हुआ विशाल साम्राज्य था।

देवराय प्रथम (1406-1422 ई.)– देवराय प्रथम के राज्याभिषेक के समय परिस्थितियाँ उसके अनुकूल नहीं थी। कोंडावीडू के रेड्डी राजा तथा बहमनी सुल्तान उसके प्रति शत्रुता रखते थे, परन्तु देवराय प्रथम ने रेड्डी राजा को पराजित किया तथा बहमनी सुल्तान से संघर्ष किया।

देवराय द्वितीय (1423-1446 ई.)– देवराय द्वितीय का बहमनी सुल्तानों से निरन्तर युद्ध चलता रहा। शासन के अन्तिम वर्षों में उसे बहमनी सुल्तान से पराजित होना पड़ा तथा निश्चित वार्षिक खराज देने का वचन देना पड़ा।

वीरूपाक्ष द्वितीय (1465-1486 ई.)– वीरूपाक्ष द्वितीय के समय संगम-राजवंश का पतन हो गया। उसके समय में विजयनगर साम्राज्य की सीमाएं सिकुड़ गई। प्रान्तीय शासकों के विद्रोह के कारण विजयनगर की स्थिति खराब थी। इस अवसर का लाभ उठाते हुए बहमनी सुल्तान मुहम्मदशाह तृतीय ने अपने प्रधानमन्त्री महमूद गवां को कोंकण पर अधिकार करने के लिए भेजा। महमूद गवां ने देलना और गोवा पर अधिकार किया तथा विजयनगर को बड़ी क्षति पहुँचाई।

विजयनगर साम्राज्य की शासन व्यवस्था

विजयनगर के शासन प्रबन्ध के विषय में विदेशी यात्रियों, ईरान के अब्दुर्रज्जाक, इटली के निकोलो कोण्टी, पुर्तगाल के पायस तथा अनेक समकालीन एवं परवर्ती इतिहासकारों के ग्रन्थों से विस्तृत जानकारी प्राप्त होती है। इन विवरणों के अनुसार, विजयनगर के शासकों ने शासन-प्रबन्ध की व्यवस्था बड़ी कुशलतापूर्वक की थी।

केन्द्रीय शासन

विजयनगर की शासन व्यवस्था में राजा सम्पूर्ण सत्ता का सर्वोच्च था। राजा निरंकुश होता था, परन्तु राज्य में शान्ति एवं समृद्धि रखना तथा जनता के कल्याण की दृष्टि से कार्य करना उसके प्रमुख कर्तव्य थे। डॉ. आशीर्वादीलाल के अनुसार, "वह साम्राज्य का सर्वोच्च सैनिक, असैनिक तथा न्याय अधिकारी होता था, किन्तु वह अत्याचारी अथवा उत्तरदायित्वहीन निरंकुश शासक न था।" राजा धर्म के अनुसार शासन करता था। विजयनगर के सबसे प्रसिद्ध शासक कृष्णदेवराय ने अपनी पुस्तक 'अमुक्तमाल्यद' में राजा के कर्तव्यों का विस्तृत वर्णन किया है। पुर्तगाली यात्री पायस लिखता है, "राजा के पास असीमित अधिकार थे। राजा को शासन कार्य में सहायता देने के लिए मन्त्रि परिषद थी। इसमें मन्त्री, प्रान्तीय शासक, सैनानी, पुरोहित और व्यापारिक समुदायों के प्रतिनिधि होते थे। परिषद के सदस्य राजा द्वारा मनोनीत होते थे। परिषद के सदस्यों के कुछ पद पैतृक भी होते थे। ब्राह्मणों के अतिरिक्त क्षत्रिय तथा वैश्य भी मन्त्री होते

थे। राजा मन्त्रियों के परामर्श को मानने के लिए बाध्य नहीं था।'' मन्त्रियों के अतिरिक्त कोषाध्यक्ष, पुलिस अधिकारी, जवाहरात का रक्षक तथा व्यापार विभाग के अधिकारी होते थे। इन सभी अधिकारियों को जागीरें प्राप्त थीं।

प्रान्तीय शासन

शासन प्रबन्ध की सुविधा के लिए विजयनगर साम्राज्य कई प्रान्तों में विभक्त था। प्रत्येक प्रान्त एक नायक के अधीन था। प्रत्येक प्रान्तपति को अपने प्रान्त में सैनिक, असैनिक तथा न्याय के पूर्ण अधिकार प्राप्त थे। उन्हें अपनी आय–व्यय का विवरण केन्द्र को प्रस्तुत करना पड़ता था। प्रान्तपति प्रान्त का राजस्व वसूल करके उसका 1/3 भाग केन्द्रीय राजकोष में जमा करता था, शेष 2/3 भाग वह प्रान्तीय शासन पर व्यय करता था। नायक को आवश्यकता पड़ने पर केन्द्र को सैन्य मदद करनी पड़ती थी। जनता के सुख एवं शान्ति की उपेक्षा करने वाले प्रान्तपति को राजा द्वारा दण्ड दिया जाता था। प्रान्तपति यद्यपि राजा के कठोर नियन्त्रण में थे, फिर भी अपने क्षेत्र में उन्हें पर्याप्त अधिकार प्राप्त थे।

स्थानीय शासन

शासन प्रबन्ध हेतु प्रान्त नाडू, सीमा, ग्राम आदि में विभक्त थे। ग्राम शासन की सबसे छोटी इकाई थी। ग्राम का प्रबन्ध ग्रामसभा द्वारा किया जाता था। राजा एक अधिकारी महानायकाचार्य द्वारा ग्राम पर नियन्त्रण रखता था।

आय के साधन

साम्राज्य की आय का प्रमुख स्त्रोत भू-राजस्व था। हिन्दू विधि के अनुसार, कर उपज का 1/6 भाग था, परन्तु सम्भवतः इससे अधिक भू-राजस्व लिया जाता था। राजस्व जमीन की पैदावार के अनुसार वसूल किया जाता था। भू-राजस्व के अतिरिक्त चराई, विवाह कर, चुंगी, व्यापार कर, उद्यान कर, धोबियों, व्यापारियों, सौदागरों, कलाकारों, भिक्षुकों, नाइयों, चमारों, वेश्याओं आदि पर लगाए जाने वाले करों से भी राज्य को आय होती थी। जनता पर करों का बोझ अधिक था। विजयनगर साम्राज्य एक संगठित व्यापार नीति का विकास नहीं कर पाया।

न्याय व्यवस्था

न्याय के क्षेत्र में राजा का निर्णय अन्तिम माना जाता था। न्यायालयों में मुकदमों का निर्णय हिन्दू प्रथाओं के अनुसार किया जाता था। दीवानी तथा फौजदारी कानूनों को कठोरता से लागू किया जाता था। न्याय में विलम्ब नहीं किया जाता था। दण्ड कठोर थे।

कृष्णदेवराय के समय की न्याय व्यवस्था का वर्णन करते हुए बारबोसा लिखता है, ''सभी के साथ निष्पक्षता तथा न्याय का बर्ताव किया जाता है, न केवल शासक द्वारा बल्कि नागरिकों द्वारा भी, एक-दूसरे के प्रति।''

सेना

विजयनगर साम्राज्य की सैनिक व्यवस्था का उत्तरदायित्व कंडाचर नामक विभाग के पास था। इसका अध्यक्ष सेनापति या दण्डनायक होता था। राजा के पास अपनी सेना होती थी। आवश्यकता पड़ने पर वह प्रान्तीय सेनाओं को बुलाता था। सेना की संख्या

शासक की सामर्थ्य पर निर्भर करती थी। सेना पैदल, घुड़सवार, तोपखाना तथा ऊँट चार प्रकार की होती थी। हाथियों पर बहुत विश्वास किया जाता था। डॉ. ईश्वरीप्रसाद के अनुसार, ''सैन्य संगठन नागरिक संगठन की तरह सामन्तवादी प्रकृति का था।'' सामन्तवादी सेना में पाये जाने वाले सभी दुर्गुण सेना में मौजूद थे। आशीर्वादीलाल के अनुसार, "ऐसा प्रतीत होता है कि विजयनगर की सेना का संगठन तथा अनुशासन दक्षिण के मुस्लिम शासकों की अपेक्षा घटिया रहा होगा।''

विजयनगर साम्राज्य के पतन के कारण

लगभग तीन शताब्दियों तक विजयनगर साम्राज्य ने दक्षिण के मुसलमान राज्यों से संघर्ष किया। उन्होंने हिन्दू धर्म तथा संस्कृति की रक्षा करने में सफलता प्राप्त की, परन्तु 17वीं सदी के मध्यान्ह तक आते-आते विजयनगर साम्राज्य का पतन हो गया। इस पतन के प्रमुख कारण निम्नलिखित थे–

1. विजयनगर राज्य का स्वरूप सामन्तशाही था। इस व्यवस्था में विकेन्द्रीकरण की प्रवृत्तियों के बीज थे।

2. विजयनगर की सेना का स्वरूप भी सामन्ती ढंग का था। सेना अपने सामन्त की स्वामिभक्त होती थी। स्मिथ के अनुसार, "सेना में संगठन का होना नितान्त आवश्यक था, इसलिए विजयनगर साम्राज्य बहमनी साम्राज्य का सामना नहीं कर पाया।''

3. विजयनगर की शासन व्यवस्था में राजा सर्वोच्च एवं निरंकुश था। उसके व्यक्तित्व पर ही राज्य का स्थायित्व निर्भर करता था। निर्बल शासक साम्राज्य की सुरक्षा करने में असफल रहे। परिणामस्वरूप साम्राज्य टूटने लगा।

4. प्रान्तीय गवर्नर बहुत अधिक शक्तिशाली थे। राजाओं ने प्रान्तीय गवर्नरों की महत्वाकांक्षा के दमन करने का प्रयत्न नहीं किया।

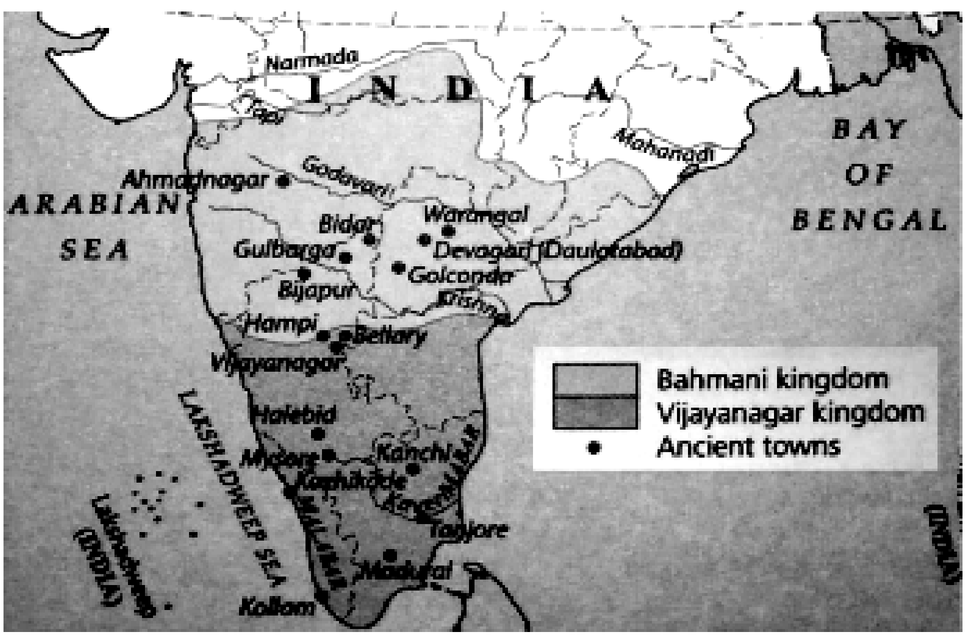

चित्र क्र. 2.2: बहमनी साम्राज्य एवं विजनगर साम्राज्य

बहमनी साम्राज्य

स्थापना–

मुहम्मद तुगलक को शासन के उत्तरार्ध में अनेक भयंकर विद्रोहों का सामना करना पड़ा। दौलताबाद में सादा अमीरों ने विद्रोह कर दिया। अगस्त 1347 को हसन जफर खाँ का राज्याभिषेक हुआ। उसने अबुल मुजफर अलाउद्दीन हसन बहमनशाह का विरूद्ध धारण किया और इस प्रकार बहमनी वंश एवं राज्य की नींव डाली।

बहमनी सुल्तान और उनका शासन–

सिंहासन पर बैठने के पश्चात् बहमनी राज्य के संस्थापक सुल्तान अलाउद्दीन हसन (1347-1358 ई.) ने राज्य के विस्तार के लिए निरन्तर संघर्ष किया। उसके प्रयत्नों से बहमनी राज्य की सीमाएं उत्तर में बानगंगा से लेकर दक्षिण में कृष्णा तक और पश्चिम में दौलताबाद से पूर्व में भोगिरि तक विस्तृत हो गई। शासन प्रबन्ध की सुविधा की दृष्टि से सुल्तान ने अपने राज्य को चार प्रान्तों में विभक्त किया। ये प्रान्त थे – गुलबर्गा, दौलताबाद, बरार और बीदर।

मुहम्मद शाह द्वितीय (1378-1397 ई.) के काल में बहमनी राज्य के विजयनगर के साथ सम्बन्ध शान्तिपूर्ण रहे। उसकी मृत्यु के बाद फीरोजशाह (1397-1422 ई.) में विजयनगर से तीन युद्ध लड़े। अन्तिम युद्ध 1420 ई. में वह पराजित हुआ। बहमनी राज्य का सुल्तान अहमदशाह (1422-1435 ई.) ने गुलबर्गा के स्थान पर बीदर को अपनी राजधानी बनाया। वह कट्टर एवं संकीर्ण धार्मिक विचारों का शासक था। उसने विजयनगर पर आक्रमण कर वहाँ के शासक देवराय को सन्धि के लिए विवश किया। अहमदशाह ने वारंगल और मालवा के शासकों को भी पराजित किया।

महमूद गवां के कार्य एवं उपलब्धियाँ–

महमूद गवां फारस का निवासी था। एक व्यापारी के रूप में वह दक्षिण भारत आया। दक्षिण में उसका सम्पर्क बहमनी साम्राज्य के सुल्तान हुमायूं (1457-1461 ई.) से हुआ। उसकी योग्यता से प्रभावित होकर सुल्तान हुमायूं ने महमूद गवां को प्रशासन में एक उच्च पद पर प्रतिष्ठित किया। हुमांयू के उत्तराधिकारी अल्पवयस्क निजामशाह (1461-1463 ई.) के शासनकाल में उसने अपने प्रभाव एवं शक्ति में बहुत वृद्धि की। निजामशाह की मृत्यु के पश्चात् मुहम्मदशाह तृतीय ने महमूद गवां को प्रधानमन्त्री (वजीर) के पद पर नियुक्त किया।

शासन प्रबन्ध–

महमूद गवां एक योग्य सेनापति के अतिरिक्त महान् शासन प्रबन्धक भी था। उसने सम्पूर्ण साम्राज्य को आठ प्रान्तों में विभक्त किया। प्रत्येक प्रान्त के लिए एक प्रान्तपति की नियुक्ति की। राज्य के दुर्गों को उसने योग्य सैनिक पदाधिकारियों के नियन्त्रण में रखा। साम्राज्य की सुरक्षा, राजस्व वसूली एवं राज्य विस्तार के उद्देश्य से सेना को सुसंगठित किया। सैनिकों को जागीर के स्थान पर नगद वेतन देना प्रारम्भ किया। राजस्व एवं कृषि के विकास के लिए उसने महत्वपूर्ण सुधार किए। भू-राजस्व का उचित प्रबन्ध करने के लिए महमूद गवां ने भूमि की नाप करवाई और उपज के अनुसार भूमि का वर्गीकरण करवाया। राजस्व नगद तथा अनाज दोनों ही रूप में वसूल किया गया। स्थानीय कर्मचारी किसानों का शोषण न कर पाये, इसका विशेष ध्यान रखा। महमूद

टिप्पणी

गवां ने न्याय के क्षेत्र में अनेक सुधार किए और शिक्षा को प्रोत्साहित किया। वह स्वयं विद्वान था। बीदर में उसने एक भव्य विद्यालय तथा पुस्तकालय की स्थापना की।

महमूद गवां की हत्या–

महमूद गवां की सफलताओं से उसके विरोधी अमीर उससे ईर्ष्या करने लगे। उन्होंने उसके विरूद्ध एक जाली पत्र तैयार किया तथा नशे में धुत सुल्तान को यह विश्वास दिलाया कि महमूद गवां के विजयनगर के शासक से सम्बन्ध हैं और इस प्रकार महमूद गवां देशद्रोही है। परिणामस्वरूप अप्रैल 1481 ई. में सुल्तान की आज्ञा से महमूद गंवा की हत्या कर दी गई। बहमनी राज्य का अन्तिम सुल्तान कलीमुल्लाह था, जिसने 1524 ई. से 1526 ई. तक शासन किया। उसकी मृत्यु के साथ ही बहमनी राज्य भी समाप्त हो गया।

बहमनी राज्य के पतन के कारण

बहमनी राज्य के पतन के प्रमुख कारण अग्रलिखित थे–

1. बहमनी राज्य के सुल्तान स्वेच्छाचारी एवं निरंकुश शासक थे। उनके अधिकारों पर कोई अंकुश नहीं था।

2. अधिकांश सुल्तान धर्मान्ध, भोग-विलासी तथा अत्याचारी प्रवृत्ति के थे। बहमनी सुल्तानों ने अपनी प्रजा की भौतिक उन्नति के लिए कोई ठोस नीति नहीं अपनाई।

3. प्रजा सरकारी कर्मचारियों के भ्रष्ट व्यवहार के कारण दुःखी थी। उनकी असहिष्णु धार्मिक नीति के कारण हिन्दुओं में असन्तोष व्याप्त था।

4. इसके अतिरिक्त अपनी स्थापना से लगभग 180 वर्ष तक पूरे अस्तित्व काल में बहमनी सुल्तानों को आन्तरिक कलह तथा बाहरी शत्रुओं का निरन्तर सामना करना पड़ा। इस आन्तरिक कलह का प्रमुख कारण दरबार में मुस्लिम अमीरों के दो दलों के मध्य ईर्ष्या, प्रतिस्पर्धा तथा शत्रुता का होना था। इन अमीरों में एक दल दक्षिणी अमीरों का था, जिसमें स्थानीय मुसलमान अमीर थे तथा दूसरा दल विदेशी अमीरों का था। इन दो दलों के मध्य धार्मिक मतभेदों के कारण यह शत्रुता और प्रखर हो गई थी। दक्षिण अमीर सुन्नी थे, जबकि अधिकतर विदेशी अमीर शिया मतावलम्बी थे।

5. महमूद गवां जैसे योग्य प्रधानमन्त्री को भी दरबारी षड़यन्त्र का शिकार होना पड़ा। उसके वध के साथ ही बहमनी राज्य का पतन सुनिश्चित हो गया।

6. बहमनी राज्य के विघटन के लिए सुल्तान भी उत्तरदाई थे। बहमनी राज्य के राजनीतिक जीवन में कुल 18 शासक हुए, परन्तु असाधारण योग्यता वाला सुल्तान कोई भी नहीं हुआ। परिणामस्वरूप राज्य की शक्ति कम हो गई।

बहमनी राज्य का विघटन

1538 ई. में बहमनी राज्य के विघटन से निम्नलिखित पांच राज्यों का उदय हुआ—

1. बीजापुर का आदिलशाही राज्य,
2. गोलकुण्डा का कुतुबशाही राज्य,
3. अहमदनगर का निजामशाही राज्य,
4. बरार का इमादशाही राज्य और
5. बीदर का बरीदशाही राज्य।

अपनी प्रगति जाँचिए

5. विजयनगर साम्राज्य की स्थापना किसने की?

   (क) हरिहर बुक्का ने (ख) कृष्णदेवराय ने

   (ग) वीर बल्लाल ने (घ) हरिहर द्वितीय ने

6. बहमनी राज्य का सुल्तान था।

   (क) निजामशाह (ख) महमूद

   (ग) कसीमुजाए (घ) हुमायूं

7. सभी के साथ निर्धनता व न्याय का बर्ताव करता था।

   (क) कृष्णदेवराय (ख) मुजफर

   (ग) शाह (घ) महमूद गंवा

8. बहमनी राज्य का संस्थापक था?

   (क) अलाउद्दीन हसन (ख) मुजाहिद शाह

   (ग) अहमद शाह (घ) इसमाइल मुख

9. महमूद गवां को किस वंश के सुल्तान ने अपना वजीर बनाया?

   (क) खिलजी वंश (ख) तुगलक वंश

   (ग) बहमनी वंश (घ) विजयनगर राज्य

2.4 तैमूर का आक्रमण और उसका प्रभाव

तैमूर अत्यन्त महत्वाकांक्षी था। उसकी महत्वाकांक्षी योजनाओं को रोकने वाली कोई विशाल राजसत्ता ट्रान्स आक्सियाना में नहीं थी। अतः वह स्थानीय स्वतन्त्र युद्ध नेताओं को पराजित करने में सफल हुआ। 13 अप्रैल, 1370 ई. को तैमूर मंगोल परम्पराओं का अनुसरण करते हुए समरकन्द के सिंहासन पर बैठा। शीघ्र ही उसने ख्वारिज्म, फारस तथा मेसोपोटामिया पर अधिकार किया तथा विशाल साम्राज्य का निर्माण किया। अपनी विजयों से उत्साहित होकर तैमूर ने अपनी सेना का रूख भारत की ओर मोड़ा।

टिप्पणी

तैमूर
भारत पर आक्रमण 1398 ई. में किया

तैमूर के भारत पर आक्रमण के उद्देश्य

भारत पर तैमूर के आक्रमण का मुख्य उद्देश्य भारत की अतुल धन-सम्पत्ति लूटना था, परन्तु 'मलफुजात-ए-तैमूरी' और 'जफरनामा' के अनुसार उसका उद्देश्य विधर्मियों का विनाश करना था। 'जफरनामा' के लेखक शरफुद्दीन यजदी के अनुसार, तैमूर ने मार्ग–भ्रष्ट लोगों तथा मूर्तिपूजकों के विनाश का निश्चय कर लिया था। अतः धार्मिक युद्ध करने की इच्छा से प्रेरित होकर मुल्तान औद दिल्ली की ओर प्रस्थान किया। लेनपूल के अनुसार, भारत पर आक्रमण करने के पूर्व तैमूर ने स्वयं कहा था, ''मेरा उद्देश्य है काफिरों के विरूद्ध युद्ध करना, पैगम्बर की आज्ञानुसार उन्हें सच्चा धर्म स्वीकार करने को बाध्य करना, देश को बहुदेववाद तथा अन्धविश्वास से मुक्त करना तथा मन्दिरों और मूर्तियों का उन्मूलन करना, जिससे हम धर्म तथा ईश्वर के समर्थक और सैनिक बनकर 'गाजी' तथा 'मुजाहिद' का पद प्राप्त करेंगे।''

डॉ. आशीर्वादीलाल के अनुसार, हिन्दुस्तान की अपार सम्पत्ति ने उसका ध्यान आकृष्ट किया। प्रोफेसर मोहम्मद हबीब के शब्दों में, ''तैमूर ने भारतीय अभियान की योजना एक उत्तम समय-सारिणी सहित केवल लूटमार के उद्देश्य से बनाई थी।''

तैमूर के आक्रमण के समय भारत की दशा

दिल्ली के सुल्तान फीरोजशाह तुगलक की मृत्यु के पश्चात उसके उत्तराधिकारी केन्द्रीकृत एवं निरंकुशवाद के सिद्धान्त पर आधारित शासन व्यवस्था को सम्भाल नहीं सके। तुगलक शाह द्वितीय, अबुबक्र शाह, नासिरूद्दीन महमूद कुशल एवं योग्य शासक नहीं थे। सल्तनत के प्रमुख अधिकारी उद्दण्ड हो गए थे और सल्तनत की दुर्बलता से लाभ उठाकर स्वतन्त्र होने का प्रयास कर रहे थे। सल्तनत की दुर्बल राजनीतिक स्थिति किसी भी आक्रमणकारी के लिए अनुकूल थी।

टिप्पणी

तैमूर के आक्रमण

17 दिसम्बर, 1398 ई. को दिल्ली के सुल्तान महमूदशाह एवं तैमूर की सेना में युद्ध हुआ। सुल्तान की पराजय हुई और उसे प्राण बचाकर गुजरात की ओर भागना पड़ा। 18 दिसम्बर, 1398 ई. को तैमूर ने दिल्ली में प्रवेश किया। दिल्ली के नागरिकों ने उलेमा के नेतृत्व में तैमूर से दया की प्रार्थना की। उन्होंने तैमूर को आश्वासन दिया कि वे उसके नाम का खुत्बा पढ़वाएँगे और सुरक्षा धन एकत्रित कर सौंपेंगे। तैमूर ने अपनी ओर से दिल्ली के नागरिकों को सुरक्षा का आश्वासन दिया, परन्तु इस आश्वासन का पालन नहीं किया। तैमूर की सेना ने दिल्ली की जनता पर अत्याचार किए। जब इन अत्याचारों का दिल्ली की जनता ने प्रतिरोध किया, तब क्रुद्ध होकर तैमूर ने लूट और हत्याकाण्ड के आदेश दे दिए। पन्द्रह दिन तक तैमूर की सेना ने लूट और हत्याकाण्ड का खेल खेला। हजारों व्यक्तियों को बन्दी बनाया गया। अतुल धन-सम्पत्ति तैमूर के हाथ लगी। दिल्ली की बस्तियां उजाड़ दी गई। दिल्ली से तैमूर ने शिल्पियों को पकड़ लिया और उन्हें समरकन्द भेज दिया। तैमूर स्वयं दिल्ली की लूट, हत्याओं और विनाश का वर्णन उत्साह से करता था। 'जफरनामा' के अनुसार, ''शाही सेना के प्रत्येक व्यक्ति ने लगभग डेढ़-डेढ़ सौ स्त्री-पुरुष तथा बालक बन्दी बनाए। साधारण से साधारण व्यक्ति को 20 दास प्राप्त हो गए थे।''

तैमूर के आक्रमण का भारत पर प्रभाव

डॉ. आशीर्वादी लाल के अनुसार, ''भारत को जितनी क्षति और दुःख तैमूर ने पहुँचाया, उतना उससे पहले किसी आक्रमणकारी ने एक आक्रमण में नहीं पहुँचाया था।'' तैमूर के आक्रमण के भारत पर निम्नलिखित प्रभाव पड़े—

1. जन-धन की हानि—

तैमूर एक नृशंस शासक था। वह जहाँ भी गया उसने लूटमार, अग्निकाण्ड तथा हत्याओं द्वारा नगर और गाँव ध्वस्त कर दिए। तैमूर ने अपने सैनिकों को खाद्यान्न उपलब्ध कराने के लिए फसलों को बर्बाद किया तथा अन्न भण्डारों को लूट लिया। उसने उत्तर पश्चिमी सीमा प्रदेशों, दिल्ली और राजस्थान के उत्तरी भागों में भयानक विनाश किया। तैमूर का वास्तविक उद्देश्य लूटपाट करना था। अतः उसने धार्मिक आधार पर कोई भेदभाव नहीं किया। हिन्दू और मुसलमान समान रूप से लूटे गए और मार डाले गए। जन-धन की क्षति के कारण जनता को अकाल एवं महामारी का सामना करना पड़ा। इतिहासकार बदायुनी लिखता है, ''जो लोग बच रहे थे, वे अकाल और महामारी के कारण मर गए और दो महीने तक दिल्ली में किसी पक्षी ने भी पर नहीं मारा।''

2. स्वतन्त्र प्रादेशिक राज्यों की स्थापना—

तैमूर के आक्रमण के परिणामस्वरूप स्वतन्त्र प्रादेशिक राज्यों की स्थापना ने गति पकड़ी। जौनपुर, गुजरात, बंगाल, मालवा, पंजाब, ग्वालियर, समाना, कालपी, महोबा, खानदेश आदि स्वाधीन राज्यों की स्थापना हुई। इनमें से कई राज्यों की स्थापना तैमूर के आक्रमण के पूर्व हो गई थी, तैमूर ने दिल्ली सल्तनत के विघटन की प्रक्रिया को पूर्ण किया।

3. इस्लामी सभ्यता, संस्कृति का प्रसार–

तुगलक वंश के पतन के पश्चात् जिन स्थानों पर मुस्लिम स्वतन्त्र राज्यों की स्थापना हुई, वहाँ इस्लामी सभ्यता एवं संस्कृति को फैलने का अवसर मिला।

4. भारतीय स्थापत्य को क्षति–

तैमूर के आक्रमणों के दौरान भारतीय स्थापत्य के बेजोड़ नमूनों का विध्वंस हुआ। अनेक इमारतें और मन्दिर नष्ट हुए।

5. मध्य एशिया में भारतीय शिल्प का प्रचार–

तैमूर भारत से अनेक शिल्पियों को बन्दी बनाकर स्वदेश ले गया। इन शिल्पियों ने समरकन्द एवं अन्य स्थानों पर मस्जिदें, भवन आदि बनाकर भारतीय कला को मध्य एशिया में फैलाया।

6. पंजाब में अशान्ति एवं अव्यवस्था–

तैमूर ने स्वदेश वापस लौटने के पूर्व खिज्रखाँ को मुल्तान, लाहौर और दीपालपुर का सूबेदार नियुक्त किया था। तैमूर के वंशजों ने पंजाब पर अपने अधिकार को कभी नहीं भुलाया। परिणामस्वरूप पंजाब में अशान्ति और अव्यवस्था बनी रही।

अपनी प्रगति जाँचिए

10. तैमूर फौनसी परम्परोओंका अनुसरज करने हुए सिंहासन पर था।
    (क) तुघएक (ख) मंगोल
    (ग) हिंदु (घ) बादशाह
11. तैमूर के आक्रमण से नुकसान हुए थे।
    (क) स्थापत्य नमूने (ख) अशाली
    (ग) मारने (घ) मंदीरे
12. दिल्ली के नागरिकों ने किसके नेतृत्व में तैमूर से दया प्रार्थना की।
    (क) सुलेमान (ख) महोना
    (ग) उलेमा (घ) कालचीज
13. तैमूर ने दिल्ली पर कब आक्रमण किया?
    (क) 1395 ई. (ख) 1396 ई.
    (ग) 1397 ई. (घ) 1398 ई.

2.5 मुगल आक्रमण – बाबर और हुमायूं, शेरशाह सूरी

बाबर के आक्रमण के समय भारत की राजनीतिक दशा

बाबर के भारतीय अभियान के समय भारत की राजनीतिक दशा सोचनीय थी। सम्पूर्ण भारत छोटे-छोटे राज्यों में विभक्त था। उस समय के भारत की तुलना महमूद गजनवी

व मोहम्मद गोरी के आक्रमणों के समय के भारत से की जा सकती है। जिस प्रकार 11वीं तथा 12वीं शताब्दी में सम्पूर्ण भारत छोटे-छोटे राज्यों में विभक्त था, जिनमें अत्यधिक पारस्परिक ईर्ष्या एवं द्वेष की भावनाएँ थीं, उसी प्रकार की स्थिति बाबर के आक्रमण के समय भी थी। अन्तर केवल इतना था कि महमूद गजनवी व गोरी के आक्रमणों के समय राजपूत राज्य विद्यमान थे, किन्तु बाबर का सामना अफगानों व राजपूतों दोनों से हुआ। इस प्रकार बाबर के भारतीय अभियान के समय भारत की स्थिति विदेशी आक्रान्ताओं के लिए पूर्णतया उचित थी। तत्कालीन भारतीय स्थिति के विषय में लेनपूल ने लिखा है, ''विजेताओं की जाति अशान्तिकारियों की एक भीड़ के रूप में संगठित हो गई थी, जो राजसिंहासन को प्राप्त करने के लिए परस्पर लड़ते रहते थे, परन्तु राज्य को संभालने की क्षमता किसी में न थी।''

बाबर ने स्वयं भी भारत की तत्कालीन स्थिति के विषय में लिखा है। उसके अनुसार, ''भारत की राजधानी दिल्ली है। सुल्तान शिहाउद्दीन गोरी के समय से सुल्तान फिरोजशाह तक हिन्दुस्तान का अधिकांश भाग दिल्ली के बादशाह के अधीन था। जब मैंने इसे जीता तो यहाँ पाँच मुसलमान और दो काफिर शासकों का राज्य था। यों तो पहाड़ी व जंगली प्रदेशों में अनेक छोटे-छोटे राजा थे, परन्तु बड़े ये पाँच ही थे।''

बाबर (1526-1530 ई.)

बाबर
मुगल साम्राज्य के संस्थापक एवं मध्यकालीन इतिहास का नया दौर प्रारंभ

भारत में मुगल सत्ता का संस्थापक बाबर ही था। बाबर का वास्तविक नाम जहीरूद्दीन मुहम्मद था। तुर्की भाषा में बाबर का अर्थ 'बाघ' होता है। अतः जहीरूद्दीन मुहम्मद अपने पराक्रम एवं निर्भीकता के कारण 'बाबर' कहलाया तथा बाद में उसका यह नाम प्रचलित हो गया।

पानीपत का प्रथम युद्ध (1525 ई.)–

बाबर ने भारत पर पाँचवी बार आक्रमण नवम्बर, 1525 ई. में किया। बाबर व इब्राहिम की सेनाएँ लगभग एक सप्ताह तक (12 अप्रेल 1526 से 18 अप्रेल 1526 ई. तक) आमने-सामने रहीं, किन्तु दोनों में से किसी का साहस आक्रमण करने का न हुआ। अन्ततः 19 अप्रेल 1526 ई. को बाबर ने रात में लोदी सेना पर आक्रमण किया, किन्तु यह आक्रमण विफल हुआ। तत्पश्चात् 21 अप्रेल को निर्णायक युद्ध हुआ। इसमें इब्राहिम की सेना ने आगे बढ़कर बाबर की सेना पर आक्रमण किया। बाबर ने अपनी सेना की व्यूह रचना अत्यन्त कुशलतापूर्वक की व तुलुगमा पद्धति का प्रयोग किया। बाबर की सेना ने तीन तरफ से लोदी की सेना को घेर लिया। एक ओर तो तोपखाने व दो ओर से तीरों से इब्राहिम की सेना पर आक्रमण किया गया। इस व्यूह रचना के समक्ष इब्राहिम लोदी की सेना टिक न सकी और परास्त हो गई। इब्राहिम लोदी अपने हजारों साथियों के साथ इस युद्ध में मारा गया।

27 अप्रेल 1526 ई. को दिल्ली में उसके नाम का खुतबा पढ़ा गया। इस प्रकार भारत में मुगल शासन की स्थापना हुई।

पानीपत के युद्ध के परिणाम–

1526 ई. में पानीपत का युद्ध निर्णायक था। इससे भारतीय इतिहास में एक नवीन युग का आविर्भाव हुआ। बी.एन. मजूमदार ने इस युद्ध के विषय में लिखा है, ''पानीपत की लड़ाई लोदी वंश के लिए कैनी के युद्ध के समान थी। इस युद्ध ने लोदी वंश का साम्राज्य व प्रभुत्व समाप्त कर दिया। इससे एक युग का पतन हुआ व दूसरे का आविर्भाव हुआ। इस प्रकार सल्तनत युग समाप्त हुआ व मुगल युग की स्थापना हुई।

मुगल शासन की स्थापना–

पानीपत के युद्ध से दिल्ली का साम्राज्य बाबर के हाथों में आ गया। इस प्रकार 1526 ई. में बाबर ने मुगल शासन की स्थापना भारत में की। मुगल शासन की स्थापना हुई और इसके द्वारा भारत को श्रेष्ठ, सुयोग्य एवं शक्तिशाली शासक प्राप्त हुए, जिनके अधीन देश को एक यौगिक संस्कृति के विकास के नवीन प्रयोग प्रारम्भ करने का अवसर मिला।

पानीपत के युद्ध में इब्राहिम लोदी के पराजित होने के कारण भारत को अत्यधिक हानि का सामना करना पड़ा। बाबर को अपार धन-सम्पत्ति प्राप्त हुई जो उसने सैनिकों व काबुल की जनता में वितरित कर दी।

बाबर की मृत्यु

पानीपत, खानवा व घाघरा के युद्ध के बाद यद्यपि भारत पर उसका शासन सुदृढ़ हो चुका था, किन्तु उसका स्वास्थ्य निरन्तर गिरता जा रहा था। बाबर अपनी युवावस्था में अत्यधिक शक्तिशाली था, किन्तु अब बाबर के अन्तिम दिन आ गए थे। अन्त में 26 दिसम्बर, 1530 ई. को बाबर की मृत्यु हो गई तथा उसकी इच्छा के अनुसार उसे काबुल में दफनाया गया। जिस समय बाबर की मृत्यु हुई हुमायूं सम्भल में था। अतः चार दिन बाद 30 दिसम्बर 1530 ई. को जब वह राजधानी आया, तो उसका राज्याभिषेक किया गया।

हुमायूं की प्रारम्भिक कठिनाइयाँ

हुमायूं 30 दिसम्बर, 1530 ई. को राज सिंहासन पर आसीन हुआ, जो उसके लिए कांटों का ताज प्रमाणित हुआ। इस विषय में ख्वादां मीर का कथन उल्लेखनीय है। उनके शब्दों में, ''जैसे ही बाबर ने इस संसार की गद्दी छोड़ी और स्वर्ग में अनन्त विश्राम प्राप्त किया, हुमायूं की विपत्तियों का आरम्भ हो गया।'' हुमायूं को राजगद्दी पर बैठने के पश्चात अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ा, जिनमें से प्रमुख निम्नवत हैं–

1. साम्राज्य का विभाजन– बाबर ने अपनी मृत्यु से कुछ समय पूर्व हुमांयू से कहा था, ''हुमायूं मेरे आदेश का सारांश यह है कि अपने भाइयों के साथ कोई बुराई मत करना चाहे वे इसके योग्य ही हों।'' बाबर ने हुमायूं से साम्राज्य को भाइयों में विभाजित करने के लिए भी कहा था। अतः हुमायूं ने बाबर की इच्छानुसार साम्राज्य को अपने भाइयों में विभाजित कर दिया था। हुमायूं ने कामरान को काबुल व कन्दहार, अस्करी को सम्भल व हिन्दाल को अलवर का प्रान्त दे दिया था। कालान्तर में साम्राज्य विभाजन व उसके लिए परेशानी का कारण बना।

2. रिक्त राजकोष– बाबर ने दिल्ली पर अधिकार करने के पश्चात वहां के राजकोष को खुले हाथों अपने सैनिकों में वितरित किया था। यहाँ तक कि काबुल की जनता में भी धन बाँटा गया था। बाबर की इस अपव्ययी नीति के कारण राजकोष खाली हो गया। हुमायूं ने भी शासक बनने के पश्चात् आर्थिक स्थिति को सुधारने का प्रयत्न न किया व धन का अपव्यय किया। अतः साम्राज्य आर्थिक दृष्टिकोण से कमजोर हो गया। राज्य की आर्थिक स्थिति को सुधारना हुमायूं के लिए आवश्यक था।

3. राजपूत समस्या– बाबर ने खानवा के युद्ध में राणा सांगा को परास्त करके राजपूतों की शक्ति को चकनाचूर कर दिया था, किन्तु राजपूत पुनः धीरे-धीरे संगठित होते जा रहे थे। इस बार राजपूतों का नेता राणा सांगा का पुत्र रत्नसिंह था, जो मुगलों को भारत से निष्कासित करने के लिए दृढ़ संकल्प किए हुए था।

4. अफगान समस्या– राजपूतों के साथ-साथ अफगान सरदार भी पुनः अपना राज्य प्राप्त करने की चेष्टा कर रहे थे। पानीपत के युद्ध में यद्यपि इब्राहिम लोदी पराजित हुआ व मारा गया था, किन्तु इससे अफगान शक्ति का उन्मूलन नहीं हुआ था। इब्राहिम लोदी का भाई महमूद लोदी बंगाल के शासक नुसरतशाह की सहायता से पुनः अपने पैतृक राज्य को प्राप्त करना चाहता था। बिहार में शेर खां भी स्वतन्त्र राज्य स्थापित करने का स्वप्न देख रहा था तथा मुगलों को भारत से निकालना चाहता था। इब्राहिम लोदी का चाचा आलम खाँ भी गुजरात के शासक की सहायता लेकर दिल्ली पर अधिकार करना चाहता था।

हुमायूं–शेरशाह युद्ध

चौसा का युद्ध–

जिस समय हुमायूं गौड़ में आराम कर रहा था, उसके भाई हिन्दाल ने विद्रोह कर दिया। अतः हुमायूं को वापस लौटना पड़ा, किन्तु रास्ते में मार्ग को शेर खां ने अवरूद्ध कर रखा था। उस समय दोनों सेनाएं आमने-सामने तीन माह तक पड़ी रहीं। 25 जून, 1539 ई. को भारी वर्षा हुई जिससे मुगल शिविर का स्थान नीचा होने के कारण मुगल

सेना के कैम्पों में पानी भर गया। इसका लाभ उठाते हुए 26 जून की रात में शेर खाँ ने हुमायूं पर आक्रमण कर दिया हुमायूं की सेना में भगदड़ मच गई व हुमायूं को युद्ध-क्षेत्र छोड़कर भागना पड़ा। भागते समय निजाम नामक भिश्ती ने हुमायूं को गंगा नदी पार कराके उसकी जान बचाई। इस युद्ध में विजयी होने पर शेर खाँ ने 'शेरशाह' की उपाधि धारण की।

बिलग्राम अथवा कन्नौज का युद्ध–

चौसा के युद्ध में पराजित होने के पश्चात् भागकर हुमायूं आगरा आया व किसी प्रकार एक सेना एकत्र की। उसके भाइयों ने उसकी मदद न की। शेरशाह हुमायूं का पीछा करता हुआ फरवरी, 1540 में कन्नौज तक आ गया। हुमायूं भी अप्रैल, 1540 ई. में अपनी सेना के साथ कन्नौज पहुँचा। दोनों सेनाएं एक माह तक आमने-सामने पड़ी रहीं। 15 मई, 1540 ई. को हुई अत्यधिक वर्षा से लाभ उठाकर शेरशाह ने मुगलों पर आक्रमण किया। वर्षा के कारण मुगलों की तोपें बेकार हो गईं और मुगल सेना भाग खड़ी हुई। हुमायूं भी किसी प्रकार भागने में सफल हो गया।

हुमायूं का पलायन–

कन्नौज के युद्ध में परास्त होने के पश्चात् हुमायूं भागकर आगरा पहुँचा, किन्तु अफगान सेना द्वारा पीछा किये जाने के परिणामस्वरूप वह आगरा से दिल्ली चला गया। शेर खाँ का सामना न करने का निर्णय लिया गया। हुमायूं व हिन्दाल सिन्ध चले गए। यहीं पर उसकी पत्नी हमीदाबानू ने उसके पुत्र को जन्म दिया, जो कालान्तर में सर्वप्रमुख मुगल सम्राट अकबर बना। वह फारस भाग गया। इस प्रकार 1540 ई. से 1555 ई. तक उसे निर्वासित जीवन व्यतीत करना पड़ा। इसी बीच शेर खाँ ने सम्पूर्ण पंजाब पर भी अधिकार कर लिया।

हुमायूं की असफलता के कारण

हुमायूं की असफलताओं के लिए अनेक कारण उत्तरदाई थे, जिनमें से कुछ प्रमुख निम्नवत थे–

1. साम्राज्य का बंटवारा– बाबर ने मृत्यु से पूर्व यह इच्छा प्रकट की थी कि हुमायूं अपने भाइयों के साथ अच्छा व्यवहार करे। बाबर की इस इच्छा की पूर्ति ने हुमायूं के समक्ष अनेक समस्याओं को जन्म दिया। हुमायूं ने बाबर की इच्छा को मानते हुए सम्पूर्ण साम्राज्य को चारों भाइयों में विभक्त कर दिया। उस समय आवश्यकता सम्पूर्ण साम्राज्य को एकसूत्र में पिरोने की थी, न कि उसके विभाजन की। इससे साम्राज्य की शक्ति पर आघात हुआ। इसके अतिरिक्त हुमायूं के भाई अब दिल्ली के सिंहासन पर अधिकार करने की आकांक्षा करने लगे तथा अनेक बार उन्होंने विद्रोह किया, किन्तु प्रत्येक बार हुमायूं ने उन्हें क्षमा कर दिया।

2. शेरशाह की शक्ति की उपेक्षा– हुमायूं ने शेरशाह की निरन्तर बढ़ती हुई शक्ति की उपेक्षा की। उसका विचार था कि वह जब चाहेगा, आसानी से शेर खाँ को परास्त कर देगा। ऐसा सोचना हुमायूं की बहुत बड़ी भूल थी। उसे तुरन्त शेर खाँ पर आक्रमण करके उसकी शक्ति को कुचल देना चाहिए था, किन्तु हुमायूं ने ऐसा नहीं किया व शेरशाह को अपनी शक्ति में वृद्धि करने का समुचित अवसर प्राप्त हो गया। डॉ. आशीर्वादी

लाल श्रीवास्तव ने हुमायूं की आलोचना करते हुए लिखा है, ''हुमायूं के स्थान पर यदि कोई दूरदर्शी और समझदार शासक होता तो वह अगस्त, 1532 ई. की सफलता से प्रेरित होकर आगे बढ़ता तथा साम्राज्य के अन्य भागों में सैनिक अभियानों की लम्बी-चौड़ी योजनाएँ न बनाकर पहले अफगानों की जड़ें खोद देता।'' यह निःसंदेह हुमायूं की एक राजनीतिक भूल थी।

3. समय का दुरूपयोग एवं आमोद-प्रमोद में व्यस्त– हुमायूं की असफलता का एक प्रमुख कारण उसके द्वारा समय का सदुपयोग न करना था। जिस समय उसे तीव्र गति से आगे बढ़कर विजय प्राप्त करनी चाहिए थी, वह विलासिता में व्यस्त हो जाता था तथा शत्रु पक्ष को सैनिक तैयारी पूरी कर लेने का समय दे देता था। गुजरात में बहादुरशाह को परास्त करने के पश्चात् बिना उसका पूर्णतया उन्मूलन किए, उसने माण्डू में विश्राम करना प्रारम्भ कर दिया। परिणामस्वरूप बहादुरशाह ने पुनः शक्ति संचित कर गुजरात पर अधिकार कर लिया। इसी प्रकार उसने शेर खाँ के विरूद्ध भी इसी नीति को अपनाया व शेर खाँ को तैयारी करने का समुचित अवसर दिया। वास्तव में विलासितापूर्ण जीवन व्यतीत करने का हुमायूं का स्वभाव उसके पतन का प्रमुख कारण बना। स्त्री हुमायूं की कमजोरी थी। सब कुछ हारने के पश्चात् भारत से भागते हुए भी चौदह वर्षीय हमीदा बानू से उसका निकाह, इसका स्पष्ट प्रमाण है।

4. हुमायूं की दुर्बलता– लेनपूल ने लिखा है, ''हुमायूं का सबसे बड़ा दुश्मन वह स्वयं था।'' इसमें कोई संदेह भी नहीं है। हुमायूं ने कभी स्थिति के अनुकूल कार्य नहीं किया। चौसा के युद्ध में नींचे स्थान पर शिविर होने के कारण जब वर्षा का पानी उसके शिविरों में भर गया तथा जिसकी वजह से उसे हारना पड़ा तो इससे सबक लेते हुए उसे बिलग्राम कन्नौज के युद्ध के समय ऊँचे स्थान पर शिविर लगाने चाहिए थे, किन्तु ऐसा नहीं हुआ और एक बार फिर उसे उसी परेशानी का सामना करना पड़ा। इसी प्रकार चौसा के युद्ध से सबक लेकर उसे कन्नौज के युद्ध के समय महीनों इन्तजार न करके तुरन्त शेर खाँ पर आक्रमण करना चाहिए था, किन्तु हुमायूं ने कभी भी अपनी भूलों को सुधारने का प्रयास न किया।

हुमायूं की मृत्यु

1555 ई. में पुनः राजगद्दी पर बैठने के पश्चात् हुमायूं के संकट के दिन समाप्त हो गए, क्योंकि अब पहले के समान उसका कोई प्रतिद्वन्द्वी नहीं था। शेरशाह ने जिस उच्च कोटि की प्रशासनिक व्यवस्था की थी, वह भी उसे प्राप्त हो गई थी। अतः दोबारा गद्दी पर बैठने के पश्चात् उसका जीवन सुखद व शान्तिमय ढंग से व्यतीत हो रहा था। 24 जनवरी, 1556 ई. को अपने पुस्तकालय की सीढ़ियों से गिरकर गम्भीर रूप से जख्मी हो गया और कुछ समय पश्चात् उसकी मृत्यु हो गई। उसकी मृत्यु के विषय में लेनपूल का कथन उल्लेखनीय है। उन्होंने लिखा है, ''हुमायूं जीवन भर लड़खड़ाता रहा और लड़खड़ाने से ही उसकी मृत्यु हुई।''

हुमांयू

हुमायूं (1530 ई.-1556 ई.)

शेरशाह सूरी

शेरशाह का राज्याभिषेक–

बिलग्राम के युद्ध में विजय प्राप्त करके 1540 ई. में शेरशाह सूरी दिल्ली व आगरा का शासक बन गया एवं 68 वर्ष की आयु में 1540 ई. में उसका राज्याभिषेक किया गया।

शेरशाह की शासन व्यवस्था–

शेरशाह सूरी की गणना मध्यकालीन भारत के महानतम् शासकों में की गई है। इसका कारण शेरशाह सूरी की सैनिक उपलब्धियाँ नहीं, वरन् उसके द्वारा उच्च कोटि की शासन व्यवस्था की स्थापना किया जाना था।

केन्द्रीय शासन

शेरशाह पूर्णतया एकतन्त्रात्मक शासन पद्धति में विश्वास करता था तथा सम्पूर्ण शक्ति को अपने हाथों में केन्द्रित रखता था। इस कारण प्रो. त्रिपाठी ने उसके शासन के विषय में लिखा है, ''उसका शासन एक व्यक्ति का व निरंकुश था।'' शेरशाह सूरी ने जिस प्रशासनिक व्यवस्था की थी, उसमें सम्पूर्ण शक्ति राजा में ही निहित थी। उसने परामर्श के लिए मन्त्रिपरिषद की आवश्यकता नहीं समझी। फिर भी इतने विशाल साम्राज्य पर शासन करने के लिए उसे कुछ लोगों के सहयोग की आवश्यकता थी। अतः उसने कुछ विभागों की स्थापना की। ये निम्नलिखित थे–

1. दीवान-ए-वजारत– यह विभाग आर्थिक मामलों की देखभाल करता था। इसका अध्यक्ष वजीर होता था। इसका पद प्रधानमन्त्री के समान था, अतः यह अन्य मन्त्रियों के कार्यों को भी देखता था।

2. दीवान-ए-आरिज– इस विभाग के अधिकारी को आरिज-ए-मुमालिक कहा जाता था। सैन्य सम्बन्धी कार्य इस विभाग के अन्तर्गत आते थे।

3. दीवान-ए-रसातल– यह एक प्रकार से विदेश विभाग के समान होता था, जिसके अधिकारी को विदेशमन्त्री कहा जाता था।

4. दीवान-ए-इंशा– यह सामान्य प्रशासन विभाग था, जिसके अधिकारी का प्रमुख कार्य सरकारी आदेशों आदि का पालन करवाना व लिपिबद्ध करना था।

5. दीवान-ए-काजी– यह न्याय विभाग था, जिसके प्रमुख अधिकारी को काजी कहते थे।

6. दीवान-ए-वारिद– यह गुप्तचर विभाग था, जिसके अधिकारी को वारिद-ए-मुमालिक कहा जाता था। इस प्रकार उपर्युक्त विभागों की सहायता से शेरशाह केन्द्रीय प्रशासन करता था। अपने राज्य के प्रत्येक मामले की देख-रेख में वह पूरी रूचि लेता था।

प्रान्तीय प्रशासनिक व्यवस्था–

शेरशाह सूरी का साम्राज्य काफी विस्तृत था। अतः उसने अपने साम्राज्य को अनेक प्रान्तों में विभक्त कर रखा था, जिन्हें 'इक्ता' कहा जाता था। प्रत्येक इक्ता का सर्वोच्च अधिकारी सूबेदार होता था, जो साधारणतया राजा का पुत्र, मित्र अथवा घनिष्ठ व्यक्ति होता था। प्रत्येक प्रान्त पुनः अनेक जिलों में विभक्त होता था, जिन्हें 'सरकार' कहा जाता था। प्रत्येक सरकार में दो प्रमुख अधिकारियों की नियुक्ति की जाती थी, जिन्हें शिकदार-ए-शिकदारान व मुन्सिफ-ए-मुन्सिफान कहते थे। इनमें से शिकदार का पद ऊँचा होता था तथा उसका कार्य सरकार में सामान्य प्रशासन करना था। मुन्सिफ का कार्य न्याय करना था। इन अधिकारियों की सहायतार्थ अनेक अधिकारी होते थे।

प्रत्येक सरकार अनेक नगरों अथवा परगनों में विभक्त होती थी। प्रत्येक परगने के प्रधान को शिकदार या आमिल कहते थे। अपने परगने से भूमि कर प्राप्त कर राजकोष में जमा कराना शिकदार का ही कार्य होता था। शिकदार के पद की महत्ता को देखते हुए शेरशाह जल्दी-जल्दी इनका स्थानान्तरण करता था ताकि भ्रष्टाचार न हो सके। प्रत्येक परगने में एक अमीन भी होता था, जो भूमि की नाप करता था। समस्त लेखा-जोखा रखने के लिए प्रत्येक परगने में एक कानूनगो भी होता था। प्रत्येक परगना अनेक ग्रामों से मिलकर बनता था। प्रशासन की न्यूनतम इकाई ग्राम ही था। गाँव के प्रशासन के लिए 'मुकद्दम' होता था, जो सरकारी कर्मचारी न होकर गाँव का ही प्रतिष्ठित व्यक्ति होता था। इसका पद अवैतनिक होता था। मुकद्दम के अतिरिक्त गाँव का लेखा-जोखा रखने के लिए पटवारी होता था।

भूमि कर व्यवस्था

शेरशाह के शासनकाल की सर्वप्रमुख विशेषता उसके द्वारा कर-प्रणाली में सुधार किया जाना थी। शेरशाह ने अपनी युवावस्था में जागीर का प्रबन्ध करते समय किसानों की समस्या को समझा था। वह किसानों का आदर करता तथा किसानों का किसी प्रकार से उत्पीड़न अथवा फसल को हानि पहुँचाना उसे पसन्द न था, चाहे वह उसके दुश्मन के राज्य की ही क्यों न हो। अतः शासक बनने के पश्चात् भूमि-व्यवस्था

को सुधारने के लिए अनेक कार्य किए। उसने अपने विश्वसनीय अधिकारी अहमदखाँ के निरीक्षण में राज्य की भूमि का वास्तविक नाप कराया। शेरशाह से पहले भूमि नापने की प्रथा नहीं थी। तत्पश्चात् नापी हुई भूमि को, बीघे को इकाई मानते हुए, विभाजित किया गया तथा प्रत्येक किसान के साथ 'इकरारनामा किया जाता था, जिसे 'कबूलियत' कहते थे। प्रत्येक किसान के 'कबूलियत' पर लगान की दर लिखी रहती थी। लगान निश्चित करने के लिए भूमि का वर्गीकरण तीन भागों में किया गया था – उत्तम, मध्यम व निम्न। लगान निश्चित करते समय अधिकारियों को उदारता व वसूल करते समय कठोर नीति का पालन करने के आदेश दिए गए थे। किसानों को भूमि कर नकद अथवा अनाज दोनों रूपों में देने की सुविधा थी, किन्तु नकद लगान लेने को प्राथमिकता दी जाती थी। उसने लगान वसूल करने वाले अधिकारियों को कड़े निर्देश दिए थे कि लगान निश्चित करते समय कृषक के साथ पूर्ण नरमी की जाय, किन्तु लगान कठोरता से वसूल किया जाता था। सेना के गमन के समय यदि फसल को नुकसान होता था तो इसका मुआवजा दिया जाता था।

न्याय व्यवस्था

शेरशाह सूरी न्याय का पुजारी था। न्याय करने व जनता को न्याय मिले, इसमें उसकी गहरी आस्था थी। न्याय के सिंहासन पर बैठने के उपरान्त शेरशाह के लिए गरीब-अमीर, ऊँच-नीच, मित्र-दुश्मन सब एक बराबर होते थे। अपने पुत्र तक को उसने दण्डित किया था। शेरशाह की कठोर दण्ड व्यवस्था एवं न्याय व्यवस्था के कारण उसके राज्य में अपराध बहुत कम होते थे। शेरशाह सूरी का न्याय के विषय में कहना था, ''न्याय करना सभी धार्मिक क्रियाओं में सर्वोत्तम है। इस बात को मुसलमान व काफिर दोनों के राजा मानते हैं।'' उनका मानना था कि न्याय के लिए यदि कठोर नीति का पालन करना पड़े तो वह भी न्यायसंगत है। न्याय का सर्वोच्च अधिकारी वह स्वयं ही था। इसके अतिरिक्त प्रत्येक प्रान्त, सरकार, परगने में भी न्यायिक अधिकारियों की उसने नियुक्ति की थी।

जन रक्षा प्रशासन

जनता की रक्षा करने के लिए पुलिस का कार्य सैनिक अधिकारी ही करते थे। प्रत्येक 'सरकार' (जिले) में शिकदार का यह कर्तव्य था कि वह जनता की रक्षा की व्यवस्था करे। गांवों में इस कार्य का उत्तरदायित्व मुकद्दम का होता था। यदि इन अधिकारियों को डाकुओं व चोरों को पकड़ने के लिए सेना की आवश्यकता होती थी तो वह उन्हें उपलब्ध करा दी जाती थी। इससे जनता में सुरक्षा की भावना जन्म लेती थी।

गुप्तचर विभाग एवं डाक व्यवस्था

शेरशाह ने अत्यन्त उच्च कोटि की स्थापना की। वह समय राजनीतिक उथल-पुथल का होने के कारण शासक को प्रत्येक घटना की पूर्व में जानकारी होना नितान्त आवश्यक था। इस विभाग का अध्यक्ष दरोगा-ए-डाक होता था। सम्पूर्ण राज्य में सरायों, बाजारों व अन्य स्थानों पर गुप्तचर नियुक्त किए जाते थे। देश के प्रत्येक भाग से रोज शासक को खबर पहुँचने के लिए इस विभाग को 3400 घोड़े दिए गए थे। इस प्रकार सक्षम गुप्तचर व्यवस्था के कारण शेरशाह को प्रत्येक घटना की सूचना तुरन्त मिलती रहती थी।

सैन्य व्यवस्था

शेरशाह का काल युद्धों का था। अतः एक शक्तिशाली, अनुशासित एवं विशाल सेना रखना शेरशाह के लिए परम आवश्यक था। सैन्य व्यवस्था के लिए शेरशाह ने न केवल एक विशाल सेना का निर्माण किया वरन् उसने अलाउद्दीन खिलजी की पद्धति को पुनर्जीवित किया तथा सेना को संगठित कर एक शाही व्यवस्था बना दिया। बादशाह स्वयं सेनापति होता था तथा सेना का वेतन चुकाता था। शेरशाह सेना को प्रबन्ध कार्यों में नहीं लगाता था। शान्ति के समय सेना पीछे रहती थी तथा आवश्यकता होने पर ही अन्य विभागों की सहायता करती थी। शेरशाह सैनिकों की भर्ती व योग्यता के आधार पर उनका वेतन निर्धारित करता था। उनकी पदोन्नति भी योग्यता के आधार पर की जाती थी। शेरशाह की सेना में 1,50,000 घुड़सवार, 25,000 पैदल, 5,000 हाथी व तोपखाना था। शेरशाह ने भी अलाउद्दीन के समान घोड़ों को दागने की प्रथा को अपनाया था।

सार्वजनिक कार्य

शेरशाह सूरी ने अपने शासनकाल में अनेक सार्वजनिक कार्य भी किए। इनमें सर्वप्रमुख कार्य अनेक सड़कों का निर्माण करना था। उसने इस प्रकार से सड़कों का निर्माण कराया कि उसकी राजधानी का सीधा सम्बन्ध राज्य के प्रमुख नगरों के साथ हो सके। शेरशाह के द्वारा बनवाई गई सड़कों में प्रमुख कलकत्ता से पेशावर तक की सड़क (जिसे सड़क-ए-आजम कहा जाता था) तथा जिसकी लम्बाई 1500 कोस थी। इसके अतिरिक्त आगरा से जोधपुर व चित्तौड़ तक, लाहौर से मुल्तान तक व आगरा से बुरहानपुर तक की सड़कें प्रमुख हैं।

शेरशाह ने इन मार्गों के किनारे 1700 सराए बनवाईं तथा जगह-जगह पानी, वृक्ष व मस्जिदों की व्यवस्था करवाई। ये सराए यात्रियों व व्यापारियों के लिए विश्रामस्थल का कार्य तो करती थीं, साथ ही डाक-चौकियों के रूप में भी इनका प्रयोग होता था। इन सरायों में डाक ले जाने वाले हरकारे उपस्थित रहते थे। डाक पैदल व घुड़सवार दोनों के द्वारा भेजी जाती थी। शेरशाह धार्मिक प्रवृत्ति का व्यक्ति था तथा विभिन्न संस्थाओं व व्यक्तियों को दान देता रहता था। दान वह आवश्यकता के अनुरूप ही देता था। उसने अनेक दानशालाओं की भी स्थापना की थी।

शेरशाह का मूल्यांकन

शेरशाह सूरी को मध्यकालीन भारत के महानतम् शासकों में एक माना जाता है। एक साधारण परिवार में जन्म लेकर अपने पिता का स्नेह पात्र न होते हुए भी अपनी इच्छाशक्ति एवं योग्यता के बल पर ही वह सफलता के शिखरों तक जा पहुँचा। इसी कारण आर.पी. त्रिपाठी ने उसकी प्रशंसा करते हुए लिखा है, ''शेरशाह इतिहास के उन महापुरुषों में से एक है, जो धूल से पुष्पित और सम्मानित होते हैं तथा अपनी योग्यता, साहस, कार्यकुशलता, सूझ-बूझ व तलवार के द्वारा उच्चतम शिखर तक पहुँचते हैं।

शासक बनने के पश्चात् उसे मात्र 5 वर्ष राज्य करने का अवसर मिला। इस अल्पकाल में उसने न केवल साम्राज्य विस्तार किया, वरन् उच्च कोटि की प्रशासनिक व्यवस्था की स्थापना भी की। हैवेल ने लिखा है, ''सैनिक और असैनिक मामलों में शेरशाह ने अद्भुत योग्यता का प्रदर्शन किया। अपने अथक परिश्रम और शासन में छोटे-छोटे

विषयों पर व्यक्तिगत ध्यान देकर उसने सम्पूर्ण भारत में पांच वर्ष के अल्पकाल में ही व्यवस्था स्थापित कर दी।'' शेरशाह की मृत्यु 1545 ई. में हुई। उसके उत्तराधिकारी दुर्भाग्यवश योग्य न थे। अतः उसका साम्राज्य शीघ्र ही पतन की ओर अग्रसर हो गया।

अपनी प्रगति जाँचिए

14. पानीपत के प्रथम युद्ध में बाबर ने किसे पराजित किया?
    (क) बहादुर शाह (ख) बहलोल लोदी
    (ग) इब्राहीम लोदी (घ) नुसरत शाह
15. पानीपत का प्रथम युद्ध किस सन् में हुआ?
    (क) 1526 ई. (ख) 1530 ई.
    (ग) 1535 ई. (घ) 1528 ई.
16. हुमायूं की निम्न में से सबसे बड़ी भूल क्या थी?
    (क) कालिंजर पर आक्रमण (ख) साम्राज्य का विभाजन
    (ग) अफगानों से युद्ध (घ) बंगाल पर आक्रमण
17. शेरशाह सूरी कब सुल्तान बना?
    (क) 1553 ई. में (ख) 1541 ई. में
    (ग) 1560 ई. में (घ) 1540 ई. में

2.6 अपनी प्रगति जाँचिए प्रश्नों के उत्तर

1.	(क)	7.	(क)	13.	(ग)
2.	(ख)	8.	(क)	14.	(क)
3.	(ग)	9.	(घ)	15.	(ख)
4.	(ख)	10.	(ख)	16.	(ख)
5.	(क)	11.	(क)	17.	(घ)
6.	(क)	12.	(ग)		

2.7 सारांश

सल्तनत काल में खिलजियों के समान तुगलक सुल्तानों का भी महत्वपूर्ण स्थान रहा है। मुहम्मद बिन तुगलक एवं फिरोजशाह तुगलक ने अपनी योग्यता का परिचय दिया। जहाँ एक ओर मुहम्मद बिन तुगलक अपनी असफल योजनाओं एवं मिश्रित विचारों से युक्त असफल सुल्तान था, वहीं दूसरी ओर फिरोजशाह तुगलक अपने प्रशासनिक कार्यों के कारण सफल सुल्तान माना गया, किन्तु उसके कठोर धार्मिक नीति की इतिहासकार आलोचना करते हैं। तुगलक वंश के पतन के पश्चात् दिल्ली सल्तनत की केन्द्रीय सत्ता के अभाव के कारण भारत में प्रांतीय सत्ताओं का उदय हुआ, जिसमें विजयनगर, बहमनी

राज्यों ने उल्लेखनीय उपलब्धियाँ प्राप्त की, किन्तु इस राजनैतिक अस्थिरता ने भारत पर मुगल आक्रांताओं को आकर्षित किया, जिसमें 1526 ई. में पानीपत के प्रथम युद्ध की जीत के पश्चात् भारत में तुर्क सत्ता को समाप्त कर भारत में मुगल सत्ता की स्थापना की, जिसने भारत में लम्बे समय तक शासन देकर राजनीतिक स्थिरता स्थापित की।

2.8 मुख्य शब्दावली

- तुगलक वंश
- दिल्ली सल्तनत का विकेंद्रीकरण
- प्रांतीय शवित
- तैमूर का आक्रमण मुगल आक्रमण बाबर की विजय
- हुमायूं
- शेरशाह सरीका शासन प्रबंध

2.9 स्व-मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. गयासुद्दीन तुगलक के बारे मे आप क्या जानते है? संक्षिप्त विवरण कीजिए।
2. मुहम्मद बिन तुगलक की दोआध में वृद्धि, राजधानी परिवर्तन, सांकेतिक मुद्रा, धार्मिक नीति पर संक्षिप्त विवरण दीजिए।
3. एक शासक के रूप मे फिरोजशाह तुगलक का मूल्यांकन कीजिए।
4. तुगलक वंश के पलन के कारणों पर प्रकाश डालिए।
5. विजयनगर संस्कृति की प्रमुख विशेषताएँ बताइए।
6. विजयनगर की सामाजिक स्थिति पर प्रकाश डालिए।
7. बहमनी संस्कृति की विशेषताएँ क्या थी।
8. बाबर की सफलता के कारण बताइए।
9. बाबर की समक्ष प्रारंभिक कहिनाइयाँ क्या थी।
10. हुमायूं की असफलता के क्या कारण थे?
11. शेरशाह सूरी की न्याय व्यवजया पर प्रकाश डालिए।
12. शेरशाह के सार्वजनिक कार्यो पर प्रकाश डालिए।

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. मुहम्मद-बिन-तुगलक की विभिन्न योजनाओं का वर्णन कीजिए?
2. मुहम्मद-बिन-तुगलक की योजनाओं की असफलता के कारण बताइए?
3. मुहम्मद-बिन-तुगलक के व्यक्तित्व का मूल्यांकन कीजिए?
4. फिरोजशाह तुगलक के प्रशासनिक सुधारों का वर्णन कीजिए?

5. शासक के रूप में फिरोजशाह तुगलक का मूल्यांकन कीजिए?
6. विजय नगर साम्राज्य की प्रशासनिक व्यवस्था का वर्णन कीजिए?
7. बहमनी राज्य के उत्थान में महमूद गंवा के योगदान का वर्णन कीजिए?
8. दिल्ली सल्तनत के पतन के कारणों पर प्रकाश डालिए?
9. पानीपत के युद्ध के कारण एवं महत्व पर प्रकाश डालिए?
10. बाबर भारत में मुगल साम्राज्य का संस्थापक था। समझाइए?
11. हुमायूं के सामने कौन सी समस्याएं थी, उसने उनका सामना कैसे किया?
12. एक शासक के रूप में हुमायूं का मूल्यांकन कीजिए?
13. हुमायूं की असफलता के कारण समझाइए?
14. शेरशाह सूरी कुशल प्रशासक था। इस कथन की पुष्टि कीजिए?
15. शेरशाह एक कुशल प्रशासक था। व्याख्या कीजिए?

2.10 सहायक पाठ्य सामग्री

1. बालकृष्ण पंजाबी, मध्यकालीन भारत का इतिहास (1206 से 1761), मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल (म.प्र.)।
2. विपिन बिहारी सिन्हा, मध्यकालीन भारत का इतिहास।
3. व्ही.डी. महाजन, सल्तनतकालीन भारत।
4. व्ही.डी. महाजन, मध्यकालीन भारत।
5. हरिशंकर शर्मा, मध्यकालीन भारत, रावत बुक सेलर्स, जयपुर।

इकाई 3 मुगल साम्राज्य का सुदृढ़ीकरण एवं विस्तार मुगल साम्राज्य का पतन मराठों का उत्कर्ष, यूरोपियनों का आगमन

टिप्पणी

संरचना

3.0 परिचय
3.1 उद्देश्य
3.2 मुगल साम्राज्य का सुदृढ़ीकरण एवं विस्तार–अकबर
  3.2.1 पानीपत का द्वितीय युद्ध
  3.2.2 मुगल साम्राज्य का विस्तार
3.3 मुगल-राजपूत सम्बन्ध : महाराणा प्रताप
3.4 जहांगीर और शाहजहां : मुगल सिक्ख सम्बन्ध
3.5 मराठों का उत्कर्ष
  3.5.1 मराठों के उत्कर्ष के कारण
  3.5.2 शिवाजी की विजयें एवं उनका प्रशासन
    3.5.2.1 शिवाजी की प्रारम्भिक विजये
    3.5.2.2 बीजापुर से संघर्ष
    3.5.2.3 शाइस्ता खाँ पर आक्रमण
    3.5.2.4 शिवाजी द्वारा सूरत की प्रथम लूट
    3.5.2.5 मिर्जा राजा जयसिंह और शिवाजी
    3.5.2.6 पुरन्दर की सन्धि (जून 1665 ई.)
    3.5.2.7 शिवाजी की आगरा में सम्राट से भेंट
    3.5.2.8 मुगलों के साथ सन्धि
    3.5.2.9 मुगलों के विरूद्ध पुनः युद्ध करना
    3.5.2.10 शिवाजी का राज्याभिषेक
    3.5.2.11 शिवाजी का कर्नाटक अभियान
    3.5.2.12 शिवाजी के अन्तिम दिन और मृत्यु
  3.5.3 शिवाजी का प्रशासन
3.6 मुगल साम्राज्य का पतन
  3.6.1 मुगल साम्राज्य के पतन के लिए औरंगजेब का उत्तरदायित्व
    3.6.1.1 औरंगजेब की धार्मिक नीतियाँ
    3.6.1.2 औरंगजेब की दक्षिण नीति
    3.6.1.3 औरंगजेब द्वारा कर वृद्धि
    3.6.1.4 औरंगजेब की दोषपूर्ण प्रशासनिक व्यवस्था
    3.6.1.5 औरंगजेब का शंकालु स्वभाव एवं अन्य त्रुटियाँ
  3.6.2 मुगल साम्राज्य के पतन के अन्य कारण
3.7 नादिरशाह का आक्रमण एवं उनका प्रभाव
3.8 यूरोपियनों का आगमन
3.9 अपनी प्रगति जाँचिए प्रश्नों के उत्तर
3.10 सारांश
3.11 मुख्य शब्दावली
3.12 स्व-मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
3.13 सहायक पाठ्य सामग्री

टिप्पणी

3.0 परिचय

भारत में मुगल साम्राज्य की स्थापना का श्रेय बाबर को जाता है, किन्तु मुगल साम्राज्य का वास्तविक संस्थापक अकबर को इस दृष्टि से माना जा सकता है कि उसने मुगल साम्राज्य के सुदृढ़ीकरण एवं विस्तार की दिशा में महत्वपूर्ण कार्य किया। उसने मुगल साम्राज्य का न केवल क्षेत्र विस्तार किया अपितु सुलह-ए-कुल जैसी सांस्कृतिक नीतियों के साथ-साथ वैवाहिक सम्बन्धों एवं युद्धो के माध्यम से मुगल साम्राज्य को सुदृढ़ आधार स्तम्भ प्रदान किया। मध्यकाल के भक्ति आन्दोलन एवं सूफी चिन्तन का साम्राज्य की सांझा संस्कृति के विकास में अपूर्व योगदान रहा। मुगल-राजपूत सम्बन्ध, मुगल-सिक्ख सम्बन्ध उसकी सांस्कृति नीतियों के फलस्वरूप संतुलित एवं विकासमान बने रहे। औरंगजेब की सोच एवं समझ ने मुगल साम्राज्य के भविष्य को पुनः संघर्ष मे बदल दिया। जिसकी चर्चा हम मराठों के उत्कर्ष एवं शिवाजी की उपलब्धियों में देख सकते हैं। औरंगजेब की नीतियों में मुगल साम्राज्य के पतन के बीज भी दिखाई पड़ते है। मध्यकाल की भौगोलिक खोजों एवं विज्ञान की प्रगति ने युरोपियों के भारत आगमन का मार्ग प्रशस्त किया, जिससे भारत के राजनैतिक सत्ता समीकरण प्रभावित हुए।

3.1 उद्देश्य

इस इकाई के पढ़ने/अध्ययन के बाद यह जान पाएंगे कि–

- मुगल साम्राज्य के विस्तार एवं स्थापना में अकबर का क्या योगदान रहा?
- मुगल राजपूत सम्बन्ध, विशेषतः अकबर और राणा प्रताप के सम्बन्ध कैसे रहे?
- जहांगीर और शाहजहां के काल में सिक्ख समुदाय से मुगल सत्ता के सम्बन्धों की जानकारी ले सकेंगे।
- मराठों का उत्कर्ष कैसे हुआ? शिवाजी की विजये एवं प्रशासन किस प्रकार का था?
- मुगल साम्राज्य का पतन किस प्रकार हुआ? पतन के लिए उत्तरदाई कारणों को जान सकेंगे।
- मुगल साम्राज्य के पतन के लिए औंरगजेब कहाँ तक उत्तरदाई था?
- नादिरशाह का आक्रमण कब हुआ? उसके प्रभाव किस प्रकार के थे।
- यूरोपियों का आगमन किस प्रकार हुआ? कौन-कौन सी यूरोपीय कम्पनियाँ आपके अध्ययन काल में आई?

3.2 मुगल साम्राज्य का सुदृढ़ीकरण एवं विस्तार–अकबर

भारत में मुगल साम्राज्य की बुनियाद बाबर ने रखी थी। किन्तु वह उसे सुदृढ़ एवं विस्तारित न कर सका। फलतः उसके सुपुत्र एवं उत्तराधिकारी हुमायूं को बहुत सी

टिप्पणी

समस्याओं का सामना करना पड़ा और थोड़े समय के लिए साम्राज्य से भी हाथ धोना पड़ा। पुनः साम्राज्य प्राप्त करने के बाद शीघ्र ही उसकी मृत्यु हो जाने के कारण व मुगल साम्राज्य को सुसंगठित, सुव्यवस्थित एवं विस्तारित न कर सका। फलतः अकबर जब सिंहासन पर बैठा तो वह दिल्ली तथा आगरा का नाममात्र का शासक था। दूसरी ओर शेरशाह सूरी के वंशज अपनी शक्ति को पुनर्गठित कर साम्राज्य प्राप्ति में लगे हुए थे। अकबर ने किस प्रकार सफलतापूर्वक अपने प्रतिद्वन्दियों को परास्त कर मुगल साम्राज्य का सुदृढीकरण एवं विस्तार किया यह जानने के लिए अकबर के जीवन चरित्र, उपलब्धियों एवं नीतियों को समझना होगा।

अकबर

मुगल साम्राज्य का सुदृढ़ एवं लोकप्रिय शासक

हमीदा बानों बेगम (जो हिन्दाल के शिक्षक अली अकबर जामी की पुत्री थी तथा नासिरूद्दीन मोहम्मद हुमायूं को अमरकोट के राणा वीरसाल के यहाँ अपने शरणार्थी दिनों के दौरान 15 अक्टूबर, 1542 (कुछ इतिहासकार 23 नव. 1543 ई. मानते हैं, वो भाग्यशाली पुत्र जलालुद्दीन मोहम्मद अकबर का जन्म हुआ। इस समय हुमायूं के पास पुत्र जन्मोत्सव पर अपने मित्रों को भेंट देने के लिए कस्तूरी के अतिरिक्त कुछ न था, उसे तोड़कर मुष्क वितरित करते हुए हुमायूं ने कहा था, कि "अपने पुत्र के जन्म पर केवल यही भेंट मैं आपको देने में समर्थ हूं। आशा करता हूं, कि एक दिन उसकी ख्याति समस्त संसार में वैसे ही व्याप्त होगी जैसी की कस्तुरी की सुगंध इस कक्ष में व्याप्त हो रही है। विपत्तियाँ अभी हुमायूं का पीछा नहीं छोड़ रही थीं, अतः अपने पुत्र अकबर को जीजी अनगा एवं महामनगा नामक दो धायों के संरक्षण में छोड़कर वह अपनी पत्नी हमीदा बानों बेगम व अन्य साथियों के साथ ईरान की ओर बढ़ गया। हुमायूं के भाई अस्करी ने अपने भतीजे अकबर के साथ बहुत सहानुभूतिपूर्वक व्यवहार किया एवं उसकी देखभाल अपनी पत्नी सुल्ताना बेगम को सौंपी। कालान्तर में अकबर को कन्धार से काबुल भेज दिया गया, जहाँ बाबर की बहिन खांनजादा बेगम ने बड़े प्यार के साथ उसका पालन-पोषण किया। सन् 1546 ई.

को अकबर का अपने माता-पिता से पुनः मिलना हुआ और उसका खतना संस्कार किया गया। हुमायूं को अब अपने पुत्र की शिक्षा-दीक्षा की भी चिंता हो रही थी, अतः नवम्बर 1547 में अकबर के लिए एक शिक्षक नियुक्त किया गया किन्तु अकबर की रूचि पुस्तकीय ज्ञान में नही थी, यही कारण था कि उसके लिए एक के बाद एक अनेक शिक्षक नियुक्त किये गए, किन्तु वे सभी अक्षर ज्ञान कराने में असफल रहे। यद्यपि अकबर स्वयं तो पढ़ना नहीं सीख सका, किन्तु उसे दूसरों से पढ़वाकर पुस्तकें सुनने में आनन्द आता था। उसने स्वेच्छा से जलालुद्दीन रूमी और हाफिज जैसे सूफी कवियों के कलाम को याद कर लिया था। **स्मिथ का कथन है, कि ''उस बाल सुलभ अध्ययन से ही अकबर के जीवन के बाद के वर्षों में पल्लवित, रूढहीन, धार्मिक उदारवाद की बौद्धिक नींव पड़ी'', बचपन में उसे घुड़सवारी, तलवारबाजी और कबूतरबाजी का शौक था।**

फरवरी 1556 ई. के आस-पास जब अकबर अफगानों के विरूद्ध पंजाब में व्यस्त था, तब उसे अपने पिता की दुर्घटना में मृत्यु का समाचार मिला। पंजाब के गुरदासपुर जिले के कलानौर में यह समाचार प्राप्त होने पर उसके संरक्षक बैरम खाँ ने 14 फरवरी 1556 ई. को अकबर का राज्याभिषेक करवाया। यद्यपि इससे तीन दिन पहले 11 फरवरी 1556 ई. को दिल्ली में उसके उत्तराधिकार की घोषणा कर दी गई थी।

3.2.1 पानीपत का द्वितीय युद्ध

नवम्बर 1556 ई. को अकबर को बंगाल के मोहम्मद शाह आदिल के प्रधानमंत्री हेमू की बढ़ती हुई शक्ति का मुकाबला करना पड़ा। क्योंकि हुमायूँ की मृत्यु का समाचार पाते ही हेमू आगरा जीतकर दिल्ली की ओर बढ़ा दिल्ली का मुगल राज्यपाल तारदी बेग भाग गया और नगर हेमू के कब्जे में आ गया। फलतः उसने राजा विक्रमाजीत के नाम से प्रवेश किया। अतः अकबर ने सत्ता संभालते ही हेमू की और अपना ध्यान आकर्षित किया। वैरम खां ने इस स्थिति में उदम्य साहस का परिचय दिया और अकबर के युद्ध करने के निश्चय का समर्थन किया। फलतः पानीपत के मैदान में 5 नवम्बर 1556 ई. को दोनों सेनाओं में भीषण युद्ध हुआ, जिसमें हेमू जीत के करीब था, परन्तु इसी समय एक तीर हेमु की आंख में लग गया, जिससे वह मूर्च्छित होकर हाथी के हौदे में गिर गया। उसके गिरते ही सेना में खलबली मच गई और हेमू की विजय पराजय में बदल गई। अन्ततः बैरम खां ने उसको पकड़कर मौत के घाट उतार दिया और उत्तर भारत पर पुनः मुगलों का अधिकार स्थापित किया।

अपनी प्रगति जाँचिए

1. अकबर का जन्म कब और कहाँ हुआ?

   (क) 15 अक्टूबर 1540 अमरकोट (ख) 15 अक्टूबर 1541 कोटद्वार

   (ग) 15 अक्टूबर 1542 अमरकोट (घ) 15 अक्टूबर 1542 कोटा

2. पानीपत का द्वितीय युद्ध कब हुआ?

   (क) 5 नव. 1556 ई. (ख) 5 अक्टूबर 1555 ई.

   (ग) 5 सित. 1554 ई (घ) 5 नव. 1557 ई.

3. मुगल साम्राज्य का सुदृढ़ीकरण एवं विस्तार का श्रेय किसे जाना है?
   (क) बाबर (ख) अकबर
   (ग) हुमायूं (घ) शेरशाह
4. किसकी मुत्यु के पश्यात् उत्तर भारत पर पुनः मुगलों का अधिकार स्थापित हुआ
   (क) नैरम खाँ (ख) अकबर
   (ग) मोहम्मद (घ) हेमू

3.2.2 मुगल साम्राज्य का विस्तार

अकबर ने सम्पूर्ण भारत में मुगल साम्राज्य स्थापित करने का प्रयास किया। इस प्रयास में उसने विभिन्न भागों की विजय की मालवा की

चित्र क्र. 3.1

टिप्पणी

विजय 1561 ई.

अकबर के समय में मालवा के सूर सूबेदार शुजात खाँ का पुत्र बाज बहादुर स्वतन्त्र शासक के रूप में राज्य कर रहा था। बाज बहादुर स्वयं संगीत एवं कला प्रेमी था और उसकी रानी रूपमती सुन्दरता एवं गायन के लिए जानी जाती थी। मालवा सामरिक दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण था। गुजरात एवं दक्षिण भारत में पहुँचने का मार्ग मालवा से गुजरता था। अतः अबकर ने 1561 ई. में एक सेना पीर मोहम्मद व आधम खाँ के नेतृत्व में मालवा विजय के लिए भेजी। मालवा के सारंगपुर में दोनों पक्षों का घमासान युद्ध हुआ, जिसमें बाज बहादुर पराजित हुआ और आधम खाँ ने मालवा को तो लूटा ही साथ ही साथ बाज बहादुर के हरम की स्त्रियों को भी अपने कब्जे में कर लिया। रूपमती ने आत्महत्या कर ली। अकबर को जब आदम खाँ के क्रूर व्यवहार का पता चला तब वह स्वयं मालवा पहुँचा, अतः आधम खाँ अकबर को देखकर भौंचक्का रह गया और उसने सारी सम्पति और स्त्रियां अकबर को सौंप दी। महामनगा ने बहुत सी महिलाओं का कत्ले-आम कराया, जिससे वे अकबर से आदम खाँ के अत्याचारों की बात न बता दें। इस प्रकार अकबर ने मालवा विजय कर आदम खाँ को वहाँ का सूबेदार नियुक्त किया। आदम खाँ को अपने किए का शीघ्र ही नर्मदा में डूबने पर दण्ड मिल गया। इस अवसर का लाभ उठाकर बाज बहादुर ने पुनरू मालवा पर अधिकार कर लिया, किन्तु अकबर ने अब्दुल्ला खाँ उजबेग को पुनः 1562 में मालवा भेजकर मुगल सत्ता स्थापित की। बाज बहादुर फिर भाग गया। इधर-उधर भटक कर 1570 में वह अकबर के समक्ष हाजिर हो गया। अकबर ने उसे क्षमा कर मनसबदार बना दिया।

जौनपुर में विद्रोह और चुनार पर अधिकार (1561 ई.)

जिस समय आदम खाँ मालवा को जीत रहा था, उसी समय मोहम्मद आदिल शाह सूर के बेटे शेर खाँ ने जौनपुर के मुगल सूबेदार खानेजमा पर आक्रमण कर दिया। खानेजमा ने शेर खाँ को हराकर भगा दिया और शेर खाँ से बहुत से हाथी और अन्य प्रकार की सामग्री प्राप्त कर स्वयं रखली। नाममात्र का थोड़ा सामान अकबर के पास पहुँचाया। अब वह मुगल सम्राट के विरूद्ध भी विद्रोह करने की बात अहंकार पूर्वक करने लगा। जब अकबर को उसका यह व्यवहार पता चला तो जुलाई के बरसाती मौसम में भी वह जौनपुर की ओर चल पड़ा। खानेजमा बादशाह को आते देखकर भयभीत हो गया और कड़ा नामक स्थान पर बादशाह से भेंट कर शेर खाँ से प्राप्त सारे हाथी और बहुमूल्य उपहार भेंटकर क्षमा याचना की। उदार अकबर ने उसे क्षमा कर दिया और पुनः जौनपुर का गवर्नर नियुक्ति कर दिया। इसी समय अकबर ने आसफ खाँ को चुनारगढ़ का किला अफगानों ने जीतने के लिए भेजा। अगस्त 1561 ई. में चुनार पर मुगलों का अधिकार हो गया।

आमेर से संधि (1562 ई.)

आमेर (जयपुर) का कछवाहा राजपूत राजा बिहारीमल उर्फ भारमल अकबर का समकालीन था। उसकी सत्ता उसके भतीजे सूजा तथा मेवात के सूबेदार मोहम्मद शर्फउद्दीन के कारण खतरे में रहती थी, अतः उसने अकबर से सहायता प्राप्त करने का प्रयास किया। 20 जनवरी 1562 ई. को अकबर जिस समय ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती की दरगाह की ओर जा रहा था, तो सांगानेर में आमेर का राजा बिहारीमल बादशाह की

सेवा में उपस्थित हुआ। उसने अकबर की अधीनता स्वीकार की तथा उससे अपनी ज्येष्ठ पुत्री से जोधाबाई, जिसे हरखा बाई के नाम से भी जाना जाता है। (जोधाबाई के नाम पर प्रायः छात्रों में भ्रम की स्थिति रहती है, क्योंकि जहांगीर का भी जोधाबाई से विवाह का सन्दर्भ मिलता है, लेकिन जहांगीर की जोधाबाई जोधपुर के मोटा राजा उदयसिंह की पुत्री जगत गुंसाई उर्फ जोधाबाई थी। आश्चर्यजनक संयोग ही है, कि दोनों राजकुमारियों का नाम/उपनाम जोधाबाई था) से विवाह का प्रस्ताव दिया। अकबर ने भारमल (विहारीमल) का प्रस्ताव स्वीकार करते हुए अजमेर से लौटने पर 6 फरवरी 1562 में सांभर में विवाह रचाया। इस विवाह के फलस्वरूप जहांगीर का जन्म हुआ तथा बिहारीमल को मुगल सेना में पाँच हजार का मनसब प्राप्त हुआ और कालान्तर में उसके पुत्र भगवानदास और पौत्र मानसिंह को मुगलदरबार में उच्च पद प्राप्त हुआ। यह विवाह सम्बन्ध अकबर एवं मुगल साम्राज्य के लिए भी काफी फलदायी सिद्ध हुआ। कुछ समय बाद आमेर का अनुशरण करते हुए बीकानेर के राजा कल्याणमल ने, मारवाड़ के राजा उदयसिंह ने, डूंगरपुर के राजा आसकरण ने और जैसलमेर के राजा रावल हरिराय ने अपनी-अपनी पुत्रियों के विवाह अकबर से कर दिया। डॉ. बेनीप्रसाद ने इन विवाह सम्बन्धों को मुगल साम्राज्य के सुदृढीकरण एवं विस्तार की दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण बताया है। उन्होंने इन विवाह सम्बन्धों को सामाजिक और राजनैतिक एकता में सहायक माना है। राजपूत राजाओं ने अकबर के अधीन उच्च मनसब प्राप्त किए और मुगल साम्राज्य के विस्तार में अपना रक्त बहाया। डॉ. बेनीप्रसाद का इन विवाह सम्बन्धों के बारे में मत है, कि यह भारत की राजनीति में नवयुग का प्रतीक थे तथा इसने देश को महान सम्राटों की श्रृंखला प्रदान की। इसने मुगल साम्राज्य को चार पीढ़ीयों तक मध्यकाल के कुछ महान् सेनानायक एवं कुटनीतिज्ञों की सेवाएं प्रदान की।

मेड़ता विजय (1562 ई.)

मेड़ता का विशाल दुर्ग अजमेर से लगभग 46 मील की दूरी पर स्थित, मारवाड़ के राव मालदेव के अधीन था। अकबर ने अजमेर के सूबेदार शर्फद्दीन हुसैन मिर्जा को जयमल के साथ मेड़ता पर आक्रमण करने की आज्ञा दी। राठौड़ देवी दास और श्यामल दास ने राव मालदेव की ओर से लड़ते हुए मुगलों से जमकर लोहा लिया तथा अपने साथियों सहित वीरगति को प्राप्त हुए। इस प्रकार 1562 ई. में मेड़ता के दुर्ग पर मुगलों का अधिकार हो गया। डॉ. गोपीनाथ शर्मा ने अकबर की इस विजय पर लिखा है कि, "मारवाड़ में मेड़ता और जैतारण पर मुगलों का अधिकार हो गया, जिसने छायारूप से प्रमाणित कर दिया कि भविष्य में राजस्थान में मुगलों के अधिकार क्षेत्र का विस्तार होगा और यहाँ के देशी नरेश अपनी स्वतन्त्रता खो बैठेगें। इस प्रकार अकबर की मेड़ता की विजय ने राजपुताने में मुगल साम्राज्य के सुदृढीकरण एवं विस्तार की दिशा में एक कदम और आगे बढ़ाया।

गौड़वाना की विजय (1564 ई.)

गौड़वाना (गढ़ कटगां) में अकबर के समय में अल्पवयस्क राजा वीर नारायण था। राज्य की संरक्षिका उसकी माता दुर्गावती राज्य का शासन चला रही थी। दुर्गावती अत्यंत साहसी, वीर एवं योग्य शासिका थी। यह राज्य गढ़ और कटगां नामक कस्बों

टिप्पणी

सहित वर्तमान मध्य प्रदेश के उत्तरी जिलों से लेकर दक्षिण भारत की सीमा तक फैला था। अकबर ने गौड़वाना को मुगल साम्राज्य में मिलाने के लिए कड़ा मानकपुर के सूबेदार आसफ खाँ को गौड़वाना पर आक्रमण करने के लिए भेजा। नहरी एवं चौरागढ़ के युद्धों में मुगल सेना एक बार तो पराजित होकर पीछे हटी, किन्तु आसफ खाँ पुनः युद्ध के लिए तैयार हुआ, इस बार राजा वीर नारायण घायल होकर मृत्यु को प्राप्त हुआ और उसकी माँ दुर्गावती युद्ध क्षेत्र में वीरतापूर्वक लड़ती हुई घायल हुई। अन्ततः उसने अपनी छाती में कटार भोंककर आत्महत्या कर ली। अबुल फजल रानी दुर्गावती की प्रशंसा करते हुए लिखता है, कि "उसमें शौर्य एवं उद्यम की कमी न थी तथा उसने अपनी दूरदर्शिता से एवं योग्यता से महान कार्य किए थे। इस प्रकार आसफ खाँ ने अब गौड़वाना की राजधानी चौरागढ़ दुर्ग पर अधिकार कर लिया और गौड़वाना मुगल साम्राज्य में मिला लिया गया।

चित्तौड़ की विजय (1567-68 ई.)

चित्तौड़ के शासक महाराणा उदय सिंह ने अब तक अकबर से न सिर्फ दूरी रखी थी, अपितु उनके अधीन राजाओं से भी दूरी बनाए रखी थी। इसलिए सितम्बर 1567 ई. में अकबर ने मेवाड़ के प्रसिद्ध दुर्ग चित्तौड़ को जीतने का निश्चय किया। अतः उसने स्वयं एक विशाल सेना के साथ 23 अक्टूबर 1567 ई. को चित्तौड़ के दुर्ग को घेर लिया। राजपूत सामन्तों ने महाराणा उदय सिंह को अरावली की पहाड़ियों में सुरक्षित भेजकर दुर्ग की सुरक्षा का दायित्व जयमल राठौड़ व पत्ता को सौंप दिया। चार महीने तक मुगलों ने चित्तौड़ दुर्ग पर घेरा डाले रखा व उन्हें काफी नुकसान उठाना पड़ा। किन्तु 23 फरवरी 1568 ई. को अकबर ने जयमल को दुर्ग की प्राचीर पर चढ़े हुए देखकर बन्दूक से निशाना मारा, जिससे वह घायल होकर मृत्यु की प्राप्त हो गया। जिससे राजपूतों में निराशा फैल गई। स्त्रियों ने रात में जौहर किया और दूसरे दिन प्रातः काल राजपूत केसरिया बाना धारण कर अकबर की सेना से भिड़ गए। जयमल की मृत्यु के बाद राजपूत सेना का नेतृत्व केलवा के सरदार पत्ता ने संभाला। थोड़े से राजपूत मुगलसेना के सामने कब तक टिकते। दूसरे दिन अकबर दुर्ग में प्रवेश करने में सफल रहा, किन्तु जयमल और पत्ता की वीरता से वह इतना प्रभावित हुआ कि उनकी स्मृति में आगरा के किले के द्वार पर दोनों की पत्थर की मूर्तियां स्थापित करवाई। चित्तौड़ विजय के बाद अकबर ने आसफ खाँ को चित्तौड़ का गर्वनर नियुक्त किया और स्वयं आगरा पहुँच गया, यद्यपि अभी मेवाड़ का अधिकांश भाग राजपूतों के अधीन था।

रणथम्भौर की विजय (1569 ई.)

समय रणथम्भौर बूंदी के हाड़ा राजा सुरजनराय के राज्य में शामिल था जो मेवाड़ के अधीनस्थ थे। चित्तौड़ को जीत लेने के बाद अकबर ने राजस्थान के इस दूसरे प्रसिद्ध दुर्ग को विजित करने का विचार किया। फरवरी 1569 ई. में अकबर ने एक बड़ी सेना के साथ रणथम्भौर के किले को घेर लिया। डेढ़ माह के घेरे के बाद सुरजन राव हाड़ा ने अपने दोनों पुत्र दूधा और भोज को पहुँचाकर अकबर की अधीनता स्वीकार कर ली। यह भी प्रचलित है की आमेर के राजा भगवानदास के समझाने पर सुरजन हाड़ा ने रणभम्भौर का दुर्ग अकबर को समर्पित किया था। कुछ भी हो 22 मार्च 1569 ई. को रणथम्भौर मुगल साम्राज्य के विस्तार में विलीन हो गया।

कालिंजर की विजय (1569 ई.)

कालिंजर न सिर्फ मध्यकालीन बुन्देलखण्ड के अभेद्य दुर्गों में एक समझा जाता था बल्कि उत्तर भारत के श्रेष्ठ सामरिक दुर्गों में इसकी गणना की जाती थी। अकबर के समय में इस पर बुन्देलखण्ड, रीवा के राजा रामचन्द्र का अधिकार था। अगस्त 1569 ई. में अकबर ने मंजनू खाँ काकसा को कालिंजर पर अधिकार करने भेजा। राजा रामचन्द्र ने बिना सुदृढ़ प्रतिरोध के अकबर के समक्ष आत्मसमर्पण कर दिया। रामचन्द्र को इलाहाबाद के पास एक जागीर दे दी गई और कालिंजर अकबर के साम्राज्य में शामिल हो गया। जिसकी व्यवस्था का भार मंजनू खाँ को ही सौंपा गया। इस सफलता के सम्बन्ध में अबुल फजल लिखता है कि ''बादशाह के भाग्य की समृद्धि से यह दुर्ग, जिसकी प्राचीर पर बिगत शासकों की कल्पना की उड़ान भी पंख नहीं मार सकी, शाही सेवकों के हाथ में आ गया और युद्ध भी नहीं करना पड़ा।''

मारवाड़, बीकानेर तथा जैसलमेर पर अधिकार (1570 ई.)

बादशाह अकबर जब नवम्बर 1570 में नागौर में ठहरा हुआ था तो मारवाड़ के राजा मालदेव का पुत्र चन्द्रसेन उपहार, भेंट सहित उसकी सेवा में उपस्थित हुआ और स्वामिभक्ति प्रकट की। फिर इसी प्रकार बीकानेर के राय कल्याणमल एवं उनके पुत्र रायसिंह ने भी अकबर के समक्ष नागौर आ कर आत्म समर्पण किया और इतना ही नहीं रायकल्याणमल ने अपनी पुत्री का विवाह भी अकबर से कर दिया। इसी वर्ष जैसलमेर के राजा हरराय ने भी अपनी पुत्री का विवाह अकबर से कर मुगल साम्राज्य की अधीनता स्वीकार कर ली। इस प्रकार मेवाड़ के अतिरिक्त सम्पूर्ण राजपूताना मुगल साम्राज्य के विस्तार में समाहित हो गया।

गुजरात विजय (1572-73)

गुजरात हुमायूं के शासनकाल में मुगल साम्राज्य से स्वतन्त्र हो गया था अतः अकबर गुजरात को पुनः मुगल साम्राज्य के विस्तार में शामिल करना चाहता था, यद्यपि गुजरात की विजय के अन्य अनेक कारण थे, किन्तु स्मिथ के अनुसार, "अकबर सरीखा सम्राट जो विजय एवं साम्राज्यवाद की महत्वकांक्षा से ग्रसित था, अपनी सीमा पर ऐसे सुसम्पन्न राज्य को स्वतन्त्रता का विविध उपभोग करते देखना सहन ही नहीं कर सकता था। इसलिए वहाँ के अमीरों के आपसी वैमनस्य का फायदा उठाते हुए एतिमाद खाँ नामक एक शक्तिशाली अमीर के आमंत्रण पर अकबर गुजरात विजय के लिए प्रोत्साहित हुआ। 14 जुलाई 1572 ई. को वह आगरा से चलकर अजमेर पहुँचा, जहाँ दरगाह पर श्रद्धांजलि अर्पित कर फकीरों को मुक्त हस्त से दान दिया। इसके बाद उसने मीर मोहम्मद खाँ अतका के नेतृत्व में दस हजार अश्वारोहियों को अहमदाबाद की ओर बढ़ने का आदेश दिया और स्वयं मेड़ता नागौर सिरोही होते हुए अहमदाबाद के लिए चल पड़ा, जब अहमदाबाद पहुँचा तो मुजफर शाह तृतीय ने आत्मसमर्पण कर दिया। ऐतिमाद खाँ ने भी अहमदाबाद दुर्ग की चाबियाँ बादशाह की सेवा में प्रस्तुत कर दी। इस प्रकार 21 नवम्बर 1572 ई. को बादशाह के नाम का खुतबा पढ़ा गया और सिक्के भी ढलवाए गए। अकबर ने मिर्जा अजीज कोका को अहमदाबाद के समुचित प्रबन्ध के लिए नियुक्त किया। इसी प्रकार सूरत पर भी 26 फरवरी 1573 ई. को अकबर का अधिकार हुआ और वहाँ के किलेदार हमजवान ने आत्मसमर्पण कर दिया। अकबर के लौटते ही इख्तयारूल मुल्क एवं मिर्जाओं ने गुजरात में पुनः विद्रोह कर दिया।

समाचार पाते ही अकबर ने मालवा के सूबेदार मुजफर खाँ, आमेर के भगवान दास और सुजाअत खाँ, सैय्यद मोहम्मद बाराह को अहदाबाद भेजा और स्वयं 2 सितम्बर 1573 ई. को अहमदाबाद के निकट पहुँच गया। उसने सावर नदी को पार कर विद्रोहियों को पराजित किया। अभी भी गुजरात में स्थाई शान्ति नहीं हुई और 1578 ई. में गुजरात के अन्तिम शासक मुजफर शाह तृतीय ने बन्दी गृह से भाग कर जूनागढ़ में शरण ली तथा सितम्बर 1583 में अहमदाबाद पर अधिकार कर लिया, इस बार अकबर ने अब्दुल रहीम को गुजरात का सुबेदार नियुक्ति कर मुजफर शाह से लड़ने के लिए भेजा। जनवरी 1584 में सरखेज के युद्ध में मुगल सेना ने मुजफर शाह तृतीय को पराजित कर गुजरात विजय को स्थाई बनाया। अब्दुल रहीम की सफलता पर बादशाह अकबर ने उसे खाने-खाना की उपाधि से सम्मानित किया। गुजरात विजय से मुगल साम्राज्य की पश्चिमी सीमा समुद्र तक फैल गई। जिससे पुर्तगालियों के साथ उसका सम्बन्ध स्थापित हुआ।

बिहार और बंगाल की विजय (1574-1576 ई.)

सूर वंश के पतन के बाद सुलेमान किरानी ने सन् 1564 ई. में अपने को बिहार का स्वतन्त्र शासक घोषित कर दिया और अपने राज्य का विस्तार बंगाल, आसाम तक कर लिया किन्तु इसने 1568 ई. में प्रथमतः अकबर की अधीनता स्वीकार कर ली थी। लेकिन 1572 ई. में उसकी मृत्यु के बाद वहाँ अराजकता फैल गई वहाँ के अमीरों ने पहले उसके बड़े पुत्र बायजीद को सिंहासन पर बिठाया और बाद में उसकी हत्या करके उसके छोटे पुत्र दाउद खाँ को सत्ता संभाली। दाउद ने मुगलों के क्षेत्र में जमानियों पर आक्रमण कर अकबर को नाराज कर दिया, अतः अकबर ने 1574 ई. में दाउद पर आक्रमण कर उसे बिहार से भगा दिया और प्रांत को अपने साम्राज्य में मिला लिया। दाउद खाँ वहाँ से भागकर उड़ीसा में टांडा को अपनी राजधानी बनाकर स्थिर होना चाहता था किन्तु अकबर के सूबेदार मुनीम खाँ ने 3 मार्च 1575 ई. को तुकरोई के युद्ध में दाउद खाँ को परास्त कर दिया अक्टूबर 1575 में दाउद खाँ ने एक बार पुनः सत्ता प्राप्ति के लिए प्रयास किया। किन्तु वह हार कर मारा गया। उसके बाद भी कुछ समय तक स्थानीय सरदार छोटे-छोटे विद्रोह करते रहे। इस प्रकार 2 वर्ष के संघर्ष के पश्चात् मुगल साम्राज्य स्थायी रूप से बिहार और बंगाल के क्षेत्रों में विस्तृत हो गया।

मेवाड़ विजय के लिए प्रयास (1576 ई.)

सन् 1572 ई. में महाराणा उदयसिंह की मृत्यु के बाद उसका स्वाभिमानी एवं प्रतापी पुत्र महाराणा प्रताप मेवाड़ पर शासन करने लगा। अकबर मेवाड़ पर अपनी सांस्कृतिक विजय अवश्य करना चाहता था। अतः उसने मेवाड़ को आत्मसमर्पण करने के लिए अपने कई राजदूतो, मनसबदारों को भेजकर कहाँ। इस क्रम में आमेर के राजामानसिंह, राजा भगबन्तदास, आसफ खाँ आदि को भेजा गया। जब बात नहीं बनी तो 21 जून 1576 ई. को हल्दी घाटी का युद्ध हुआ जो अनिर्णीत रहा। यह युद्ध का उल्लेख एवं चर्चा हम अगले बिन्दु मुगल राजपूत सम्बन्ध और महाराणा प्रताप शीर्षक के अन्तर्गत करेंगे। अब हम मुगल साम्राज्य के उत्तर-पश्चिमी क्षेत्र में विस्तार की चर्चा करेंगे।

काबुल पर अधिकार (1585 ई.)

बादशाह अबकर का सौतेला भाई मिर्जा मोहम्मद हकीम काबुल का शासक था। जिससे अकबर के सम्बन्ध अच्छे न थे। वह अकबर की सत्ता को चुनौती देने का विचार रखता

था। अतः अकबर ने राजा मानसिंह को काबुल पर अधिकार करने के लिए आगे भेजा और स्वयं धीरे-धीरे काबुल की ओर बड़ा मिर्जा हकीम घबराकर काबुल से गुरबन्द भाग गया। अकबर ने 10 अगस्त 1581 ई. को काबुल के किले में प्रवेश किया और मिर्जा हकीम की बहन वस्तुनिसा बेगम को काबुल का गर्वनर नियुक्त किया और मिर्जा हकीम को क्षमा कर दिया 1585 ई. में मिर्जा हकीम की मृत्यु होने पर मानसिंह को काबुल का सूबेदार नियुक्त कर वहाँ भेजा और मिर्जा हकीम के दोनों पुत्रों को मुगल दरबार में रख लिया, इस प्रकार 1585 ई. से काबुल मुगल साम्राज्य का स्थायी अंग बन गया।

स्वात एवं बाजौर क्षेत्र पर अधिकार (1585-86 ई.)

स्वात एवं बाजौर के पहाड़ी प्रदेश सामरिक दृष्टि से उजबेग और मुगल दोनों के लिए महत्वपूर्ण थे। उजबेगों का नेता अब्दुल्ला खाँ, अफगानों को वहाँ मुगलों के खिलाफ भड़काता रहता था, ताकि अकबर ट्रासंआक्सियाना पर आक्रमण न कर सके। फलतः उजबेगों की सहायता से स्वात एवं बागौर के युसुफजाइयों ने विद्रोह शुरू कर दिया। अतः 20 दिसम्बर 1585 ई. में अकबर ने जेन खाँ कोका के नेतृत्य में एक सेना को उपद्रव शांत करने के लिए भेजा, बाद में बीरबल और हकीम अबुल फतह को भी भेजा जब ये सभी कारकर क्षेत्र की ओर बढ़े तो प्रारम्भ में विजयी रहे, किन्तु सूर्यास्त से पहले एक दुर्गम पहाड़ियों वाले दर्रे को जल्दी पार करने की कोशिश में भटककर रह गए दुर्भाग्य से सरहदी पठानों ने पीछे से आक्रमण कर दिया, जिसमें भारी तादात में मुगल सैनिक मारे गए और इसी आक्रमण में अकबर का प्रिय बीरबल भी मारा गया। दुःखी अकबर ने टोडरमल और मानसिंह को स्वात और बाजौर क्षेत्र में भेजा टोडरमल और मानसिंह ने पहाड़ियों की नाकेबन्दी कर न केवल पठानों को फंसा दिया, बल्कि उनकी रसद भी बंद कर दी। फलतः कुछ समय के लिए स्वात एवं बाजौर क्षेत्र में मुगलों का अस्थाई अधिकार हो गया। लेकिन कुछ समय बाद ही जलाल खाँ के नेतृत्व में रोशनियों ने विद्रोह कर दिया, जिसको दबाने के लिए नवम्बर 1586 ई. में जेन खाँ के नेतृत्व में तथा अप्रैल 1587 ई. में मतालिब खाँ के नेतृत्व में सेनाएं भेजी गई, जिन्होंने रोशनियों को परास्त किया, लेकिन जलाल खाँ इसके बाद भी कई वर्षों तक उत्पात मचाता रहा। समासतः इस क्षेत्र पर मुगल अधिकार स्थापित हो गया।

कश्मीर पर विजय (1586 ई.)

कश्मीर में अकबर के समय में यूसुफ खाँ का स्वतंत्र राज्य स्थापित था। मुगल साम्राज्य के विस्तार की आकांक्षा में अकबर ने युसुफजाईयों और रोशनियों के विद्रोह के समय ही कश्मीर पर अधिकार करने के लिए मिर्जा शाहरूख, कासिम खाँ, राजा भगवानदास के साथ अन्य सेनानायकों को भेजा। मुगल सेनाएं 1586 ई. के आरम्भ में श्रीनगर की ओर बढ़ी। किन्तु विजय की आशान देखकर कश्मीर के शासक यूसुफ खाँ ने मुगल सेना नायकों के समक्ष संधि का प्रस्ताव रखा और अकबर के समक्ष उपस्थित होना भी स्वीकार किया। इससे संतुष्ट नहीं हुआ और सुल्तान यूसुफ के उपस्थित होने पर उसे कैद कर लिया लेकिन सूयुफ खाँ का पुत्र याकूब खाँ किसी तरह बचकर श्रीनगर भाग गया और वहीं से मुगलों से संघर्ष की तैयारी करने लगा। अतः अकबर ने कासिम खां के नेतृत्व में एक सेना पुनः कश्मीर विजय के लिए भेजी। जिसने याकूब खाँ को आत्मसमर्पण करने के लिए बाध्य कर दिया, जुलाई 1589 ई. में शाहीसेना ने कश्मीर पर अधिकार कर लिया तथा उसे मुगल साम्राज्य में शामिल कर काबुल के सूबेदार के अधीन कर दिया गया।

टिप्पणी

सिंध विजय (1591 ई.)

कंधार को विजित करने के लिए अकबर को सिंध विजय करना आवश्यक था। अब तक मुगलों के अधीन उत्तरी सिंध तो था, किन्तु सिंध के दक्षिणी क्षेत्र पर वहाँ के स्वतन्त्र शासक मिर्जा जानी बेग का अधिकार था। अब्दुर्रहीम खाने खाना को 1590 ई. में मुल्तान का सुबेदार नियुक्ति कर उसे सिंध पर अधिकार करने का आदेश दिया। अब्दुर्रहीम खाने खाना ने थट्टा तथा सेहवान के 2 किल्लों पर अधिकार कर लिया। मिर्जा जानी बेग ने मुगलों की अधीनता स्वीकार कर ली तथा अपनी पुत्री का विवाह खाने खाना के पुत्र से कर दिया। अकबर ने जानी बेग को 3000 का मनसब प्रदान कर सिंध का सूबेदार नियुक्त किया। इस प्रकार सिंध मुगल साम्राज्य का अंग बन गया।

कंधार विजय (1595 ई.)

इस समय कंधार फारस के शाह के अधिकार में था और मुजफर हुसैन मिर्जा यहाँ का गर्वनर था। किन्तु अप्रैल 1595 ई. में उसने अपने शासक के विरूद्ध विद्रोह कर दिया अतः अकबर ने अवसर का फायदा उठाते हुए शाहंबेग के नेतृत्व में एक सेना कंधार के लिए रवाना की। मुजफर हुसैन मिर्जा ने बिना लड़े कंधार को दुर्ग बिना शर्त शाहबेग को समर्पित कर दिया, और स्वयं मुगल दरबार में उपस्थित हो गया। जहाँ उसका भव्य स्वागत हुआ और पांच हजार का मनसब तथा संभल की जागीर दे दी गई।

बलुचिस्तान और कमरान विजय (1595 ई.)

पश्चिमोत्तर भारत में बलुचिस्तान ही ऐसा प्रांत था, जिसने अब तक मुगल अधीनता नहीं मानी थी। अतः अकबर ने फरवरी 1595 ई. में मीरमासूम को बलुचिस्तान व मकरान विजय के लिए भेजा। मीरमासूम ने क्वेटा के उत्तर पूर्व में स्थित सीबी के दुर्ग पर आक्रमण कर पन्नी अफगानों की पराजित कर दिया। जिसके प्रभाव में आकर मकरान व अन्य पहाड़ी प्रदेशों के छोटे-छोटे शासकों ने भी मुगलों की अधीनता स्वीकार कर ली। इस प्रकार सम्पूर्ण पश्चिमोत्तर क्षेत्र में मुगल साम्राज्य फैल गया।

उत्तर भारत को अपने अधिकार में कर लेने के बाद अकबर ने मुगल साम्राज्य के विस्तार के लिए दक्कन एवं दक्षिण के क्षेत्र पर दृष्टि दौडाई। इस समय बहमनी साम्राज्य का क्षेत्र पतित होकर पांच शाहियों में बँट गया था ये पांच स्वतन्त्रराज्य, अहमदनगर, बीजापुर, गोलकुण्डा, बरार एवं बीदर थे। अकबर यह चाहता था कि सम्पूर्ण हिन्दुस्तान में उसकी सत्ता स्वीकार की जाए, अतः उसने इन राज्यों के पास अपने दूत मुगल सार्वभौमिकता स्वीकार करने के लिए भेजे।

खानदेश व अहमदनगर की विजय (1595-1600 ई.)

खानदेश की सीमा अकबर के राज्य की सीमा से मिलती थी। अतः अली खाँ ने अकबर को राजस्व देने का वचन देकर अधीनता स्वीकार, प्रस्ताव को बड़ी नर्मतापूर्वक ठुकरा दिया। अतः अकबर ने अपने पुत्र मुराद के साथ अब्दुर्रहीम खाने खाना को 1593 ई. में अहमदनगर की विजय के लिए भेजा। मुगल सेना ने अहमदनगर का घेरा डाल दिया। इस समय वहाँ का शासन चांदबीबी संभाले हुए थी। उसने कूटनीति के द्वारा अहमदनगर के विभिन्न गुटों को अपने पक्ष में कर मुगल सेना का साहस पूर्वक सामना किया, उसने बीजापुर तथा गोलकुण्डा के सुल्तानों से भी सहायता प्राप्त की। अन्ततः

मुगलों और चांदबीबी के बीच 1596 ई. में एक सन्धि की। जिसके अनुसार बुरहानुलमुल्क के पौत्र निजामशाह को अहमदनगर का शासक स्वीकार किया गया और निजामशाह ने मुगल अधीनता स्वीकार करते हुए, बरार का सूबा भी अकबर को दे दिया, किन्तु अहमदनगर के अनेक अमीर इस सन्धि से असंतुष्ट थे। दूसरी ओर शाहजादा मुराद तथा खान-ए-खाना आपसी मतभेद के कारण दक्षिण में संगठित होकर युद्ध नही कर रहे थे। अतः अकबर ने 1597 ई. में खान-ए-खाना को वापस बुला कर अबुल फजल को भेजा। 1599 ई. में अत्यधिक सुरापान के कारण शाहजादा मुराद की मौत हो गई। अब अकबर ने शाहजादा दानयाल और खान-ए-खाना को दक्षिण अभियान के लिए पुनः नियुक्त किया, और स्वयं भी अहमदनगर के लिए प्रस्थान कर गया। मई 1599 ई. में मुगल सेना ने पुनः अहमदनगर को घेर लिया। अब तक अहमदनगर के अमीरों ने असन्तुष्ट होकर चांदबीबी की हत्या कर दी थी, अतः अमीरों के मतभेद और चांदबीबी के अभाव में अहमदनगर के प्रसिद्ध दुर्ग पर 18 अगस्त 1600 ई. में मुगलों का अधिकार हो गया। इसके बाद वहाँ के अमीरों ने पुनः संघर्ष जारी किया। मुर्तजा अली को शासक बना कर मलिक अम्बर नामक कुशल सेनापति की सेवाएँ प्राप्त की। जिसने मुर्तजा निजामशाह द्वितीय को अहमदनगर के शेष भाग का सुल्तान घोषित किया। इस प्रकार अकबर के मुगल साम्राज्य में अहमदनगर का एक भाग ही आ सका।

असीरगढ़ की विजय (1601 ई.)

असीरगढ़ का किला खानदेश में स्थित था। जिसकी गणना विश्व के बड़े मजबूत किलो में होती थी, खानदेश के शासक अली खाँ ने मुगलों की ओर से अहमदनगर अभियान में भागीदारी की थी, और युद्ध में लड़ते हुए मारा गया था। उसके पुत्र मीरन बहादुरशाह ने मुगलों की अधीनता को स्वीकार करने से इन्कार कर दिया अतः मुगल सेनाओं ने खानदेश की राजधानी बुरहानपुर को अपने कब्जे में ले लिया, किन्तु मीरन बहादुरशाह ने अपनी शक्ति का केन्द्र असीरगढ़ के किले में बनाया। अतः अकबर ने असीरगढ़ के किले पर घेरा डाल दिया। यह घेरा छः मास तक चलता रहा, किन्तु जब सफलता नहीं मिली तो कूटनीति का सहारा लेकर संधि के नाम पर मीरन बहादुरशाह को शाही शिविर में बुलाकर बंदी बना लिया गया, परन्तु फिर भी अकबर को सफलता नहीं मिली। अतः किले के कुछ प्रभावशाली व्यक्तियों को रिश्वत देकर मिला लिया गया। अतंतः 6 जनवरी 1601 ई. को किले के नायक याकूत खाँ ने किले के दरवाजे खोल दिए और असीरगढ़ के किले पर अकबर का अधिकार हो गया।

यह अकबर के जीवन की आखिरी विजय थी। 25 अक्टूबर 1605 ई. को पेचिस के कारण उसकी मृत्यु हो गई। इस प्रकार अकबर ने अपनी विजयों के द्वारा मुगल साम्राज्य के सुदृढीकरण और विस्तार को एक नया आयाम प्रदान किया। इस सन्दर्भ में उसकी राजपूत नीति और धार्मिक नीति ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई उसने ''सुलह-ए-कुल'' की नीति के माध्यम से साम्राज्य में स्थायी शांति स्थापित करने का काम किया। सहिष्णुता के प्रारम्भिक कार्यों से उसे धर्मों में लोकप्रियता मिली। उसने हिन्दुओं के लिए ऊँचे पदो के द्वारा खेल दिए और वे सर्वोच्च मनसब, प्रातीय सूबेदार तथा सेनानायक और प्रधानमंत्री का पद भी पाने लगे। सन् 1575 ई. में ईस्लाम धर्म के सिद्धांतो का ज्ञान प्राप्त करने के लिए फतेहपुर सीकरी में एक इबादतखाना की स्थापना की उसमें प्रत्येक गुरूवार को संध्या के बाद सभा होती थी। उसने इस्लाम धर्म से बाहर भी सत्य

टिप्पणी

को जानने का प्रयास किया और 1578 ई. में ईबादतखाना के द्वार अन्य धर्म के विद्वानों के लिए भी खोल दिए।

2 सितम्बर 1579 ई. में शेख मुबारक ने एक परिपत्र (मजहर) प्रस्तुत किया इस पर शेख मुबारक के अतिरिक्त अब्दुलनबी, काजी जलालुद्दीन मुलतानी, मखदुमुलमुलक और अन्य उलेमाओं ने भी हस्ताक्षर कर मजहर की घोषणा की, जिसके अनुसार अकबर को ईमाम-ए-आदिल अर्थात् इस्लामी कानून (शरियत) का अंतिम व्याख्याता व निर्णायक घोषित किया गया। इसके लिए 22 जून 1579 ई. के दिन फतेहपुर सीकरी की प्रमुख मस्जिद की बेदी पर चढ़कर अकबर ने कवि फैजी द्वारा रचित कविता में खुतबा पढ़ा। डॉ.ए.एल. श्रीवास्तव के अनुसार इस मजहर से उलेमा अपने इस्लामिक विधि के प्रधान व्याख्याकार होने के अधिकार से वंचित हो गए और यह अधिकार अब सम्राट को प्राप्त हो गया। सन् 1581 ई. में उसने सव धर्मों की अच्छी-अच्छी बाते लेकर एक मंच अथवा संघ की स्थापना की जिसे दीन-ए-इलाही अथवा तौहीद-ए-इलाही (दैवीय एकेश्वरवाद) कहा गया है। यद्यपि दीन-ए-इलाही के मानने वालों की संख्या अधिक नहीं थी। अबुलफजल, आइने अकबरी में दीन-ए-इलाही के 19 सदस्यों की सूची देता है, जिसमें केवल बीरबल ही हिन्दू था।

अकबर की गणना संसार के श्रेष्ठ शासको में की जाती है। मुगल बादशाहों में वह सर्वश्रेष्ठ शासक सिद्ध हुआ। उसे अपने पिता से बहुत थोड़ा क्षेत्र राज्य के रूप में प्राप्त हुआ था। जिसे उसने अपनी विजयें द्वारा एक विशाल साम्राज्य के रूप में परिणित कर दिया की शासन व्यवस्था को सुदृढ़ किया और देश उसने अपने साम्राज्य में हिन्दू मुस्लिम एकता स्थापित करने में आसाधारण योगदान दिया। एक प्रशासक के रूप में एक सेनानायक और विजेता के रूप में तथा एक राष्ट्र निर्माता के रूप में अकबर का मूल्यांकन इतिहासकारों द्वारा किया जाता रहा है।

अपनी प्रगति जाँचिए

5. सलेमान किरानी ने अपने आप को सन् 1564 में किस राज्य का स्वतन्त्र शासक घोषित किया।

(क) असाम (ख) विहार

(ग) केनल (घ) मेवाड

6. चितोड के विजय के बाद अकबर ने किसको चितोड का गवर्नर नियुक्त किया।

(क) सुरजनराय (ख) आसफ खाँ

(ग) मजुन खाँ (घ) रणथम्भौर

7. किसकी सफलता पर अकबर ने उसे 'खाने-खाना' की उपाधि दिला दी।

(क) अब्दूल रहीम (ख) ऐतिमाद खाँ

(ग) सैय्यद (घ) मुजफर शाह

8. अकबर की अन्तिम विजय कौन-सी थी?

(क) मालवा की विजय (ख) असीरगढ की विजय

(ग) सिन्ध की विजय (घ) कश्मीर की विजय

टिप्पणी

3.3 मुगल-राजपूत सम्बन्ध : महाराणा प्रताप

मुगल राजपूत सम्बन्ध सदैव एक समान नहीं रहे। प्रायः कुछ राजपूत रियासतें मुगल सहयोगी तो कुछ मुगल प्रतिरोध में रही। अकबर के समय महाराणा प्रताप और चन्द्रसेन जैसे शासक उनके प्रतिरोध में थे, जबकि अन्य रियासतों को उसने वैवाहिक सम्बन्धों द्वारा, संधिवार्ता द्वारा और सैनिक कार्यवाही द्वारा अपने अधीन किया।

महाराणा प्रताप
राजपूत शासक एवं महान योद्धा

अकबर और राणा प्रताप का संघर्ष एक साधन सम्पन्न सम्राट और एक साधनहीन राणा के बीच का संघर्ष था। जहाँ एक ओर अकबर मुगल साम्राज्य के विस्तार के लिए प्रयास कर रहा था, वहीं राणा प्रताप अपनी मातृभूमि की स्वतन्त्रता और सांस्कृतिक स्वाधीनता के लिए संघर्ष कर रहा था।

नैणसी री ख्यात के अनुसार प्रताप का जन्म ज्येष्ठ शुक्ला, तृतीया विक्रम संवत 1597, तदनुसार 9 मई 1540 ई. को हुआ था। उसकी माता का नाम जयवंता बाई था जो पाली के अखयराज सोनगिरा चौहान की पुत्री थी। महाराणा उदयसिंह के बीस रानियां थी और उनसे कुल मिलाकर 17 पुत्र पैदा हुए थे। प्रताप उदयसिंह के सबसे बड़े पुत्र थे, परन्तु महाराणा उदयसिंह अपनी भटियाणी रानी से अधिक प्रेम करते थे और उसके प्रभाव में आकर अपनी मृत्यु से पूर्व उसके पुत्र जगमाल को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त कर गए, अतः महाराणा उदयसिंह की मृत्यु के साथ ही उत्तराधिकार को लेकर विवाद हुआ। अन्ततः प्रताप सफल रहे और 28 फरवरी 1572 ई. को गोगुन्दा में प्रताप का राज्याभिषेक किया गया। इससे रूष्ट जगमाल अजमेर के मुगल सूबेदार की सहायता से अकबर के दरबार में हाजिर हुआ। अकबर ने जहाजपुर का परगना जागीर में देकर जगमाल को शाही सेवा में मनसबदार रख लिया। सन् 1581 ई. में सिरोही का आधा राज्य भी उसे प्रदान कर दिया। किन्तु 17 अक्टूबर 1583 ई. को उसके साले ने उसके विरूद्ध विद्रोह करके दस्तानी की लड़ाई में उसे मौत के घाट उतार दिया। इधर गोगुन्दा में राज्याभिषेक के बाद राणा प्रताप कुम्भलगढ़ गए और वहीं से मेवाड़ पर शासन करने लगे। किन्तु इस समय तक जोधपुर, बीकानेर और जैसलमेर सहित मेवाड़ के चित्तौड़ बदनौर, बागौर, माण्डलगढ़, रायला, जहाजपुर परगनों पर अकबर का अधिकार हो चुका था। मेवाड़ राज्य की केवल दक्षिण तथा दक्षिण पूर्वी सीमा ही अकबर के प्रभाव से मुक्त

रह गई थी। जिसके लिए अकबर हर संभव प्रयास कर रहा था। इस परिस्थिति में प्रताप के सामने दो रास्ते थे। पहला अन्य राजपूतों की भाँति मुगल सर्वोच्चता को स्वीकार कर उनके साम्राज्य का अंग बन जाए। ऐसा करने पर प्रताप को मेवाड़ का सम्पूर्ण राज्य मिल सकता था, और आर्थिक समृद्धि की ओर बढ़कर मुगल मनसबदारों को मिलने वाली अन्य सुविधाओं का लाभ भी उठाया जा सकता था। दूसरा मार्ग था कि अपनी सर्वोच्चता और स्वतन्त्रता को बनाए रखना, जो पहले की तुलना में अधिक कठिन था। इस मार्ग को अपनाने का आशय था कि मुगलों के साथ घातक और लम्बे संघर्ष का सामना करना। सिसोदिया वंश की परम्परा के अनुसार उन्होंने दूसरे मार्ग को ही चुना और अपनी स्वतन्त्रता को बनाये रखने का संकल्प लिया।

अकबर को जहाँ लगभग सम्पूर्ण राजपुताने का सहयोग-सेवाएं प्राप्त थीं, वही महाराणा प्रताप को मात्र जोधपुर के रावचन्द्रसेन और सिरोही के सुरतान सेन से ही थोड़ा बहुत सहयोग मिल पा रहा था।

हल्दीघाटी का युद्ध (21 जून 1576 ई.)

सिवाणां के दुर्ग को जीतने के बाद अकबर ने प्रताप के विरूद्ध सैनिक अभियान भेजने का निश्चय कर लिया। यद्यपि हल्दीघाटी के युद्ध के अनेक कारण इतिहासकारों द्वारा बताए जाते रहे हैं जिनमें प्रमुख रूप से मानसिंह का अपमान गिनाया जाता रहा है, किन्तु अकबर और प्रताप की महात्वाकांक्षाओं, आदर्शी और विचारों की भिन्नता ही हल्दीघाटी के युद्ध का मुख्य कारण था। अजमेर से मानसिंह माण्डलगढ़ पहुँचा उसके साथ मीरबख्शी, तासफखां, बख्शीगाजी खाँ, शाहगाजी खाँ, मुजाहिद खाँ सैय्यद हाशिम बारहा, मेहतर खाँ तथा अन्य प्रसिद्ध सेनानायक थे। हिन्दू मनसबदारों में राजा जगन्नाथ कछवाहा, राव लूणकरण, माधवसिंह आदि थे। शाहीसेना दो महीने तक माण्डलगढ़ में डेरा डाले रही। इस समय मानसिंह राणा प्रताप द्वारा खाली कराई गई भूमि और मुगलों द्वारा अधित क्षेत्र के बीच संचार और यातायात की उचित व्यवस्था करने के लिए, इतने समय तक माण्डलगढ़ में रूक गया था। कुछ इतिहासकारों का मत है कि मानसिंह का विचार था कि मुगल सेना की उपस्थिति से राणाप्रताप का धैर्य टूट जाएगा और वह उस पर आक्रमण कर देगा और यदि वह ऐसा करता तो मानसिंह के लिए माण्डलगढ़ के आस-पास के मैदानी क्षेत्र में प्रताप से युद्ध करना अधिक सुविधाजनक होता, परन्तु अपने सरदारों की सलाह मानकर प्रताप ने गिर्वा की घाटियों में ही शत्रु से सामना करने का निश्चय किया और गोगुन्दा में आ डटा। जब प्रताप गोगुन्दा से आगे बढ़ा तो मानसिंह माण्डलगढ़ से चलकर मोही गाँव होता हुआ उत्तरपूर्व की ओर से गोगुन्दा को जानेवाली हल्दीघाटी के उत्तरी छोर से लगभग 3-4 किलोमीटर की दूरी पर स्थित खमनोर गाँव के निकट पहुँचा और मोलेला नामक गाँव में अपना डेरा डाला। यह स्थान गोगुन्दा से 5-6 किलोमीटर की दूरी पर बनास नदी के किनारे स्थित है। उधर प्रताप ने भी हल्दीघाटी से 6-7 किलोमीटर पश्चिम में लोहसिंह गाँव में अपना पड़ाव जमाया। इस प्रकार दोनों सेनाएँ लगभग 10 किलोमीटर की दूरी पर 'खड़ी हुई थी। इस क्षेत्र में कुम्भलगढ़ की पर्वत श्रृंखला सिमटकर दर्रे का रूप धारण कर लेती है। सेनाओं की संख्या के बारे में भिन्न-भिन्न स्त्रोत भिन्न-भिन्न जानकारी देते हैं। किन्तु सारांश यह है कि प्रताप की सेना से शाही सेना तीन गुनी रही होगी और शाही सेना के पास अच्छी किस्म की हल्की तोपें भी थीं। जबकि प्रताप के

टिप्पणी

पास तोपें नहीं थीं। 21 जून (डॉ. ए.एल. श्री वस्तव ने हल्दीघाटी के युद्ध की तिथि 18 जून अबुल फजल के विवरण के आधार पर बताई है, जबकि राजस्थानी स्त्रोत 21 जून का उल्लेख करते हैं।) को प्रातः पहला जोरदार हमला प्रताप की ओर से किया गया, जिससे घबराकर मुगल सैनिक युद्ध से भागकर कई किलोमीटर पीछे हट गए और बनास के किनारे एकत्र होने लगे। इस प्रकार युद्ध का पहला चरण प्रताप के पक्ष में रहा। बाद में अकबर के स्वयं आने की अफवाह फैलाकर सैय्यदों ने अपना स्थान न छोड़ा। इस बार लड़ते-लड़ते दोनों पक्ष 'रक्त तलाई' नामक स्थान पर पहुँच गए। यहां दोनों पक्षों की हाथी सेना भी एक-दूसरे से भिड़ गई, उसी समय प्रताप मानसिंह के हाथी के सामने जा पहुँचा और अपने सुप्रसिद्ध घोड़े चेतक को ऐड़ लगाई और घोड़ा हाथी के दांतो (वीरों) पर पैर जमाकर खड़ा हो गया। प्रताप ने भरपूर बेग के साथ अपना भाला मानसिंह की तरफ मारा, किन्तु मानसिंह ने सतर्क रहते हुए होदे में झुककर वार को बचा लिया, फिर मानसिंह के इशारे पर उसके हाथी ने जोर से सिर हिलाया जिससे उसके दांतो में फंसे तेजधार दार चाकुओं से चेतक की टांगे जख्मी हो गई। तब तक इसी बीच मुगलों की सुरक्षित सेना ने प्रताप को चारो तरफ से घेर कर जोरदार हमला किया, जिससे वह घायल हो गया, किन्तु फिर भी लड़ता रहा। अन्त में चेतक को प्रताप के स्वामीभक्त सैनिक, प्रताप सहित रण क्षेत्र से बाहर निकाल ले गए। कहते हैं इस समय प्रताप के बफादार झाला बीदा ने उनके सिर से मुकुट खीचकर अपने मस्तक पर धारण कर लिया और मुगल सैनिकों पर टूट पड़ा, जिन्होने उसे प्रताप समझकर अपना ध्यान केन्द्रित रखा और प्रताप को युद्ध क्षेत्र से बाहर निकलने का अवसर मिल गया। झाला बीदा के मरते ही युद्ध लगभग समाप्त हो गया और प्रताप की बची हुई सेना कोलियारी गांव में इकट्ठा हुई, किन्तु विजयी मुगल सेना को भी भीलों ने बहुत अधिक परेशान किया और शाही सेना की रसद लूटकर ले गए। कर्नल टॉड ने हल्दीघाटी को 'मेवाड़ की थर्मोपाली' कहा है। बदायूनी इसे गोगुन्दा का युद्ध और अबुल फजल ने इसे खमनोर का युद्ध कहा है। इतिहासकार इस युद्ध को असाधारण महत्व देते आए हैं, क्योंकि मानसिंह प्रताप को न तो बन्दी बना सकता और न ही मौत के घाट उतार पाया। इतना ही नहीं बदायुनी ने लिखा है कि जून की भीषण गर्मी के कारण शाही सैनिक इतने अधिक थक गए थे कि उनमें भागते हुए प्रताप के सैनिकों अथवा रसद लूटते हुए भीलों का पीछा करने की शक्ति भी नहीं रह गई थी। अकबर को हल्दीघाटी के युद्ध के परिणामों से संतोष नहीं हुआ और उसने मानसिंह तथा आसफ खाँ की कुछ समय के लिए दरबार में उपस्थित होने पर प्रतिबन्धित कर दिया। यह युद्ध वास्तव में अकबर की साम्राज्यवादी नीति के विरूद्ध प्रादेशिक स्वतन्त्रता का संघर्ष था। कुछ भी हो पराजित प्रताप की कीर्ति राजस्थान के सांस्कृतिक इतिहास में उज्वल हो गई और हल्दीघाटी स्वतन्त्रता प्रेमियों का पवित्र तीर्थ स्थल बन गई।

युद्ध के बाद भी प्रताप ने हार नहीं मानी और कुम्भलगढ़ को अपना केन्द्र बनाकर पुनः संगठित होने का प्रयास किया। उसने ईडर के नारायणदास और सिरोही के राव सुरताण को मुगलों के विरूद्ध विद्रोह के लिए प्रेरित किया। मानसिंह की वापसी के बाद प्रताप ने गोगुन्दा पर पुनः अधिकार कर लिया।

कुम्भलगढ़ का युद्ध (1578 ई.)

15 अक्टूबर 1577 ई. को अकबर ने शाहबाज खाँ के नेतृत्व में एक शाही सेना प्रताप के विरूद्ध, प्रताप की राजधानी कुम्भलगढ को जीतने के लिए भेजी। शाहीसेना ने

कुम्भलगढ़ की तलहटी में बसे केलवाड़ा पर अधिकार कर लिया और थोड़े-थोड़े समय पर चार सैनिक दस्ते भेजे, परन्तु सफलता न मिली। दूसरी ओर दुर्ग में रसद की कमी से प्रताप चिन्तित होकर रात्रि में दुर्ग से बाहर निकलकर रणकपुर जा पहुँचा। जहाँ से वह अपने परिवार तथा विश्वासपात्र साथियों के साथ चावण्ड चला गया। 1 अप्रैल 1578 ई. को दुर्ग के प्रमुख भानसोनगिरा ने दुर्ग के दरवाजे खोलकर मुगल सेना पर जोरदार आक्रमण किया जिसमें ज्यादातर दुर्ग रक्षक मारे गए और इस प्रकार 3 अप्रैल 1578 ई. को कुम्भलगढ़ के दुर्ग पर शाहबाज खाँ का अधिकार हो गया। इससे उत्साहित होकर उसने प्रताप को ढूढ़ने का प्रयास किया, लेकिन वह नहीं मिला। उसने एक ही दिन में गोगुन्दा तथा उदयपुर पर अधिकार कर प्रताप को तलाशने की कोशिश की, किन्तु राणा नहीं मिला। मई 1578 ई. में शाहबाज खाँ के लौटते ही प्रताप ने गोगुन्दा सहित अनेक सामरिक चौकियों पर अपना अधिकार कर लिया। यह क्रम बार-बार होता रहा। शाही सेना के आते ही प्रताप जंगलों में छिप जाता और वापस लौटते ही पुनः महत्वपूर्ण स्थानों पर कब्जा कर लेता। इस प्रकार अकबर कुम्भलगढ़ के युद्ध में भी अपने उद्देश्य में सफल नहीं हुआ। मई 1580 ई. में अकबर ने शाहबाज खाँ को मेवाड़ से वापस बुला लिया। उसके लौटते ही प्रताप अपने परिवार सहित ढोलान नामक गाँव में आ बसा।

दिवेर का युद्ध (1582-83 ई.)

मई 1580 के बाद अकबर ने प्रताप के विरूद्ध कुछ समय के लिए सैनिक अभियान बन्द कर दिया। दूसरी ओर प्रताप भी अपनी कमजोर सैनिक शक्ति के कारण अपने शासित क्षेत्र की शासन व्यवस्था को मजबूत करने में लगा रहा। 1582 में वर्षा ऋतु की समाप्ति होने पर पश्चिम मेवाड़ के पहाड़ी क्षेत्रों में स्थित मुगल चौकियों और थानों के प्रताप ने हमले प्रारम्भ कर दिए। सर्वप्रथम उसने दिवेर गाँव के शाही थाने पर जोरदार हमला किया। दिवेर की लड़ाई में प्रताप के पुत्र अमर सिंह ने अपूर्व धैर्य और शौर्य का प्रदर्शन किया, जिससे प्रताप की निर्णायक विजय हुई। अब कुम्भलमेर के किले पर उसने हमलाकर मुगल सैनिकों को वहाँ से खदेड़ दिया। अन्ततः 1583 ई. में प्रताप ने कुम्भलगढ़ पर भी अधिकार कर लिया। तत्पश्चात् लूंगा राठौर को चावण्ड से खदेड़कर चावण्ड गाँव को अपनी राजधानी बनाया और वहाँ महल, मन्दिर आदि का निर्माण किया । प्रताप की इन गतिविधियों से अकबर ने मानसिंह के चाचा जगन्नाथ कछवाहा को सैय्यद राजू के साथ प्रताप को पकड़ने के लिए भेजा, किन्तु उसे सफलता नहीं मिली। उसके लौटते ही प्रताप पुनः चावण्ड लौट आया और अपनी शक्ति संगठित करता रहा।

1585 ई. के बाद अकबर ने प्रताप के विरूद्ध कोई भी सेनानायक नहीं भेजा। इसका कारण उत्तर-पश्चिमी सीमा प्रान्त की सुरक्षा में अकबर का व्यस्त होना था। इस प्रकार जीवन के निस्तर संघर्ष और भाग दौड़ वे महाराणा प्रताप के शरीर से निर्बल बना दिया था, एक दिन चावण्ड में जब वह धनुष की प्रत्यंचा को जोर से खींच कर आजमा रहा था, तभी प्रत्यचा डर जाने से वह बुरी तरह घायल हो गया, और कुछ दिनों बाद 19 फरवरी 1597 ई. को उसका स्वर्गवास हो गया। चावण्ड से लगभग 17 मील दूर वाण्डोली गांव में उसका अन्तिम संस्कार किया गया, वहीं उसकी स्मृति में छतरी का निर्माण करवाया गया जो आज भी विद्यमान है। इस प्रकार महल प्राप्त के सन्दर्भ में मुगल-राजपूत सम्बन्ध युद्ध, विनाश और प्रतिरोध से भरे रहे। मेवाड़ की आर्थिक उन्नति अवरूद्ध रही।

टिप्पणी

अपनी प्रगति जाँचिए

9. अकबर और प्रताप की महत्वकांक्षा, आदर्शो व विचारों की भिन्नता के कारण ही यह युद्ध हुआ था।

    (क) दिवेर युद्ध (ख) हल्दीघाटी युद्ध

    (ग) कुम्भलगड युद्ध (घ) मेवाड़ युद्ध

10. दिवेर की लड़ाई में इसने अपूर्व धैर्य और शौर्य का प्रदर्शन किया।

    (क) प्रताप का पूत्र अमरसिंह (ख) अकबर

    (ग) मानसिंह (घ) सूंगा राठौर

11. महाराणा प्रताप की स्तुति मे 'छतरी' का निर्माण करवाया गया।

    (क) सिराही (ख) कुम्भलगड

    (ग) चावण्डसे दूर वाण्डोसी में (घ) उदयपूर

12. राणा प्रताप की माँ का नाम था?

    (क) जयबंता बाई (ख) आनन्दी बाई

    (ग) शांति बाई (घ) जीजा बाई

3.4 जहांगीर और शाहजहां : मुगल सिक्ख सम्बन्ध

सिक्ख धर्म का जन्म उत्तर भारत के भक्ति आंदोलन की श्रृंखला में सामाजिक जीवन मूल्यों के क्षेत्र में मानवतावाद के रूप में हुआ था। इसके संस्थापक गुरूनानक जी, भारत में मुगल साम्राज्य के संस्थापक बाबर के समकालीन थे। गुरूनानक जी का जन्म सन् 1469 ई. में तलवण्डी (अब पाकिस्तान में) के ननकाना साहिब में हुआ था। गुरुनानक के बाद गुरू अंगद (1538 ई.–1552 ई.) गुरू अमरदास (1552-1574 ई.) और गुरू रामदास (1575-1581 ई.) के अधीन धीरे-धीरे सिक्ख समाज एक धार्मिक पन्थ के रूप में विकसित होने लगा। गुरू रामदास से प्रभावित होकर अकबर ने उन्हें अमृतसर में 500 बीघा जमीन दान में दी। जिस पर उन्होने एक मन्दिर एवं तालाब बनवाया। यही स्थान आज स्वर्गमन्दिर के रूप में जाना जाता है। रामदास ने अपने बेटे अर्जुन (1581-1606 ई.) को उत्तराधिकारी घोषित किया। इस समय से गुरू की गद्दी में वंशानुगत उत्तराधिकार की परम्परा चल पड़ी। सिक्खों के इसी पांचवे गुरू अर्जुन ने विद्रोही खुसरो को आशीर्वाद दिया था इस कारण जहांगीर ने उसे कैद कर उसकी हत्या करवा दी थी। लेकिन जहांगीर ने सिक्खों के दमन की कोई कारवाई नहीं की और मुगल शासकों और सिक्खों के बीच कोई बड़ा संघर्ष भी नहीं हुआ। गुरू अर्जुन के पुत्र गुरू हरगोविन्द (1606-1645) ने छठवें गुरू के रूप में गद्दी संभाली। हर गोविन्द को उत्तराधिकार के साथ-साथ कटुता विरासत में मिली थी। उसने स्वयं को सच्चा बादशाह की पदवी से विभूषित किया एवं राजोचित चिन्ह शस्त्र, बाज और छत्र धारण किए। इसके साथ-साथ उन्होंने सैनिक वेशभूषा में रहना भी शुरू किया। वह अपने अनुयायियों से पैसे के स्थान पर अस्त्र-शस्त्र भेंट चढ़ाने को कहते थे।

टिप्पणी

जहांगीर और गुरू हरगोविन्द सम्बन्ध

गुरू हरगोविन्द ने लोहगढ़ की मोर्चाबन्दी की और अकाल तख्त (प्रभु के सिहांसन) की स्थापना की। गुरू हरगोविन्द का अपने सिक्ख समुदाय को सैनिक शक्ति में परिवर्तित करना जहांगीर को अच्छा नहीं लगा। पूर्व में जहांगीर ने गुरू अर्जुनदेव पर दो लाख रूपये का जुर्माना लगाया था। जो गुरू हरगोविन्द को अदा करना था। गुरू हरगोविन्द द्वारा जुर्माने की रकम अदा न करने पर और हिसाब में गड़बड़ी रखने के कारण (जहांगीर के अधीन उन्होंने पद भी प्राप्त किया था) जहांगीर ने गुरू हरगोविन्द को ग्वालियर के किले में जुर्माना अदा न होने तक कैद कर लिया। लेकिन वजीर खाँ और मियामीर के द्वारा मध्यस्थता करने पर जहांगीर ने इसे मुक्त कर दिया। इसके बाद जहांगीर और गुरू हरगोविन्द के सम्बन्ध शान्तिपूर्ण रहे।

शाहजहां और गुरू हरगोविन्द के सम्बन्ध

शाहजहां के समय में पुनः मुगल-सिक्ख सम्बन्ध बिगड़ने लगे। शाहजहां सिक्खें के प्रति सहिष्णु नहीं था। लाहौर में गुरू अर्जुनदेव द्वारा बनवाई गई सिक्खों की पवित्र बावड़ी को नष्ट कर दिया था। दोनों को आपसी वैमनस्य के बहुत से मामले गलतफहमी पर आधारित थे, ऐसी घटनाओं में दो घटनाएँ प्रमुखता से बताई जा सकती है–

1. एक बार सन् 1628 ई. में अमृतसर के निकट एक शिकरगाह में बादशाह और गुरू हरगोविन्द दोनों शिकार हेतु आ गए। शाहजहां का एक प्रिय बाज उड़कर गुरू के खेमे में चला गया, जिसे सिक्खों ने वापस करने से मना कर दिया। जिससे बादशाह ने अपने को अपमानित अनुभव कर बदला लेने के लिए एक सेना भेजी। जिसे भारी हानि उठाने के बाद अमृतसर से लौटना पड़ा।
2. गुरू हरगोविन्द को एक घोड़ा भेंट करने के लिए उनका अनुयाई घोड़ा लेकर आ रहा था, जिसे अटक में मुगल अधिकारियों ने जब्त कर लिया, जिससे गुरू हरगोविन्द सिंह नाराज हो गए। मुगल अधिकारियों ने यह घौड़ा शिष्य द्वारा शाही घुड़साल से चुराने का आरोप लगाया। इसी समय गुरू ने व्यास नदी के तट पर श्रीहरगोविन्दपुर नामक एक नगर बसाना प्रारम्भ किया। जिसमे किला भी बनवाया गया। जहाँ जालन्धर के मुगल समेदार से सिक्खों का संघर्ष हुआ लेकिन इसमें गुरू की जीत हुई। अतः मुगलों ने एक शक्तिशाली सेना सन् 1631 ई. में भेजी, तो गुरू को भागकर कश्मीर की पहाड़ियों में शरण लेनी पड़ी। अमृतसर में उनके घर व सम्पत्ति को जब्त कर लिया गया। सन् 1645 ई. में गुरू हरगोविन्द की मृत्यु होने से पहले उन्होंने हरराय (1645-1661) को गुरू की गद्दी सौंप दी। यद्यपि गुरू हरराय के मुगल सम्राट शाहजहां से सम्बन्ध शान्ति तथा सौहार्दपूर्ण रहे।

3.5 मराठों का उत्कर्ष

ओरंगजेब की मृत्यु के बाद पतनशील मुगल साम्राज्य के दिनों में दक्कन के पठार में मराठा शक्ति का उत्कर्ष हो रहा था। इन मराठों ने मुगल साम्राज्य को ध्वस्त करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की थी। मराठे लोग परिश्रमी, स्वावलम्बी, वीर तथा उत्साही होने के साथ-साथ स्वाभिमानी भी होते थे। इनकी भाषा मराठी व धर्म हिन्दू था। क्षेत्र की

टिप्पणी

प्राकृतिक विशेषताओं के कारण मराठों में कुछ ऐसी शारीरिक विशेषताएँ विकसित हुई, जिन्होंने उन्हें अपने अन्य देशवासियों से विशिष्ट बना दिया। उनके क्षेत्र में व्यापक धुमावदार चट्टानी रास्तों, क्रमागत तोरणों से युक्त प्रवेश द्वार, दुर्ग तक पहुँचने के मार्ग पर दृष्टि रखने के उद्देश्य से बनाई गई मीनारें निश्चय ही उन्हें अपने विपक्षियों के विरूद्ध श्रेष्ठता प्रदान करती थी। उनकी छापामार युद्धकला अपने शत्रुओं को भंयकर क्षति पहुँचाने में समर्थ थी। कृषिजीवी यह मराठे मलीनतम एवं कठोरतम कार्यों को भी करने में नहीं सकुचाते थे। 16वीं 17वीं शताब्दी में उत्तर भारत की तरह महाराष्ट्र में भी धार्मिक आंदोलन चला, जिसने लोगों को जातीयता का नवीन जीवन प्रदान कर उनमें प्रजातन्त्र की ठोस भावना भर दी। इनमें राष्ट्रीयता लाने के लिए राजनैतिक चेतना और स्वतन्त्रता की भावना की कमी थी। इस कमी को तुकाराम, रामदास, वामन पण्डित, एकनाथ रानाडे जैसे धर्मोपदेशकों ने पूरा किया। शिवाजी ने राजनैतिक चेतना की कमी को पूरा किया।

3.5.1 मराठों के उत्कर्ष के कारण

मराठों के उत्कर्ष के अनेक कारणों में महाराष्ट्र की भौगोलिक स्थिति और प्राकृतिक परिवेश, मराठी समाज में समानता का भाव, स्वतन्त्रता और विद्रोह की भावना, मराठी भाषा तथा साहित्य का विकास, धार्मिक जागरण व सामाजिक चेतना, कूटनीतिज्ञता व यथार्थवादिता, शोचनीय आर्थिक स्थिति आदि उल्लेखनीय हैं। इन कारणों के साथ-साथ मराठों को राजनीतिक सत्ता, सैनिक शक्ति व प्रशासन का पर्याप्त अनुभव था। दक्षिण की सल्तनतों का पतन हो रहा था, जिसके चलते मराठों के उत्कर्ष की भावभूमि तैयार हो चुकी थी। इन सबके साथ जब उन्हें शिवाजी का कुशल नेतृत्व मिला तो उन्होंने उत्कर्ष प्राप्त कर लिया।

3.5.2 शिवाजी की विजयें एवं उनका प्रशासन

मराठों के उत्कर्ष में शिवाजी की उपलब्धियों एवं प्रशासन का महत्वपूर्ण स्थान है। डॉ. एस.आर. शर्मा का तो यहाँ तक मानना है कि भारत में मुगलों की राजनैतिक सत्ता के अधिकारी अंग्रेज नहीं वरन मराठे थे। शिवाजी के पूर्वज भोसला वंशीय मराठा थे एवं इस वंश के प्रथम पुरूष के रूप में बालाजी का नाम आता है। शिवाजी का जन्म 20 अप्रैल 1627 ई. (शिवाजी के जन्म के सम्बध में कुछ अन्य इतिहासकारों ने जो तिथियाँ प्रस्तावित की हैं वे क्रमशः 10 अप्रैल 1627 ई. 9 मार्च 1630 ई, 1 फरवरी 1630 ई. है।) को पूना में उत्तर में स्थित शिवनेरी के दुर्ग में हुआ था। इनके पिता शाहजी भोसले एवं माता जीजाबाई थी। शाहजी भोसले बीजापुर राज्य में उच्च पद पर थे। शिवाजी का पालन-पोषण जीजाबाई तथा उनके दादा कोणदेव ने किया, क्योंकि इनके पिता ने माता का परित्याग करके तुकाबाई मोहते नामक महिला से विवाह किया था। वीर माता जीजाबाई ने शिवाजी में मराठा स्वाभिमान वीरता एवं राष्ट्र भक्ति की भावनाएं यत्नपूर्वक भरी थीं। दादा कोणदेव ने उन्हें युद्धकला की शिक्षा दी। कृष्ण जी अनन्त के अनुसार दादा जी कोणदेव ने शिवाजी को प्रशिक्षित किया तथा उनके लिए श्रेष्ठ अध्यापक नियुक्त किए। थोड़े समय में शिवाजी कुश्ती, घुड़सवारी, तलवारबाजी जैसी कलाओं में कुशल हो गए। तुकाराम तथा रामदास ने शिवाजी में राष्ट्र-प्रेम की भावना कूट-कूट कर भर दी।

टिप्पणी

शिवाजी (1627 ई. 1680 ई.)
मराठा साम्राज्य को सशक्त एवं मजबूत बनाने में शिवाजी को भूमिका अहम रही है।

अपनी प्रगति जाँचिए

13. सिख धर्म के संस्थापक 'गुरुनानकजी' मुगल साम्राज्य के कौन से संस्थापक के समकालीन थे?

(क) अकबर (ख) मोहम्मद

(ग) तुगलक (घ) बाबर

14. मराठों को अपनी उत्कर्ष के लिए इनका नेतृत्व मिला

(क) शहाजी (ख) नानाजी स.

(ग) शिवाजी (घ) संभाजी

15. शिवाजी को युद्धकला की शिक्षा इन्होंने दी–

(क) तुकाराम (ख) दादाजी कोण्डदेव

(ग) रामदास (घ) ताकनाथ

टिप्पणी

16. शिवाजी की माता का नाम था?

(क) जयबंताबाई (ख) आनन्दीबाई

(ग) शान्तिबाई (घ) जीजाबाई

3.5.2.1 शिवाजी की प्रारम्भिक विजयें

शिवाजी ने 1641 ई. में पूना की जागीर का प्रबन्ध अपने हाथ में ले लिया, तथा मावल प्रदेश के कई वीर युवाओं को अपना मित्र बनाकर संघर्ष प्रारम्भ किया।

इस समय मुगल आक्रमणों तथा आन्तरिक विद्रोहों के कारण अहमदनगर तथा बीजापुर राज्य काफी दुर्बल हो गए थे। अतः शिवाजी ने बीजापुर राज्य के तोरण दुर्ग पर सन् 1647 ई. में आक्रमण कर अधिकार कर लिया। इस जीत में उन्हें दो लाख रूपये मिले जिससे उन्होंने अपनी सैनिक शक्ति सुदृढ़ करते हुए प्रसिद्ध रायगढ़ दुर्ग को विजित किया। इसके बाद अपने चाचा शंभु जी से सूपा के दुर्ग को छीन लिया। चाकन के दुर्ग, इन्दापुर तथा बरमती की चौकियां, कोण्डाना का दुर्ग एवं पुरन्दर के दुर्ग को भी अपने अधिकार में कर लिया। इस प्रकार साहसी शिवाजी के अधिकार में दुर्ग पर दुर्ग आते गए। इसके उपरान्त उन्होंने सिंहगढ़ पर अधिकार कर अपने कुल की जागीर की दक्षिणी सीमाओं को सुरक्षित कर लिया। इस प्रकार सन् 1647 ई. तक शिवाजी ने अपनी प्रारम्भिक विजयों के अन्तर्गत चाकन से लेकर नीरा तक के सम्पूर्ण भूभाग पर अधिकार कर लिया था। इसके बाद उन्होंने जाबली और कल्याणी के दुर्ग जीते। उन्होंने कोंकण को भी लूटा और बेरोजगार युवकों को शामिल कर अपनी सैनिक शक्ति बढ़ाई।

3.5.2.2 बीजापुर से संघर्ष

जब शिवाजी ने बीजापुर राज्य के अनेक दुर्गों पर अधिकार कर लिया तो वहाँ के सुल्तान ने अपने प्रसिद्ध सेनापति अफजल खाँ को शिवाजी के दमन के लिए भेजा। अफजल खाँ ने शिवाजी के प्रदेशों पर सितम्बर 1659 ई. में आक्रमण कर प्रसिद्ध विठोबा मन्दिर पर हमला किया और उसकी सम्पत्ति को लूट लिया। फिर शिवाजी के मित्र बालाजी नायक से दो लाख रूपये वसूल किए। इस बीच अफजल खां को यह अनुभव होने लगा कि शिवाजी को हराना एवं गिरफ्तार करना आसान नहीं है, अतः उसने कृष्ण जी भास्कर की सहायता लेने का निश्चय किया। कृष्ण जी भास्कर ने दोनों का मिलना तय करवाया, किन्तु कृष्ण जी भास्कर की बातों से शिवाजी को अफजल खाँ की नियत पर सन्देह हो गया, अतः उन्होंने अफजल खाँ से मिलने से पहले लोहे का कवच व टोपी पहनी एवं चौगें के नीचे बखनखा नामक शस्त्र छिपा लिया। मिलने पर अफजल खाँ ने बढ़कर शिवाजी को गले से लगा लिया, फिर एक हाथ से गला पकड़कर, दूसरे से तलवार का वार किया, कवच पहनने के कारण शिवाजी पर तलवार के वार का असर नहीं हुआ। फिर शिवाजी ने अपने गले को छुड़ाने के लिए बखनखे का प्रयोग किया और उसी से अफजल खाँ की आंते चीर दी। शोर सुनकर दोनों ओर के दो-दो अंगरक्षक एक दूसरे पर झपटे, परन्तु शिवाजी के अंगरक्षको ने अफजल खां के अंगरक्षको को मौत की घाट उतार दिया, फिर दोनों ओर की छुपी सेनाएं एक दूसरे पर टूट पड़ी। अफजल खां की सेना भाग खड़ी हुई और अनेक सैनिक मारे गए।

शिवाजी को अफजल खां का तोपखाना, बड़ी मात्रा में हथियार और युद्ध के अन्य अनेक सामान प्राप्त हुए।

टिप्पणी

3.5.2.3 शाइस्ता खाँ पर आक्रमण

औरंगजेब के मामा शाइस्ता खा ने चकन के दुर्ग पर अधिकार कर लिया। शाइस्ता खाँ को औरंगजेब ने दक्षिण का सूबेदार नियुक्त कर रखा था और उन्हें शिवाजी का दमन करने का आदेश भी दिया था। शाइस्ता खाँ ने अहमदनगर से पूना तक के सभी दुर्गों पर अधिकार कर वर्षा ऋतु में सुरक्षित स्थान पर रहने के उद्देश्य से 19 मई 1661 ई. को पूना शहर में प्रवेश कर पूना के महल में अपना शाही शिविर लगा लिया। जबकि शिवाजी इस महल के चप्पे-चप्पे से परिचित थे। अतः उन्होंने 6 अप्रैल 1663 ई. को मध्य रात्रि में पूना के किले में प्रवेश कर लिया। शिवाजी ने शाइस्ता खाँ के महल पर धावा बोल दिया तथा भागते हुए शाइस्ता खाँ के हाथ का अंगूठा शिवाजी की तलवार से कट गया। रात्रि के अंधकार में मराठो ने भीषण मारकाट की जिससे शाइस्ता खाँ के दो पुत्र सहित अनेक मुगल मारे गए। इस घटना के बारे में खाफी खाँ लिखता है कि जब इस घटना का हाल बादशाह औरंगजेब को मालूम हुआ तो उसने अमीर-उल-उमरा, शाइस्ता खाँ और राजा जसवन्त सिंह दोनों को भला-बुरा कहा तथा दक्षिण की सूबेदारी और शिवाजी के विरूद्ध लड़ने वाली सेना का संचालन अब शहजाद मुअज्जम को दे दिया और शाइस्ता खाँ को बंगाल भेज दिया।

3.5.2.4 शिवाजी द्वारा सूरत की प्रथम लूट

शिवाजी ने मुगलों से हुई हानि की भरपाई के लिए 10 जनवरी 1664 ई. को सूरत पर आक्रमण कर मुगल सूबेदार इनायत खाँ को खदेड़ा। जिसने भाग कर सूरत के किले में शरण ली और फिर चार दिन तक देश के सर्वाधिक समृद्ध नगर सूरत को लूटा। शिवाजी को इस लूट से एक करोड़ से अधिक धन मिला। 19 जनवरी 1664 ई. को जब उसे यह सूचना मिली कि नगर रक्षा हेतु मुगल सेना आ रही है तब 20 जनवरी को वह सूरत छोड़कर गायब हो गया।

3.5.2.5 मिर्जा राजा जयसिंह और शिवाजी

सूरत की लूट से घबराकर औरंगजेब ने अपने योग्यतम और दक्ष सेनानायक मिर्जा राजा जयसिंह और दिलेर खाँ को शिवाजी की शक्ति का दमन करने के लिए भेजा। इस समय शिवाजी पुरन्दर के दुर्ग में था। अतः पुरन्दर में शिवाजी को घेरने के लिए जय सिंह ने आगे बढ़कर 24 अप्रैल 1665 ई. को ब्रजगढ़ दुर्ग पर अधिकार कर लिया। जयसिंह ने एक सैनिक दस्ता राजगढ़, सिंहगढ़ और रोहिड़ा क्षेत्रों को लूटने व नष्ट करने के लिए भेजा और स्वयं जयसिंह ने पुरन्दर का दुर्ग घेरकर पुरन्दर के नीचे माची दुर्ग के पांच बुर्ज व बाड़ा छीन लिया, जिससे पुरन्दर के किले की बचने की संभावना बहुत कम हो गई। अतः शिवाजी ने सन्धि करने का निश्चिय किया।

3.5.2.6 पुरन्दर की सन्धि (जून 1665 ई.)

मिर्जा राजा जय सिंह ने प्रथमतः शिवाजी के सन्धि प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया तब शिवाजी ने इस आशय का एक लम्बा पत्र हिन्दी में लिखा कि वह अपने आत्म समर्पण के प्रतीक के रूप में अपने पुत्र को भेजने में तत्पर हैं, किन्तु राजा ने इस बात पर जोर

टिप्पणी

दिया कि वह स्वयं निशस्त्र व्यक्तिगत रूप से उसके समक्ष आकर निर्विवाद आत्म समर्पण करे तथा अपने समस्त दुर्ग उसे सौंप दें। जयसिंह से पूर्ण सुरक्षा एवं सम्मान का आश्वासन पाकर शिवाजी उसके शिविर में गया। दोनों के मध्य वार्ता हुई, जिसके फलस्वरूप शिवाजी एवं जयसिंह के मध्य 11 जून 1665 ई. को पुरन्दर की विख्यात सन्धि हुई, जिसके अनुसार शिवाजी 35 में से अपने 23 दुर्ग मुगलों को सौंपने को तत्पर हो गया, तथा 12 दुर्ग जागीर के रूप में उसके पास रहे। सन्धि की अन्य शर्ते भी इसी प्रकार कठोर थीं। इसके बाद जयसिंह ने 1666 ई. में शिवाजी के सहयोग से बीजापुर पर आक्रमण किया तथा शिवाजी को पन्हाला का घेरा डालने भेजा, किन्तु बीजापुरियों की सतर्कता के कारण उन्हें सफलता नहीं मिली।

3.5.2.7 शिवाजी की आगरा में सम्राट से भेंट

मिर्जा राजा जयसिंह को यह डर था कि मुगल सेना के लौटने पर शिवाजी कहीं बीजापुर से मेल मिलाप न कर ले। इसलिए उसने शिवाजी को आगरा चलकर सम्राट से भेंट करने को कहा और शिवाजी को यह विश्वास दिलाया कि वहां उसका यथोचित सम्मान किया जाएगा और सम्भवतः उसे दक्षिण की सूबेदारी भी दे दी जाए। शिवाजी ने बड़ी अनिच्छा से जयसिंह के प्रस्ताव को तब स्वीकार किया, जब उसे जयसिंह तथा उसके पुत्र रामसिंह द्वारा सुरक्षा का वचन दिया गया। 16 मार्च 1666 ई. को शिवाजी अपने पुत्र सम्भाजी सहित पांच अधिकारियों एवं 350 सैनिकों के साथ आगरा की ओर चल पड़ा। मुगल राजधानी आगरा में मई 1666 ई. में जयसिंह के पुत्र रामसिंह तथा मुखलिस खाँ ने उसका स्वागत किया। 13 मई 1666 ई. में जब शिवाजी को मीर बख्शी असद खाँ के माध्यम से दीवाने खास में बादशाह के समक्ष उपस्थित किया। शिवाजी ने बादशाह को पांच सौ स्वर्ण मुहरें तथा सात हजार रूपये की भेंट दी। शिवाजी का सम्मान करते हुए बादशाह ने उसे पांच हजारी मनसब प्रदान कर जसवन्त सिंह के पीछे खड़ा किया क्योंकि यह मनसब शिवाजी के पुत्र और जमाता को पहले दिया जा चुका था और जसवन्त सिंह शिवाजी से हार चुका था अतः शिवाजी ने इसे अपना अपमान समझा। उसका मानसिंह सन्तुलन बिगढ़ गया और वह दरबार में ही अशिष्ट व्यवहार करने लगा फलतः औरंगजेब ने उसे न कोई सम्मान दिया और न ही कोई खिलवत दी और उसे जयपुर भवन में ही बन्दी बना लिया गया। लगभग तीन माह के बन्दी जीवन के बाद शिवाजी 17 अगस्त 1666 ई. को वह तथा उसका पुत्र सम्भाजी फलों के दो टोकरों में छिपकर जयपुर भवन (रामसिंह का घर) से निकल भागे। उसके बाद वे साधुओं के वेश में मथुरा पहुँचे। जहाँ एक मराठा परिवार के पास सम्भाजी को छोड़कर शिवाजी इलाहाबाद, बनारस, बुन्देलखण्ड, गोडवाना, गोलकुण्डा होते हुए 12 सितम्बर 1666 ई. को पुनः रायगढ़ पहुँच गए। मुगल कैद से शिवाजी के भागने पर औरंगजेब को अन्त तक अफसोस रहा। उसने अपनी वसीयत में लिखा कि "एक मिनट की लापरवाही वर्षों तक शर्मिन्दगी का कारण बन जाती है। दुष्ट शिवाजी को सावधानी से पहरे में रखने के प्रति मैंने उपेक्षा की और इस कारण मुझे अपने जीवन के अन्त तक युद्ध की भयंकर कठिनाईयों में उलझा रहना पड़ा और बहुत बार बहुत दुःख उठाना पड़ा।

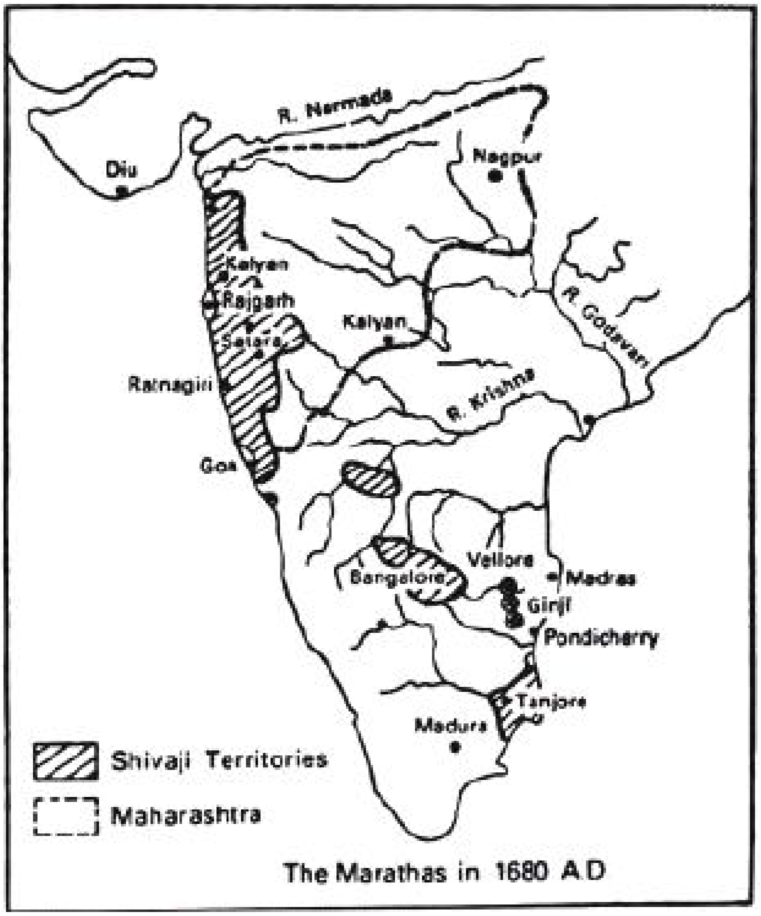

चित्र क्र. 3.2: मराठा साम्राज्य (1680 ई.)

3.5.2.8 मुगलों के साथ सन्धि

मुगल बादशाह औरंगजेब ने अब दक्षिण की कमान मुअज्जम और जसवन्त सिंह को सौंपी। जिनके माध्यम से चतुर शिवाजी ने बादशाह से क्षमा माँग ली और पुनः शाही सेवा में शामिल होने की इच्छा जताई। बादशाह ने क्षमा करते हुए शिवाजी को राजा का खिताब, सम्भाजी को पांच हजार की मनसब तथा बरार में एक जागीर दे दी। जसवन्त सिंह के सुझाव पर ही मुगल मराठा संधि हो गई। जिसके अनुसार शिवाजी को अपने राज्य का स्वतन्त्र शासक मान लिया गया और अब शिवाजी ने अपने प्रशासन का पुर्नगठन प्रारम्भ किया।

3.5.2.9 मुगलों के विरूद्ध पुनः युद्ध करना

सन् 1670 ई. में दोनों के मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध फिर टूट गए। शिवाजी ने अब मुगल प्रदेशों पर धाबा मारने आरम्भ कर दिए और पुरन्दर की सन्धि के अन्तर्गत मुगलों को सौपें गए दुर्गों पर पुनः अधिकार कर लिया। इस समय मुगल शहजादा मुअज्जम और दिलेर खाँ के बीच अनबन चल रही थी। इसका लाभ उठाते हुए शिवाजी ने अहमदनगर, जुन्नार और परेण्डा के 51 गावों को लूटा तथा अक्टूबर 1670 ई. में सूरत को दोबारा लूटा। तीन दिन में शिवाजी को लगभग 132 लाख की सम्पत्ति प्राप्त हुई। इसके बाद बरार, बगलाना और खानदेश पर विजय प्राप्त की। जहाँ से भी मराठे गुजरे वहाँ चौथ वसूल की। औरंगजेब ने शिवाजी को रोकने के कई प्रयास किए, किन्तु उसे कोई सफलता न मिली।

टिप्पणी

3.5.2.10 शिवाजी का राज्याभिषेक

दूसरी क्षेत्रीय रियासतों से समानता के व्यवहार की अपेक्षा रखते हुए शिवाजी हिन्दु शास्त्रानुसार अपना राज्याभिषेक करवाकर राजा की उपाधि धारण करना चाहते थे, क्योंकि उनके स्वतन्त्र होने पर भी उन्हें मुगल सम्राट अपना अनियमित राज्याधिकारी, बीजापुर का सुल्तान उन्हें एक विद्रोही तथा मराठी समाज उन्हें एक नया अमीर ही मानता था। अतः उन्होंने 15 जून 1674 ई. को अपना राज्यभिषेक काशी के विख्यात पण्डित विश्वेश्वरजी की अध्यक्षता में लगभग पचास हजार ब्राह्मणों से करवाया और 'छत्रपति' की उपाधि धारण कर रायगढ़ को अपनी राजधानी बनाया। राज्याभिषेक के बारह दिन बाद उनकी माता जीजाबाई का देहान्त हो गया। इसके कारण शिवाजी ने 4 अक्टूबर 1674 ई. को अपना राज्याभिषेक तांत्रिक विधि से पुनः करवाया।

3.5.2.11 शिवाजी का कर्नाटक अभियान

इस समय शिवाजी ने अपने राज्याभिषेक के उत्सव में अत्याधिक धन खर्च कर दिया था अतः उन्हें खाली राजकोष को भरने के लिए धन की सख्त आवश्यकता थी। जिसके लिए उन्होंने मुगल सूबेदार बहादुर खाँ पर आक्रमण कर एक करोड़ रूपए और दो सौ घोड़े लूट लिए। उसके बाद बगलाना, खानदेश सहित आदि अनेक शहरों को उन्होंने लूटा। शिवाजी ने अपने कर्नाटक अभियान के लगभग एक वर्ष में ही बीस लाख हून प्रति वर्ष के आय के प्रदेश को जीत लिया जिसमें कुल मिलाकर छोटे-छोटे सौ किले भी थे। इस अभियान में शिवाजी को अपार धनराशि हाथ लगी। तुंगभद्रा से काबेरी तक का क्षेत्र एवं समुद्री प्रदेश शिवाजी के अधिकार में आ गया। इन प्रदेशों में नागरिक शासन में सुधार कर सुरक्षा हेतु रक्षा दल तैनात किए। इस प्रकार शिवाजी शानदार विजय के साथ महाराष्ट्र लौट आए।

3.5.2.12 शिवाजी के अन्तिम दिन और मृत्यु

शिवाजी के जीवन के अन्तिम दिन पारिवारिक चिन्ताओं एवं कलह में बीते। उनका ज्येष्ठ पुत्र सम्भाजी दुराचारी हो चला था। उसके सुधारने के सभी प्रयास विफल हो रहे थे अतरू शिवाजी ने 1678 ई. में सम्भाजी को पन्हाला के दुर्ग में कैद कर सुधारने का प्रयास किया, किन्तु सम्भाजी में कोई सुधार तो न हुआ और वह मुगल सेनानायक दिलेर खाँ से साठ-गांठ कर 23 दिसम्बर 1680 ई. की रात को अपनी पत्नी सहित भागकर मुगल शिविर में पहुँच गया और दिलेर खां के साथ मिलकर बीजापुर पर आक्रमण कर दिया। अतः बीजापुर के मंत्री ने शिवाजी से सहायता मांगी, जिससे दिलेर खां वहां से हटकर पन्हाला की ओर चल पड़ा। इस बीच दिलेर खाँ ने सम्भाजी को कई बार अपमानित किया जिससे वह भागकर पुनः पिता के पास पन्हाला लौट आया। शिवाजी बार-बार उसे कर्तव्य और उत्तरदायित्व का ध्यान दिलाते रहे, किन्तु सम्भाजी नहीं सुधरा अन्ततः उसे पन्हाला में नजरबन्द कर स्वयं सज्जनगढ़ में सन्त रामदास के पास चले गए। शिवाजी को अब राज्य के भविष्य और योग्य उत्तराधिकारी की चिन्ता सता रही थी क्योंकि छोटा पुत्र राजाराम अभी मात्र 10 वर्ष का था और पटरानी सोयराबाई राजाराम को ही उत्तराधिकारी बनाना चाहती थी। उधर राज्य के दो मंत्री मोरोपन्त तथा अन्ना जी दत्तो भी आपस में झगड़ रहे थे। अतः शिवाजी घोर निराशा में डूबने लगे उन्होंने समस्या समाधान के लिए अपने गुरू रामदास से भी विचार-विमर्श

किया किन्तु समस्या का समाधान न मिलने पर वे बीमार रहने लगे। 2 अप्रैल 1680 ई. को ऐसे बीमार पड़े कि फिर ठीक ही न हुए और 13 अप्रैल 1680 ई. को उनका स्वर्गवास हो गया।

टिप्पणी

अपनी प्रगति जाँचिए

17. शिवाजी ने 'बखनखा' शास्त्र के प्रयोग किसे मारा था?

    (क) शाहीस्ता खाँ (ख) दिलेर खाँ

    (ग) अफजल खाँ (घ) औरंगजेब

18. शिवाजी ने संभाजी को सुधारने के लिए इस किसे में नजरबंद करके रखा था?

    (क) सिंहदूर्ग (ख) पन्हाजा का दूर्ग

    (ग) अगरा (घ) बीजापूर

19. शिवाजी को 'राजा' का खिताब किस मुगल बादशाह ने दिया?

    (क) औरंगजेब (ख) अफजल खाँ

    (ग) शहिजान (घ) मुअजजम

20. शिवाजी की राजधानी थी?

    (क) रायगढ़ (ख) किशनगढ़

    (ग) सिंहगढ (घ) लालगढ़

3.5.3 शिवाजी का प्रशासन

मध्यकाल के अन्य शासको की भाँति शिवाजी भी एक निरंकुश प्रभुत्व सम्पन्न शासक थे। राज्य की सम्पूर्ण शक्तियाँ उनमें निहित थी। केन्द्रीय प्रशासन में उनके अतिरिक्त अष्ट प्रधान होते थे। जिनमें पेशवा मुख्य प्रधान था, इसके अलावा अमात्य (राज्य के आय-व्यय की देखभाल करना), मंत्री अथवा वाक्यानवीस (राजा के दैनिक कार्यों, खान-पान और मिलने-जुलने तथा सुरक्षा की देखभाल करने वाला), सचिव या सुरनवीस (राजकीय पत्रों एवं परगनों का हिसाब रखने वाला), सेनापति या सर-ए-नौवत (सेना की भर्ती, संगठन अनुशासन, रक्षद व्यवस्था करने वाला), न्यायाधीश (सभी प्रकार के न्याय करना इसका कार्य था), सुमन्त या दबीर (विदेशमंत्री, सन्धिविग्रह आदि राजनायिक कार्य करना), पण्डितराव या सदर मुहतसिब (धार्मिक त्योहारो की तिथियाँ तय करना, धार्मिक झगड़ों का निबटारा करना आदि इसका कार्य था)। इन आठ प्रधानों के अतिरिक्त 18 कारखानों के तथा 12 महलों के अधिकारी होते थे, जो इन्हीं अष्ट प्रधानों के अधीन कार्य करते थे।

प्रान्तीय प्रशासन भी शिवाजी का गतिमान था। सम्पूर्ण राज्य तीन प्रान्तों में बटा हुआ था। प्रत्येक प्रान्त एक प्रान्तपति या सूबेदार की अधीनता में था। उत्तरी प्रान्त त्रियम्बक पिंगले के अधीन था। जिसमें डांग, बगलाना, कोली क्षेत्र, दक्षिणी सूरत कोंकण, उत्तरी बम्बई और पूना की ओर का दक्षिणी पठार था। दूसरा दक्षिणी प्रान्त था, जो अन्ना जी

दत्तो के शासन में था तथा तीसरा दक्षिणी-पूर्वी प्रान्त था, जो दत्तो जी पन्त की देखरेख में था शिवाजी के अन्तिम समय में एक चौथा प्रान्त भी अव्यवस्थित रूप में था और यहाँ सैनिक शक्ति के बल पर ही शासन चलता था। इसमें बेल्लूर तथा जिंजी का प्रदेश शामिल था।

टिप्पणी

स्थानीय शासन की दृष्टि से प्रान्तों को कई परगनों और मौजो में बाँटा गया था। इसी प्रकार शिवाजी ने सैन्य व्यवस्था, अर्थ व्यवस्था और लगान व्यवस्था का भी उचित प्रबन्ध किया हुआ था। भू-राजस्व 33 प्रतिशत निश्चित किया गया था तथा बाद में अन्य स्थानीय करों को माफ कर भूमिकर बढ़ाकर 40 प्रतिशत कर दिया।

शिवाजी धर्म परायण एवं माँ भवानी के परमभक्त थे वह मन्दिरों और साधु महात्माओं को प्रभूत दान देते रहते थे। कभी-कभी मुस्लिम फकीरों को भी दान देते थे और राज्य कर्मचारियों की नियुक्ति में हिन्दू-मुस्लमान का भेद नहीं करते थे। खाफी खाँ जैसे कट्टर मुस्लिम इतिहासकार ने भी शिवाजी की धार्मिक सहिष्णुता तथा हमले में मिली हुई मुस्लिम महिलाओं और बच्चों के प्रति किए गए सम्मानपूर्ण व्यवहार की प्रशंसा की है।

3.6 मुगल साम्राज्य का पतन

मुगल साम्राज्य के पतन की प्रक्रिया यद्यपि औरंगजेब के शासनकाल के अन्तिम वर्षों में प्रारम्भ हो गई थी। उत्तराधिकार के युद्ध, कमजोर परवर्ती मुगल सम्राट और दरबार में ईरानी-तूरानी गुठबन्दी के रूप में पतन के स्पष्ट लक्षण दिखाई पड़ने लगे थे। औरंगजेब के उत्तराधिकारी दुर्बल थे और उत्तराधिकार के युद्ध के कारण अमीरवर्ग सबल तथा सम्राट निर्बल होते गए। औरंगजेब के बाद राजगद्दी की प्राप्ति हेतु उसका ज्येष्ठ पुत्र बहादुरशाह की उपाधि से मुगल सिंहासन पर बैठा, किन्तु 1712 ई. में उसकी मृत्यु के बाद उसके चार पुत्रों में युद्ध हुआ जिसमें मुइनुद्दीन सफल होकर जहांदारशाह की उपाधि धारण कर गद्दी पर बैठा, लेकिन बहादुरशाह के एक पौत्र फरूखसियर ने सिंहासन पर दावा किया। उसे सैय्यद भाईयों (अब्दुल्ला खाँ और हुसैन अली) का समर्थन प्राप्त था। जिनकी सहायता से वह 1713 ई. में नाममात्र का सम्राट बना, किन्तु वास्तविक शक्ति सैय्यद भाईयों के हाथों में ही रही। इनके दबाव से मुक्त होने के लिए फरूखसियर ने सुन्नी तूरानी दल से समर्थन लेकर सत्ता चलाने का प्रयास किया जिसके कारण सैय्यद भाईयों ने नाराज होकर उसे न सिर्फ सिंहासन से हटवाया, अपितु मरवा भी दिया। अब उन्होंने 1719 ई. में मोहम्मद शाह को मुगल सिंहासन पर बैठाया। मोहम्मद शाह ने चतुरता पूर्वक सुन्नी तुरानियों से मिलकर सैय्यद भाईयों को मरवाया। जिसके परिणाम स्वरूप राजसत्ता की वास्तविक बागडोर तुरानियों के पास आ गई और सन् 1748 ई. में अपनी मृत्यु तक वह वास्तविक रूप से कार्य नहीं कर सका। इस बीच 1739 ई. में नादिर शाह के आक्रमण से मुगल साम्राज्य की बची प्रतिष्ठा भी नष्ट-भ्रष्ट हो गई। दूसरी ओर मराठों, रोहिल्लो, सहित सम्पूर्ण देश में क्षेत्रीय शक्तियों का उदय हो रहा था। जिनको नियंत्रित करना मुगलों की शक्ति में नहीं था। इस प्रकार मुगल सत्ता का पराभव हो चुका था और यह कहा जाने लगा "दिल्ली से पालम, शाहआलम।''

3.6.1 मुगल साम्राज्य के पतन के लिए औरंगजेब का उत्तरदायित्व

मुगल साम्राज्य के पतन के लिए अनेक कारण उत्तरदाई थे, किन्तु कुछ इतिहासकारों ने औरंगजेब को मुगल साम्राज्य के पतन के लिए जिम्मेदार ठहराया है। अतः हम यहाँ औरंगजेब की नीतियों में पतन के तत्वों की चर्चा करेंगे।

औरंगजेब (1658 ई.–1707 ई.)

3.6.1.1 औरंगजेब की धार्मिक नीतियाँ

उसकी धार्मिक नीतियाँ अत्याचार, उत्पीड़न एवं असमानता पर आधारित थीं। वह कट्टर सुन्नी एवं धर्मान्ध शासक था जिसने मन्दिरों को तोड़कर, तीर्थ यात्रा कर, जजिया कर एवं हिन्दुओं को राजकीय सेवा से निकालकर धर्म परिवर्तन को प्रोत्साहित कर बहुसंख्यक हिन्दू समाज में असंतोष फैला दिया। उसने अकबर द्वारा स्थापित सहयोग और सौहार्द की नीतियों के विपरीत कार्य कर सद्भावना का आधार नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। वह आदर्श इस्लामी राज्य का पालन करना चाहता था। इस संकीर्ण तथा अदूरदर्शी नीति के कारण राजपूतों, बुन्देलों, सिक्खों तथा मराठों को मुगल साम्राज्य का शत्रु बना दिया। उसने मारवाड़ के स्वामिभक्त वीर राठौरो से संघर्ष मोल लिया, इतना ही नहीं उसने शिया मुसलमानों को भी नष्ट करने का प्रयास किया। परिणाम स्वरूप देश की न केवल हिन्दू प्रजा बल्कि शिया मुसलमान भी उसके कट्टर शत्रु बन गए।

टिप्पणी

3.6.1.2 औरंगजेब की दक्षिण नीति

औरंगजेब की दक्षिण नीति न सिर्फ मुगल साम्राज्य के लिए बल्कि स्वयं उसके लिए विनाश का कारण बनी। उसने अपने जीवन में अन्तिम 25 वर्ष दक्षिण के युद्धों में ही बर्बाद किए। फलतः मुगल प्रशासन के बड़े अधिकारी भी दक्षिण में पहुँच गए और केन्द्रीय शासन कमजोर प्रशासनिक क्षमता वाले दूसरी श्रेणी के अधिकारियों के पास आ गया। जिससे प्रशासन में पक्षपात, भ्रष्टाचार एवं गुठबन्दी तेजी से बढ़ने लगी। दक्षिण के सन्दर्भ में यह जानने योग्य है कि वहाँ मुख्यतरू तीन शक्तियां मराठा, बीजापुर और गोलकुण्डा परस्पर संघर्षरत रहने के कारण न तो मुगलों से लड़ने का साहस जुटा पा रही थी और न ही इसके लिए उन्हें समय मिल पा रहा था। फलतः दक्षिण में एक ऐसा शक्ति सन्तुलन बना हुआ था जो मुगलों के लिए लाभकारी था। दुर्भाग्य से औरंगजेब इसे न समझ सका। उसने बीजापुर और गोलकुण्डा को इसलिए नष्ट कर दिया क्योंकि वे शिया राज्य थे, लेकिन उनके समाप्त होते ही अब मुगलों की सीधी टक्कर मराठो से होने लगी। नवोदित मराठो को नष्ट एवं नियंत्रित करने के लिए उसने सब कुछ लुटा दिया। दक्षिण के लम्बे युद्धों के कारण मुगल अर्थ व्यवस्था चरमरा गई।

3.6.1.3 औरंगजेब द्वारा कर वृद्धि

लड़खड़ाती अर्थव्यवस्था को सुधारने के लिए औरंगजब ने बिना उचित परामर्श के भू-राजस्व संग्रहण के लिए ठेकेदारी प्रथा प्रारम्भ कर किसानों से लगान वसूल करने का नया नियम बनाया। फलस्वरूप किसानों की दशा बिगड़ने लगी और ठेकेदार मनमानी दर से भू-लगान वसूल करने लगे। तात्कालिक परिस्थितियों में साधारण कर वसूली भी बड़ी कठिनाई से हो रही थी और जब कर वृद्धि कर दी गई तो सम्पूर्ण साम्राज्य में असंतोष और विद्रोह का वातावरण बनने लगा। स्वयं औरंगजेब ऐसी स्थिति देखकर कहा करता था, उसकी मृत्यु के बाद कैसा प्रलय आएगा ।

3.6.1.4 औरंगजेब की दोषपूर्ण प्रशासनिक व्यवस्था

औरंगजेब ने एकतन्त्रीय, केन्द्रीकृत प्रशासनिक व्यवस्था स्थापित करने का प्रयास किया जो सम्राट की शक्ति एवं योग्यता पर एक मात्र निर्भर रहती थी। बढ़ती हुई आयु, घटती हुई शारीरिक शक्ति औरंगजेब के प्रशासनिक कार्यों से मुक्ति की कामना कर रही थी। लेकिन वह अपने शंकालु स्वाभाव के कारण ज्यादा प्रशासनिक कार्य स्वयं करना चाहता था। इसके अतिरिक्त उसके विचारों में जो अति ईमानदारी एवं धार्मिक पक्षपात का रंग चढ़ा हुआ था, उससे वह निर्णय सदा ही समसामाईक ढ़ंग से नहीं ले पाता था। भ्रष्टाचार ने साम्राज्य को दुर्बल बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। जिसके लिए उसकी प्रशासनिक व्यवस्था ही उत्तरदाई थी। मासिर-ए-आलमगीरी में हमें ऐसे अनेक उदाहरण मिलते हैं, जिनसे औरंगजेब की प्रशासनिक व्यवस्था में प्रक्रियागत दोष एवं भ्रष्टाचार स्पष्ट दिखाई पड़ता है।

3.6.1.5 औरंगजेब का शंकालु स्वभाव एवं अन्य त्रुटियाँ

औरंगजेब स्वभाव से अत्याधिक शंकालु था। अपनी इस प्रवृत्ति के कारण वह अपने पुत्रों को न सिर्फ प्रशासन से दूर रखता था, अपितु उनके पीछे कभी-कभी गुप्तचर भी लगा देता था। फलतरू उसके पुत्र प्रतिशोधवश उसके आदेशों व नीतियों का विरोध करने को तत्पर रहते थे। शाहजादा अकबर इस प्रवृत्ति से परेशान होकर राजपूतों से जा

टिप्पणी

मिला और उसके विरूद्ध विद्रोह पर उतारू था। इतना ही नहीं औरंगजेब अपने मंत्रियों, अधिकारियों व सेनानायकों को भी सन्देह की दृष्टि से देखता था, तथापि ज्यादा से ज्यादा कार्य अपने हाथ में रखता था, फलतः अधिकारी मात्र सहयोगी अथवा क्लर्क बनकर रह गए। उनमें स्वतन्त्र राज्य हित में निर्णय लेने की क्षमता का विकास नहीं हो सका।

औरंगजेब में बुद्धिमत्ता एवं विद्वत्ता के साथ-साथ चालाकी और मक्कारी भी कूट-कूट कर भरी हुई थी। वह अपनी सफलता के लिए तुच्छ से तुच्छ साधन अपना सकता था। षड़यन्त्र और चालाकी से कार्य करने में वह पारंगत था। जिससे उसके प्रति अधिकारियों एवं समाज में सम्मान का भाव न था। उसने शियाओं, दाऊदी बोहरों पर खूब अत्याचार किए और उनकी परम्पराओं को नष्ट किया। कला एवं संस्कृति के प्रति उसके नकारात्मक दृष्टिकोण ने उसकी छवि को सामान्य जनों में और धूमिल किया।

अपनी प्रगति जाँचिए

21. शिवाजी इस देवी के परमभक्त थे।
    (क) माँ भवानी (ख) माँ दुर्गा
    (ग) माँ काली (घ) माँ चंडी
22. औरंगजेब कट्टर धर्मांध शासक था।
    (क) सुन्नी इस्लाम का (ख) शिया
    (ग) मोगल (घ) सिख
23. औरंगजेब ने बीजापूर और गोलकुण्डा को इसलिए नष्ट कर दिया की वे–
    (क) सुन्नी राज्य थे (ख) शिया राज्य थे
    (ग) मुस्लिम (घ) इस्लाम
24. औरंगजेब का स्वाभाव अत्याधिक?
    (क) मृदुल (ख) शंकालु
    (ग) दयालु (घ) कठोर

3.6.2 मुगल साम्राज्य के पतन के अन्य कारण

मुगल साम्राज्य के पतन के अन्य कारणों में मुगलों का केन्द्रीकृत स्वेच्छाचारी राजतन्त्र, उत्तर-मुगल कालीन सम्राटों की दुर्बलताएं, अमीरो (अशराफ वर्ग) का नैतिक पतन, षड़यन्त्र और दलबन्दी के साथ-साथ दोषपूर्ण सैनिक प्रणाली, क्षीण अर्थव्यवस्था और उत्तराधिकार के नियम का न होना बताया जा सकता है। इसके साथ-साथ मराठों के उत्थान, नादिरशाह के आक्रमण, यूरोपियों का आगमन और सूमेदारों के विद्रोह को नजरअन्दाज नहीं किया जा सकता है।

टिप्पणी

3.7 नादिरशाह का आक्रमण एवं उनका प्रभाव

नादिर कुली बेग एक तुर्क योद्धा था, जिसका जन्म 1688 ई. में खुरासान में हुआ था। यह मार्च 1736 ई. में ईरान के सिंहासन पर बैठा और 'शाह' की पदवी धारण की। इस प्रकार इसे नादिरशाह कहने लगे। इसके बाद उसने कन्धार के शासक हुसैन सुल्तान को पराजित कर 25 मार्च 1738 ई. को कन्धार पर कब्जा कर लिया। कन्धार काबुल के लिए प्रवेश द्वार था, जहाँ से भारत की ओर आया जा सकता था।

''नादिरशाह''

अफगान बागियों को शरण न देने की नादिरशाद की बार-बार की गई प्रार्थना की मुगल बादशाह द्वारा तथाकथित उपेक्षा हिन्दुस्तान पर आक्रमण का तत्काल बहाना बन गई। हिन्दुस्तानी अभियान के लिए कन्धार का प्रयोग उसने एक महत्वपूर्ण पड़ाव के रूप में किया। गजनी पहुँचकर उसने काबुल पर चढ़ाई की और अन्त में जून 1738 ई. में अधिकार कर लिया। उसने अपने राजदूत सहित काबुल के कुछ संभ्रान्त लोगों को यह कहकर भेजा कि उसका एकमात्र लक्ष्य बागी अफगानों को सजा देना है, प्रदेश जीतने का कोई इरादा नहीं रखता। परन्तु जलालाबाद पहुँचने पर एक अफगान सरदार ने ईरानी राजदूत की हत्या कर दी। इस समाचार के बाद क्रोध में नादिर ने जलालाबाद में नरसंहार का आदेश दिया। काबुल का पूर्व सूबेदार नासिर खाँ उसकी प्रगति को रोकने की तैयारी कर ही रहा था कि नादिरशाह ने 7 नवम्बर 1738 ई. को उस पर अचानक आक्रमण कर उसे बन्दी बना लिया। आतंकित होकर पेशावर के लोगों ने नगर के द्वार खोल दिए, जहाँ से वह लूटमार करता हुआ लाहौर पहुँचा। अपनी सैनिक कमजोरी के चलते लाहौर के सूबेदार जकरिया खाँ ने 14 जनवरी 1739 ई. को 20 लाख रूपया तथा अन्य उपहार नादिरशाह को भेंट किए। तब नादिरशाह ने उसे लाहौर का सूबेदार बने रहने की अनुमति दी और उसके पुत्र हयातुल्ला खाँ को ईरानी सेना में पांच सौ का मनसब दिया। इसके साथ ही नासिर खाँ को क्षमादान देकर काबुल और पेशावर की सूबेदारी पुनः प्रदान की।

16 फरवरी 1739 को नादिरशाह सरहिन्द पहुँचा और वहाँ से अम्बाला की ओर, फिर अजीमाबाद और करनाल की ओर कूच किया। 25 फरवरी 1739 ई. को करनाल के रणक्षेत्र में मुगल सेना और ईरानी सेना के मध्य युद्ध हुआ। मुगल सेना पराजित हुई और सआदत खाँ अनेक मुगल सैनिकों सहित बन्दी बना लिया गया तथा खान-ए-दौरा घायल हो गया। खान-ए-दौरा से व्यक्तिगत मतभेद के कारण निजामुल्मुल्क ने उसके साथ सहयोग करने में उदासीनता दिखाई। नादिरशाह ने सआदत खाँ को अपने सामने बुलाया और उससे कहा कि वह मुगल बादशाह से युद्ध का हरजाना लेकर स्वदेश लौटना चाहता है। इसके लिए उसने निजामुल्मुल्क से बात करने की बात की नादिरशाह और निजामुल्मुल्क के बीच संधि वार्ता से निश्चित हुआ कि मुगल बादशाह द्वारा नादिरशाह को 50 लाख रूपया युद्ध के हरजाने के रूप में दिया जायेगा जिससे वह दिल्ली न जाकर ईरान लौट जाएगा। 50 लाख में से 20 लाख तत्काल दिए जाने थे– 10 लाख लाहौर में, 10 लाख अटक में और शेष काबुल में। दूसरे ही दिन बादशाह मोहम्मदशाह, निजामुल्मुल्क तथा वजीर कमरूद्दीन खाँ के साथ नादिरशाह के शिविर में गया।

जब खान-ए-दौरा की मृत्यु का पता बादशाह को चला तो, उसने निजामुल्मुल्क को अमीर-उल-उमरा का खिताब दे दिया, जिससे सआदत खाँ असंतुष्ट हो गया और उसने नादिरशाह को सलाह दी कि वह दिल्ली के लिए प्रस्थान करे जहाँ से उसे लगभग 50 करोड़ की सम्पत्ति प्राप्त होगी। नादिरशाह ने संधि को ठुकराते हुए निजामुल्मुल्क को शिविर में वार्ता के लिए बुलाया। नादिरशाह ने 20,000 घुड़सवारों के अतिरिक्त 20 करोड़ रूपये देने के लिए कहा, जिसके लिए उसने असमर्थता प्रकट की। निजामुल्मुल्क और उसके सैनिकों को बन्दी बना लिया गया। इसके बाद उसने मोहम्मदशाह को बुलाया और उसे भी बन्दी बना लिया। इसके बाद ही नादिरशाह ने दिल्ली की ओर प्रस्थान किया और 20 मार्च 1739 को नादिरशाह ने दिल्ली में प्रवेश किया। 21 मार्च को दिल्ली की सभी मस्जिदों में नादिरशाह के नाम पर खुतबा पढ़ा गया और उसके नाम के सिक्के भी ढाले गए। इस प्रकार यह एक तरह का राजत्व में परिवर्तन था। उसने सआदत खाँ से शीघ्र ही पूरा धन देने को कहा। धन न दे पाने और अपमानित होने से सआदत खाँ ने विष खाकर आत्म हत्या कर ली। शहर में नादिरशाह की हत्या अथवा उसे कब्जे में कर लेने की अफवाहें फैलाई गई। जिससे शहर में उपद्रव हुए और इरानी सैनिकों पर हमले किए गए तथा लगभग चार हजार सैनिक मरे या घायल हुए। नादिरशाह इससे अत्यन्त क्रोधित हुआ और उसने कत्लेआम की आज्ञा दे दी। भीषण रक्तपात हुआ, धन लूटा गया, घरों को जला दिया गया। यह नरसंहार लगभग पांच घण्टे चला। नादिरशाह दिल्ली में दो मास (57 दिन) ठहरा । फ्रेजर का कहना है कि वह 70 करोड़ का माल भारत से लूट ले गया जिसमें तख्त-ए-ताउस और कोहिनूर हीरा भी था। सम्राट ने उसे सिन्धु पार का क्षेत्र भी देना स्वीकार किया। नादिरशाह ने 16 मई 1739 को दिल्ली से कूच किया। मार्ग में उसे पंजाब के जाटों, सिक्खों ने बहुत परेशान किया और कुछ सामान भी लूट लिया। वो पेशावर तथा काबुल होता हुआ घर वापिस पहुँचा।

हिन्दुस्तान पर नादिरशाह के आक्रमण के लिए उत्तरदायी घटकों के विषय में इतिहासकारों में मतभेद है। कुछ बादशाह मोहम्मदशाह की ओर से कूटनीतिक शिष्टाचार के मानदण्डों का पालन न करना मानते हैं। कुछ मुगल बादशाह द्वारा अपने वायदों के बावजूद अफगानों को हिन्दुस्तानी सीमा से बाहर न कर पाने को मानते हैं। कुछ सआदत खाँ और निजामुल्मुल्क को उत्तरदाई मानते हैं।

आक्रमण का प्रभाव

नादिरशाह का आक्रमण मुगल साम्राज्य के लिए एक बड़ा आघात था। यह एक भयानक प्रलय जैसा था। इसने आर्थिक हानि के साथ ही मुगल साम्राज्य को पतन की ओर तेजी से अग्रसर किया। नादिरशाह के हिन्दुतान पर इस आक्रमण के प्रभाव निम्नलिखित है–

1. **मुगल साम्राज्य की प्रतिष्ठा को आघात**– आक्रमण से मुगल साम्राज्य की प्रतिष्ठा को बहुत आघात लगा। मोहम्मद शाह को अपनी प्रजा के सामने बन्दी रूप में रहना पड़ा। अमीर वर्ग मनमानी करने लगा। स्थानीय शासक अपने आप को स्वतन्त्र मानने लगे। मुगल सम्राट पूरी तरह से शक्तिहीन हो गया।
2. **आर्थिक हानि**– नादिरशाह लगभग 30 करोड़ नकद, सोना-चांदी, हीरे, जवाहरात, हाथी, घोड़े, ऊँट, राज-मिस्त्री, लोहार-बढ़ई, तख्त-ए-ताउस, कोहिनूर हीरा के साथ अपरिमित धन अपने साथ ले गया था, जिससे हिन्दुस्तान को भीषण हानि हुई।
3. **जोरतलब जागीरों का बढ़ता प्रभाव**– आर्थिक स्थिति खराब होने से जागीरदार अब दूसरी जागीरों पर अपना कब्जा करने लगे। शक्तिशाली स्थानीय लोग भी जागीरों पर कब्जा करने लगे। जबरदस्ती करों का संग्रह होने लगा। जागीरों पर आस-पास का माहौल पूर्ण रूप से बिगड़ता गया।
4. **सामाजिक-सांस्कृतिक अराजकता**– औरंगजेब के काल से चल रहा सांस्कृतिक पतन नादिरशाह के आक्रमण से और तीव्र हो गया। हत्याऐं, लूटपाट, अराजकता जैसी बातें आम हो गई। क्योंकि इनके खिलाफ कारवाई करने वाले अमीरों अथवा मुगल अधिकारियों का घोर चारित्रका पतन हो चुका था। वे अधिक से अधिक धन एकत्रित कर लेना चाहते थे। दुर्भाग्य से इसी समय मुगल साम्राज्य में मराठों की चौथ प्रणाली ने अराजकता में और वृद्धि की।
5. **असुरक्षित पश्चिमोत्तर सीमा**– सिन्धु और पंजाब क्षेत्र अलग हो जाने से उत्तर-पश्चिम सीमा असुरक्षित हो गई तथापि ऐसे नाजुक समय में भी मुगल अमीरों में एकता स्थापित नहीं रही। उनकी गुटबन्दी के रहते मुगल साम्राज्य अपनी कोई भी पश्चिमोत्तर सीमा नीति नहीं बना सका।
6. **मराठों का उत्कर्ष**– नादिरशाह के आक्रमण से कमजोर मुगल अमीर यह अनुभव करने लगे कि मुगल साम्राज्य को सुरक्षित रखने के लिए मराठों से सहयोग लेना आवश्यक है जबकि दूसरी ओर मराठों की महात्वाकांक्षाओं में तीव्र वृद्धि हुई और उन्होंने राजस्थान मालवा तथा बुन्देलखण्ड में अपनी स्थिति को मजबूत कर लिया। क्योंकि अब उन्हें मुगलों के विरोध का भय बिल्कुल भी नहीं रहा और वे अब बंगाल, बिहार पर चौथ वसूलने के लिए आक्रमण करने लगे। इससे स्पष्ट है कि जहाँ एक ओर नादिरशाह के आक्रमण से मुगल साम्राज्य जर्जर होकर अपनी प्रतिष्ठा खो रहा था, वहीं दूसरी ओर मराठों के उत्कर्ष का मार्ग प्रशस्त हो रहा था।
7. **राजनीति में यूरोपीय व्यापारियों का प्रवेश**– नादिरशाह के आक्रमण से मुगल साम्राज्य की शक्तिहीनता को यूरोपीय व्यापारी पहचानने लगे थे। अतः वे असुरक्षित होने का बहाना करके अपनी सुरक्षा में रखे सैनिक दस्तों में वृद्धि

करने लगे थे और अपनी फैक्टरियों एवं गोदामों की भी किले बन्दी करने लगे। कालान्तर में यही किले फैक्टिरियाँ और सैनिक दस्ते उनकी राजनैतिक शक्ति के विस्तार के सूत्र बने।

8. **युद्ध कला पर प्रभाव**– नादिरशाह ने अपने आक्रमण में नई सामरिक तकनीकों का प्रयोग किया था। जिसके तहत उसने रहकला, जजायत, द्रुतगति से चलने वाली बन्दूकें और हल्की तोपों का प्रयोग किया था। इस परिवर्तन से नादिरशाह विजयी हुआ था फलतः रूहेलों ने युद्ध कला के इन नए परिवर्तनों की ओर ध्यान दिया और मराठो से लड़ाई करते समय इनका प्रयोग किया।

अपनी प्रगति जाँचिए

25. नादिरशाह ने दिल्ली में प्रवेश किया–
    - (क) 20 मार्च 1739
    - (ख) 25 मार्च 1739
    - (ग) 15 जून 1734
    - (घ) 22 में 1739
26. अपनी सैनिक कमजोरी के चलते इसने नादिरशाह को 20 लाख रुपया व अन्य उपहार नादिशाह को भेट किए।
    - (क) हयातुसध खाँ
    - (ख) सूबेदार जकरिया खाँ
    - (ग) असीमार खाँ
    - (घ) नासिर खाँ
27. नादिरशाह का जन्म कब और कहाँ हुआ?
    - (क) 1678 ई. बलूचिस्तान
    - (ख) 1688 ई. खुरासान
    - (ग) 1698 ई. काबुल
    - (घ) 1702 ई. कन्दहार

3.8 यूरोपियनों का आगमन

पन्द्रहवी शताब्दी के अन्त में हुई भौगोलिक खोजों ने भारत और यूरोप के व्यापारिक सम्बन्धों पर सकारात्मक प्रभाव डाला। सन् 1487 ई. में पुर्तगाली नाविक वार्थोलोमियो डियाज ने उत्तमासा अन्तरीप (अफ्रीका का दक्षिणी छोर) की खोज की। पुर्तगाल के ही वास्कोडिगामा ने 17 मई 1498 ई. को कालीकट बन्दरगाह पहुँचकर भारत के समुद्री मार्ग की खोज की। इधर मुगलों ने नाविक शक्ति के महत्व को नहीं समझा था तथापि उन्होंने नव सेना का समुचित गठन भी नहीं किया था। फलतः समुद्रों पर यूरोप वासियों का आधिपत्य बना रहा और जरूरत पड़ने पर मुगल शासन उनकी सहायता लेता था। कभी-कभी अत्यधिक आवश्यकता के समय में उनकी अनुचित माँगों को भी स्वीकार कर लेते थे। यूरोपवासी मूलरूप से व्यापार करने भारत आए थे, लेकिन मुगल साम्राज्य के कमजोर होने पर उनमें राजनीतिक इच्छा शक्ति का भी बीज पड़ गया। फलतः यूरोपीयों ने स्थानीय प्रशासकों के विवादों में भाग लेकर अपनी शक्ति को मजबूत करना प्रारम्भ कर दिया। ब्रिटेन की 'ईस्ट इण्डिया कम्पनी' ने प्लासी और बक्सर में जीत हासिल कर भारत में ब्रिटिश शासन की स्थापना की नींव रखी। उनकी सेना प्रशिक्षित तथा तोपखाना अत्यन्त प्रभावी था, जबकि मुगलों ने सेना के प्रशिक्षण एवं तोपखाने के विकास के लिए प्रयास नहीं किया। यहाँ सर्वप्रथम 1498 ई. में पुर्तगाली आए। फिर डच, अंग्रेज डेनिस,

फ्रांसीसी, स्वीडन क्रमशः व्यापारिक कम्पनियाँ बनाकर आते रहे जिनको निम्न सारणी में दर्शाया जा रहा है–

टिप्पणी

स्थापना वर्ष	देश	भारत आगमन वर्ष	कम्पनी
1498	पुर्तगाल	1503	पुर्तगाली ईस्ट इण्डिया कम्पनी
1602	डच (हालैण्ड)	1605	वेरिंगदे ओस्त इण्डिशे कम्पनी
1599	ब्रिटिश	1608	ईस्ट इण्डिया कम्पनी
1616	डेनमार्क	1620	डेन ईस्ट इण्डिया कम्पनी
1664	फ्रांस	1667-68	कम्पने देस इण्डसे ओरियंतलेस
1731	स्वीडन	1731	ईस्ट इण्डिया कम्पनी

पुर्तगाली

समुद्री मार्ग से भारत आने वाला प्रथम पुर्तगाली व यूरोपीय यात्री वास्कोडिगामा था, जो अब्दुल मनीक नामक गुजराती पथ-प्रदर्शक की सहायता से कालीकट आया, कालीकट के शासक 'जमोरिन' ने उसका स्वागत किया। भारत से जाते समय वास्कोडिगामा जहाज में काली मिर्च भरकर ले गया जिस पर उसे 60 गुना फायदा हुआ। इससे अन्य पुर्तगाली व्यापारियों को प्रोत्साहन मिला। दूसरा पुर्तगाली पेड्रो अल्वरेज केब्रल मार्च 1500 ई. में भारत आया। ''फ्रांसिको डि अलमिड़ा (1505-1509) भारत में पहला पुर्तगाली गवर्नर था। अलफांसो डि अलबुकर्क (1509-1515), भारत में वास्तविक नीवं डालने वाला गर्वनर था। अलबुकर्क ने 1510 ई. में बीजापुर के शासक युसुफ आदिलशाह से गोवा छीन लिया था। दूसरा महत्वपूर्ण पुर्तगाली गवर्नर 'निनो द कुन्हा' (1529-38) ने मुगल सम्राट हुमायूं और गुजरात के बहादुरशाह के बीच संघर्ष का लाभ उठाकर 1534 ई. में श्बेसीनय 1537 ई. दीव तथा 1538 ई. में दमन पर अधिकार कर लिया। धीरे-धीरे पुर्तगालियों ने चाउल, सालसेट, बम्बई, बेसिन, दमन, सेंट टॉमस, मद्रास, हुगली पर भी अधिकार कर लिया। अकबर ने उन्हें हुगली और शाहजहां ने उन्हें बंदेल में कारखाना स्थापित करने की अनुमति दी। 1580 ई. में पुर्तगाल पर स्पेन का कब्जा हो जाने के बाद भारत में पुर्तगाली शक्ति का तेजी से न्हास हुआ। 1661 ई. में तत्कालीन ब्रिटिश सम्राट 'चार्ल्स द्वितीय' ने पुर्तगाली राजकुमारी कैथरीन से विवाह करने पर पुर्तगालियों ने उसे बम्बई का द्वीप दहेज में दिया।

टिप्पणी

वास्कोडिगामा

डच

सन् 1583 ई. में डच यात्री 'जॉन हूगेवा लिंकोटन' गोवा आया उसने पूर्वी जगत की समुद्री यात्राओं पर एक पुस्तक लिखी। सन् 1602 ई. में 'डच ईस्ट इण्डिया कम्पनी' की स्थापना की गई। इसे हालैण्ड की संसद ने 21 वर्षों तक भारत सहित पूर्व के देशों के साथ व्यापार करने का अधिकार दिया। इसमें युद्ध व सन्धि करने, किले बनाने और भारतीय प्रदेशों को जीतने का अधिकार भी था। भारत में डचों ने मछलीपत्तनम में सन् 1605 ई. में प्रथम फैक्ट्री की स्थापना की। इनके फैक्ट्रियों के प्रमुख को 'फेक्टर' कहा जाता था। डचों द्वारा भारत में स्थापित अन्य महत्वपूर्ण कोठिया पुलीकट (1610 ई.) सूरत (1616 ई.), विमलीपत्तनम (1641 ई.), करिकाल (1645 ई.) चिनसुरा (1653 ई.) नेगपत्तनम, कासिम बाजार, पटना, बालासोर (1658 ई.), कोचीन (1663 ई.) थी। ये लोग पहले मसालों का व्यापार करते थे और बाद में भारत से नील, शोरा, सूती वस्त्र, रेशम, शीशा व अफीम बाहर भेजते थे। अंग्रेजों ने नवम्बर 1759 ई. में हुगली के निकट बेदारां के युद्ध में डचों को अन्तिम रूप से हरा दिया। भारत में डचों की व्यापारिक पराजय के कारणों में उनकी कमजोर समुद्री शक्ति, कम्पनी के भ्रष्ट व अयोग्य अधिकारी व सरकार का सीधे नियन्त्रण माना जा सकता है।

ब्रिटिश

भारत में यूरोपीय व्यापारिक कम्पनियों में ब्रिटिश सर्वाधिक सफल रहे। 1599 ई. में अंग्रेज ईस्ट इण्डिया कम्पनी अथवा ''द गवर्नर एण्ड कम्पनी ऑफ मर्चेन्ट्स ऑफ ट्रेडिंग इन टू द ईस्ट इण्डीज" की स्थापना हुई। जिसे 1600 ई. में ब्रिटेन की महारानी एलिजाबेज प्रथम ने पूर्व के साथ व्यापार के लिए पन्द्रह वर्षों का अधिकार पत्र दिया जिसे बाद में जेम्स प्रथम ने अनिश्चित काल के लिए बढ़ाया। सन् 1608 ई. में कैप्टन हाकिंस सूरत पहुंचा। सूरत में ही अंग्रेजों ने 1608 ई. में पहली फैक्ट्री स्थापित की। दक्षिण में इनका पहला कारखाना मछलीपत्तनम और पेटापुली में 1611 ई. में स्थापित किया गया। भारत में कम्पनी का साम्राज्य स्थापित करने में जॉब चारनाक से लेकर क्लाईव तक का योगदान रहा है। सन् 1698 ई. में एक अन्य प्रतिद्विन्दी कम्पनी **'इंलिश ट्रेडिंग कम्पनी इन द ईस्ट'** बनी जिसका प्रतिनिधि विलियम नोरिस औरंगजेब के दरबार में पहुँचा। सन् 1702 ई. में दोनों कम्पनियों को विलय करने का निर्णय लिया गया व 1708-09 में संयुक्त कम्पनी का नाम 'द यूनाईटेड कम्पनी ऑफ मर्चेन्ट्स ऑफ इंग्लैण्ड ट्रेडिंग टू द ईस्ट इण्डीज' रखा गया। अंग्रेजों की इस संयुक्त कम्पनी ने ही आधुनिक भारत के इतिहास की तस्वीर बनाई।

डेनमार्क (डेनिस)

डेनमार्क की ईस्ट इण्डिया कम्पनी की स्थापना 1616 ई. मे हुई तथा 1620 ई. में इस कम्पनी ने तमिलनाडू के बैंकोबार में पहली फैक्ट्री स्थापित की। बंगाल कोरामपुर डेनमार्क की कम्पनी का प्रमुख केन्द्र था। सन् 1845 ई. में डेनमार्क ने अपनी वाणिज्यक कम्पनी को अंग्रेजों को बेच दिया।

फ्रांसीसी

यूरोपीय कम्पनियों में फ्रांस की कम्पनी सन् 1664 ई. में लुई चौहदवे के मंत्री 'कोलवर्ट' ने 'कम्पने देस इनडसे ओरियंतलेस' की स्थापना की। यह सरकारी उपक्रम की भाँति फ्रांस सरकार के लिए कार्य करती थी। 1668 ई. में फ्रैंसिस कैरो ने पहले व्यापारिक कारखाने की स्थापना सूरत में ही की। इस प्रकार यह भारत में विस्तार करती रही तथा 1701 ई. में पाण्डुचेरी पूर्व में इसने अपना मुख्यालय बनाया, एवं फ्रांसिस मार्टिन कम्पनी के महानिदेशक बने। कम्पनी ने प्रथम कर्नाटक युद्ध (1746-48), द्वितीय कर्नाटक युद्ध (1749-54) और तृतीय कर्नाटक युद्ध (1757-63) में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन किया। अंग्रेजो और फ्रांसीसियों के बीच कड़ा व्यापारिक एवं राजनैतिक संघर्ष चला जिसके मोहरे भारतीय राजा व रियासतें बनाए जाते थे। दक्षिण में इस कम्पनी ने अपना अच्छा प्रभाव बनाया था, किन्तु मैसूर में टीपू सुल्तान का पतन और 1760 ई. में वाण्डीवाश की लड़ाई में फ्रांसीसियों के पराजित हो जाने से इनकी भारत में राजनैतिक महात्वाकांक्षा सदैव के लिए समाप्त हो गई। इस प्रकार सम्पूर्ण यूरोपीय कम्पनियों में ब्रिटिश देश की राजनैतिक सत्ता का समीकरण बनाने में सफल रहे।

टिप्पणी

अपनी प्रगति जाँचिए

28. समुद्री मार्ग से भारत आनेवाला प्रथम युरोपीय यात्री।

(क) असबुक (ख) अलमिग स.

(ग) वास्कोडिगामा (घ) पेड्रो

29. भारत में युरोपीय व्यापार के लिए ब्रिटीश कम्पनी की स्थापना की गई।

(क) अंग्रेज ईस्ट इण्डिया कम्पनी (ख) द गवर्नर एण्ड कम्पनी

(ग) इंग्लिश ट्रेडिंग कम्पनी (घ) डेनमार्क कम्पनी

30. बेंदारा का युद्ध कब और किसके बीच हुआ?

(क) पुर्तगाली और फ्रांसीसी 1659 ई. (ख) पुर्तगाली और डच 1659 ई.

(ग) फ्रांसीसी और अंग्रेजी 1759 ई. (घ) अंग्रेजी और डच 1759 ई.

3.9 अपनी प्रगति जाँचिए प्रश्नों के उत्तर

1.	(ग)	11.	(ग)	21.	(क)
2.	(क)	12.	(घ)	22.	(क)
3.	(ख)	13.	(घ)	23.	(ख)
4.	(क)	14.	(ग)	24.	(घ)
5.	(घ)	15.	(ख)	25.	(क)
6.	(क)	16.	(घ)	26.	(घ)
7.	(ख)	17.	(ख)	27.	(ख)
8.	(ख)	18.	(घ)	28.	(ग)
9.	(क)	19.	(ख)	29.	(क)
10.	(ख)	20.	(क)	30.	(ग)

3.10 सारांश

इस इकाई में आपने यह जाना कि मुगल साम्राज्य के सुदृढ़ीकरण एवं विस्तार का महत्वपूर्ण कार्य अकबर ने किया। उसे न सिर्फ मुगल साम्राज्य के स्थायित्व का श्रेय प्राप्त है, बल्कि उसने देश को एकता के सूत्र में बांधने के लिए सौहार्दपूर्ण सांस्कृतिक नीतियों का विकास किया। जिनसे देश में एक सांझा संस्कृति और राष्ट्रीयता की भावना बलवती हुई। मुगल राजपूत सम्बन्धों की दृष्टि से अकबर से भी अधिक जहांगीर को सफल माना जा सकता है। उसने महाराणा प्रताप के पुत्र अमर सिंह से सन्धि कर सांस्कृतिक सद्भाव के विकास में अक्षुण्य योगदान दिया, यद्यपि सिक्खों के सन्दर्भ में वह इतना सफल नहीं रहा। शाहजहां ने भी अकबर द्वारा स्थापित सद्भाव का अनुसरण करने का प्रयास किया, किन्तु वह सिक्खों के सन्दर्भ में बहुत सफल न रहा। औरंगजेब

की असफल दक्षिण नीति ने मराठों के उत्कर्ष एवं मुगलों के पतन का मार्ग प्रशस्त किया। मुगलों के पतन के लिए औरंगजेब को दोषमुक्त नहीं किया जा सकता। उसके शंकालु स्वभाव एवं संकुचित नीतियों ने मुगलों के पतन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। नादिरशाह के आक्रमण ने मुगलों के पतन की प्रक्रिया को और अधिक त्वरित कर दिया। उसके आक्रमण के प्रभाव का एक बड़ा दुष्परिणाम यूरोपीय कम्पनियों की राजनैतिक महात्वाकांक्षा के जन्म लेने में दिखाई पड़ता है। यूरोपीय कम्पनियों के आगमन से आधुनिक भारत के इतिहास का नया युग प्रारम्भ हुआ।

3.11 मुख्य शब्दावली

- मुगल साम्रज्य का सुदृढ़ीकरण
- मुगल राजपूत सम्बन्ध
- मुगल सिक्ख सम्बन्ध
- मराठों का उत्कर्ष
- मुगल साम्राज्य का पतन
- नादिरशाह का आक्रमण
- यूरोपियनों का आगमन

3.12 स्व-मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. अकबर की राजपूत नीति के परिणामों का वर्णन कीजिए।
2. अकबर द्वारा धर्म सहिस्बुता की नीति अपनाने के कारणों का वर्णन कीजिए।
3. 'दीन ए इलाही' पर एक संक्षिप्त टिप्पठी लिखिए।
4. एक राष्ट्रीय सम्राट के रूप में अकबर का मूल्यांकन कीजिए।
5. जहांगीर के बारह अध्यादेशों का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।
6. औरंगजेब की दक्षिण नीति के परिणामों का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।
7. औरंगजेब की धार्मिक नीति के परिणमों संक्षिप्त का वर्णन कीजिए।
8. मुगलों के पालन के तीन प्रमुख कारण बताइए।
9. नादिरशाह से आक्रमण के कारणों पर प्रकाश डालिए।
10. शिवाजी को जीवन परिचय संक्षिप्त में लिखिए।
11. शिवाजी कह प्रांतीय शासन व्यवस्था का वर्णन कीजिए।
12. मुगल साम्राज्य के पालन के कारण लिखिए।
13. भारत में पुर्तगाली शक्ति का उदय किस प्रकार हुआ?
14. भारत में ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने किस प्रकार विकास किया।

टिप्पणी

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. अकबर एवं राणाप्रताप के सम्बन्धों का वर्णन कीजिए।
2. मुगलों के पतन के कारण बताईए।
3. शिवाजी की विजयों पर एक निबन्ध लिखिए।
3. पुरन्दर की सन्धि पर संक्षिप्त टिप्पणी कीजिए।

3.13 सहायक पाठ्य सामग्री

1. श्रीवास्तव, आशीर्वादी लाल, मुगलकालीन भारत (1526.1803 ई.), शिव लाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी, आगरा।
2. अहमद, लईक पुस्तक, मुगलकालीन भारत (1526-1740 ई.). प्रयाग भवन, इलाहाबाद, 1999।
3. वर्मा, हरिश चन्द्र (सं.), मध्यकालीन भारत, भाग–2 (1540-1761 ई.) हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली वि.वि. दिल्ली, 2000।
4. गुप्ता, बी.एल. तथा पेमाराम, मध्यकालीन भारत का इतिहास, जयपुर पब्लिशिंग हाउस, जयपुर, 2007।
5. शर्मा, कालूराम तथा, मध्यकालीन भारत का इतिहास व्यास प्रकाश, (1206-1740 ई.) पंचशील प्रकाशन, जयपुर 2006।
6. अहमद, इमत्याज, मध्यकालीन भारत (8वीं से 18वीं शताब्दी) एक सर्वेक्षण नेशनल पब्लिकेशन, खजान्ची रोड़, पटना, 2007।
7. सिंह, ओम प्रकाश, मध्यकालीन भारत (750-1761 ई.) किताब महल इलाहाबाद, 1997 ई.।
8. वर्मा, एस.आर., मध्यकालीन भारत का इतिहास (1200-1761 ई.) एस.बी.पी.डी. पब्लिशिंग हाऊस, आगरा, 2011।
9. महाजन, विधाधर, मध्यकालीन भारत (1000-1761 ई. तक) एस. चन्द – कम्पनी, रामनगर, नई दिल्ली, 2004।
10. चन्द्र, सतीश, उत्तर मुगलकालीन भारत, नई दिल्ली, 1980।
11. मूसवी, शीरी, अकबर के जीवन की कुछ घटनाए, नेशनल बुक ट्रस्ट, दिल्ली, 2000।

इकाई 4 सल्तनतकालीन सामाजिक, धार्मिक एवं आर्थिक जीवन एवं प्रशासनिक व्यवस्था

संरचना

4.0 परिचय
4.1 उद्देश्य
4.2 सल्तनत कालीन सामाजिक जीवन
4.3 सल्तनत कालीन धार्मिक जीवन
4.4 भक्ति आन्दोलन
4.5 सूफी आन्दोलन
4.6 सल्तनत काल में आर्थिक जीवन, उद्योग-धंधे एवं कृषि
4.7 सल्तनत काल में प्रशासनिक व्यवस्था
4.8 अपनी प्रगति जाँचिए प्रश्नों के उत्तर
4.9 सारांश
4.10 मुख्य शब्दावली
4.11 स्व-मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
4.12 सहायक पाठ्य सामग्री

4.0 परिचय

1206 ई. से 1526 ई. के काल को सल्तनत काल के नाम से भारतीय इतिहास में जाना जाता है। सल्तनत काल के अंतर्गत पाँच प्रमुख वंशों ने शासन किया। दिल्ली सल्तनत (1206-1526 ई.) के पाँच प्रमुख राजवंश थे– **गुलाम वंश, खिलजी वंश, तुगलक वंश, सैय्यद वंश एवं लोदी वंश।**

मोहम्मद गौरी के एक गुलाम कुतुबद्दीन ऐबक (1206-1210 ई.) ने जिस दिल्ली सल्तनत की नींव डाली, उसे वास्तविक स्वरूप इल्तुतमिश (1210-1236 ई.) द्वारा दिया गया। बलबन (1265-1287 ई.) गुलाम वंश का अंतिम महत्वपूर्ण शासक था। 1290 ई. में खिलजी वंश की सत्ता स्थापित हुई। अलाउद्दीन खिलजी (1296-1316 ई) इस वंश का प्रमुख शासक था। 1320 ई. में तुगलक वंश की सत्ता स्थापित हुई। मुहम्मद बिन तुगलक (1325-1351 ई.) इस वंश का महत्वपूर्ण शासक था, जो अपनी अव्यवहारिक योजनाओं के लिए जाना जाता है। परन्तु उसके शासनकाल में दिल्ली सल्तनत की सीमाओं में सर्वाधिक बृद्धि हुई थी। 1414 से 1451 तक सैय्यद वंश का शासन रहा। उसके पश्चात् 1451 ई. में, लोदी वंश की सत्ता दिल्ली सल्तनत पर रही। इस वंश के अंतिम शासक इब्राहीम लोदी (1517-1526 ई.) को पानीपत के प्रथम युद्ध (1526 ई.) में परास्त कर बाबर ने भारत में मुगल वंश की स्थापना की।

सल्तनत काल का आरंभ भारतीय समाज में आमूल परिवर्तन लेकर आया। भारत में मुस्लिम वर्ग का आगमन हुआ। सल्तनत काल में हिन्दु तथा मुस्लिम दोनों वर्गों को एक साथ रहना पड़ा। यद्यपि इन दोनों वर्गों के सामाजिक एवं धार्मिक संस्कार एवं परम्पराएँ सर्वथा भिन्न थीं। परन्तु कालान्तर में धीरे-धीरे हिन्दू और मुस्लिम संस्कृति में समन्वय स्थापित हुआ और एक मिले-जुले सांस्कृतिक और सामाजिक जीवन का आरंभ हुआ। दोनों वर्गों और उनके जीवन में सहिष्णुता और सामंजस्य की भावना उत्पन्न हुई। सल्तनत काल में स्त्रियों की स्थिति में गिरावट आ गई थी। तत्कालीन समाज में अनेक कुप्रथाओं के कारण स्त्रियों की दशा अच्छी नहीं थी। उनकी स्वतन्त्रता पर प्रतिबंध लगाए गए थे। बाल विवाह, पर्दा प्रथा को बढ़ावा मिला। मुस्लिम समाज की तुलना में हिन्दु समाज में अपने सांस्कृतिक गुणों के कारण स्त्रियों की दशा श्रेष्ठ थी। धार्मिक जीवन में भी भक्ति आंदोलन व सूफी आन्दोलन के संतों ने हिन्दु-मुस्लिम एकता पर बल दिया। सल्तनतकालीन धार्मिक जीवन को प्रभावित करने में सूफी एवं भक्ति आंदोलन के संतों की प्रमुख भूमिका थी। हिन्दु व मुस्लिम दोनों धर्मों के विभिन्न सम्प्रदाय अस्तित्व में आए। सूफी दर्शन तथा भक्ति आंदोलन ने सामाजिक व धार्मिक सहिष्णुता व समन्वय का वातावरण निर्मित करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। सल्तनत कालीन आर्थिक जीवन उन्नत अवस्था में था। भारतीय कृषि, उद्योग एवं व्यापार भी विकसित अवस्था में थे। सल्तनत काल व्यापारिक समृद्धि का काल माना जाता है। जल एवं थल दोनों मार्गों ने व्यापार की उन्नति में यशेष्ठ योगदान दिया। सल्तनत काल में कृषि, व्यापार और व्यवसाय हिन्दु वर्ग के हाथों में ही रहे। सुल्तान अमीर, सरदार और पदाधिकारियों के पास प्रचुर धन उपलब्ध था। राज्य का धन इन उच्च वर्गो के व्यक्तियों तथा व्यापारियों के पास ही संग्रहीत होकर रह गया था। वे विलासी जीवन व्यतीत कर धन का दुरूपयोग करते थे। साधारण जनता के पास धन का अभाव था। निम्न वर्गो के मनुष्यों की आर्थिक दशा अत्यंत दयनीय थी। धन का वितरण असमान था।

दिल्ली सल्तनत में सुल्तानों ने एक नवीन प्रशासनिक व्यवस्था के अंतर्गत प्रशासन चलाया। सल्तनत काल में सुल्तान का पद, कभी सुल्तान के मनोनयन के द्वारा, कभी अमीरों के निर्वाचन के द्वारा, कभी शक्ति के द्वारा, कभी योग्यता के द्वारा प्राप्त किया गया। संपूर्ण सल्तनत काल में इस्लाम धर्म प्रधान राजतन्त्रात्मक व्यवस्था कायम रही। दिल्ली सल्तनत, एक धर्म आधारित राज्य था। इसमें बहुसंख्यक प्रजा, हिन्दू और प्रशासक मुसलमान थे। हिन्दुओं को कोई प्रशासनिक अधिकार व स्थान प्राप्त नहीं था।

4.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- सल्तनत काल के धार्मिक जीवन का स्वरूप कैसा था तथा भक्ति व सूफी आन्दोलनों का धार्मिक सद्भाव में क्या योगदान रहा।
- सल्तनत काल के आर्थिक जीवन के अंतर्गत उद्योग-धन्धों तथा कृषि व्यवस्था की क्या स्थिति थी।
- सल्तनत काल की प्रशासनिक व्यवस्था के अंतर्गत केन्द्रीय, प्रान्तीय तथा स्थानीय प्रशासन का स्वरूप कैसा था।

4.2 सल्तनत कालीन सामाजिक जीवन

सल्तनत कालीन समाज, मुस्लिम समाज तथा हिन्दु समाज में विभक्त हो गया था। संपूर्ण सल्तनत काल में मुसलमान, हिन्दुओं से पृथक ही रहे। सल्तनतकालीन समाज में विदेश से आये मुस्लिमों को सम्मानजनक स्थान प्राप्त था। यही वर्ग शासक वर्ग था। इस कारण मुस्लिम समाज सबसे अधिक प्रभावशाली और विशेषाधिकारों से परिपूर्ण था। मुस्लिम समाज में दो वर्ग सुन्नी और शिया विद्यमान थे। इन दोनों वर्गों में परस्पर वैमनस्य रहता था। सल्तनतकाल में मुस्लिमों को राज्य की ओर से अनेक विशेष अधिकार प्राप्त थे। मुस्लमानों में शेख, सैय्यद, पठान, उलेमा आदि वर्ग बन गए थे। उलेमा लोग अपनी विद्वता के लिए प्रसिद्ध थे तथा राजनीति में इनका उच्च स्थान प्राप्त था। सुल्तानों पर भी उनका असर रहता था। अलाउद्दीन खिलजी ने उलेमाओं को राजनीति में महत्व नहीं दिया था तथा मुहम्मद तुगलक ने भी उन्हें विशेष महत्व नहीं दिया। मुस्लिम समाज में भारतीय मुसलमान भी सम्मिलित थे। ये वे मुसलमान थे जो धर्म परिवर्तन द्वारा हिन्दु से मुसलमान बने थे। भारतीय मुसलमानों के इस वर्ग को विदेशी विजेता सामंती मुस्लिम वर्ग में शामिल नहीं किया गया था। उन्हें सामाजिक, प्रशासकीय व आर्थिक विशेषाधिकार भी नहीं दिए गए थे परंतु तुगलक शासन काल में भारतीय मुसलमानों को प्रशासन में अधिक पद प्राप्त हुए थे। मुस्लिम समाज में अमीर वर्ग विलासता का जीवन व्यतीत करते थे। वे काफी सम्पन्न और प्रभावशाली थे। मुस्लिम समाज में सबसे नीचे स्तर पर कारीगर, छोटे व्यापारी और मुंशी थे। मुस्लिम समाज में सूफीया का एक अलग वर्ग था। मुस्लिम समाज में सूफीयों का बहुत आदर व सम्मान किया जाता था।

हिन्दु समाज

सल्तनतकाल में हिन्दु समाज पूर्ववर्ती कालों की अपेक्षा दयनीय स्थिति में था। हिन्दु समाज का प्रमुख आधार जाति प्रथा था। हिन्दुओं के धर्म परिवर्तन को रोकने के लिए जाति–प्रथा के बन्धन और कठोर कर दिए गए। सल्तनतकाल में राज्य की बहुसंख्यक प्रजा होने पर भी हिन्दुओं को राज्य के ऊँचे पदों पर आसीन नहीं किया जाता था। जीवन के हर क्षेत्र में हिन्दुओं के साथ पक्षपात का व्यवहार किया जाता था। हिन्दुओं से **जजिया कर** वसूल किया जाता था। हिन्दु समाज में पर्दा प्रथा बढ़ गई थी। सल्तनत काल में हिन्दुओं के साथ बहुत दुर्व्यवहार किया जाता था। इसके अतिरिक्त अन्य प्रकार के कर एवं कठोर यातनाओं के फलस्वरूप हिन्दु समाज असहाय एवं दुर्बल में था, स्त्रियों का स्थान पुरूषों की अपेक्षा निम्न समझा जाता था। हिन्दु पुरूष धोती एवं पगड़ी पहनते थे, स्त्रियाँ साड़ी पहनती थीं। हिन्दु स्त्रियों के आभूषण सोने एवं चांदी के होते थे, जबकि गरीब वर्ग की स्त्रियों के आभूषण सस्ती धातुओं के होते थे।

दास प्रथा– सल्तनत काल में हिन्दु तथा मुसलमानों दोनों समाज में दास प्रथा प्रचलित थी। दास (गुलाम) बाजार में बेचे व खरीदे जाते थे। मुसलमानों द्वारा इस काल में युद्ध बन्दी लोगों को गुलाम बना दिया जाता था। यदि कोई गुलाम योग्य होता और वह गुलाम सुल्तान की सेवा में चला जाता तो, उसकी योग्यता के अनुरूप पद भी प्राप्त कर सकता था।

अपनी प्रगति जाँचिए

1. दिल्ली सल्तनत में शासक वर्ग में किस धर्म के लोग सम्मिलित थे?

   (क) हिन्दु (ख) मुस्लिम

   (ग) सिक्ख (घ) ईसाई

2. उलेमा किस समाज के अंग थे?

   (क) हिन्दु (ख) मुस्लिम

   (ग) सिक्ख (घ) ईसाई

3. 'सूफी' कौन थे?

   (क) हिन्दु संत (ख) मुस्लिम संत

   (ग) सिक्ख संत (घ) ईसाई संत

4. सल्तनत कालीन समाज में बहुसंख्यक वर्ग कौन सा था?

   (क) हिन्दु (ख) मुस्लिम

   (ग) सिक्ख (घ) ईसाई

5. जजिया कर किस धर्म के लोगों से लिया जाता था?

   (क) हिन्दु (ख) मुस्लिम

   (ग) यहूदी (घ) ईसाई

4.3 सल्तनत कालीन धार्मिक जीवन

सल्तनत काल में इस्लाम, हिन्दु धर्म व जैन धर्म प्रमुख रूप से भारत में प्रचलित थे। हिन्दु धर्म में वैष्णव व शैव सम्प्रदाय तथा तंत्र सम्प्रदाय भी सम्मिलित थे। हिन्दु और जैन धर्म प्रमुख रूप से सल्तनत काल में प्रचलित थे। विष्णु एवं शिव के विभिन्न रूपों की पूजा होती थी। साधारण हिन्दु समाज, हिन्दुधर्म के विविध देवी-देवताओं की पूजा करते थे। बहुदेववाद और मूर्ति पूजा प्रचलित थी, अंधविश्वास, तंत्रमंत्र, झाड-फूंख, जादू टोना पर भी लोग विश्वास करते थे।

सल्तनत कालीन धार्मिक जीवन में भारत में इस्लाम धर्म के आगमन एवं प्रसार का महत्वपूर्ण योगदान है। सल्तनत काल में इस्लाम को राज धर्म होने से बहुत बढ़ावा दिया गया। शांति, आतंक, बल प्रयोग और अनेक प्रलोभनों से अनेक हिन्दुओं को मुसलमान बनाया गया। हिन्दु धर्म के अनेक अछूतों और निम्न वर्ग के लोगों ने भी परिस्थितिवश स्वेच्छा से इस्लाम स्वीकार कर लिया था। इस प्रकार भारत में इस्लाम धर्म का प्रसार हुआ सल्तनतकाल में मुस्लिम शासकों ने हिन्दुओं पर धार्मिक अत्याचार किए। हिन्दुओं को धार्मिक स्वतन्त्रता और अधिकार नहीं थे, उनके मंदिरों को तोड़कर उन पर मस्जिद तामील की गई थी। हिन्दुओं जजिया नामक कर शांति पूर्वक रहने हेतु देना पड़ता था। इतने अत्याचारों के बाद भी देश की बहुसंख्यक प्रजा हिन्दु धर्म के विभिन्न मतों को मानती रही।

अपनी प्रगति जाँचिए

6. सल्तनतकाल में बहुसंख्यक प्रजा किस धर्म को मानती थी?
   (क) हिन्दु (ख) इस्लाम
   (ग) सिक्ख (घ) ईसाई
7. बहुदेव वाद किस धर्म से संबंधित था?
   (क) हिन्दु (ख) इस्लाम
   (ग) सिक्ख (घ) ईसाई
8. सल्तनत काल में राजधर्म क्या था?
   (क) हिन्दु (ख) इस्लाम
   (ग) सिक्ख (घ) ईसाई
9. शांतीपूर्वक रहने हेतु जजिया कर देना पड़ता था
   (क) जैन (ख) वैश्य
   (ग) हिंदू (घ) मुस्लिमों को

4.4 भक्ति आन्दोलन

सल्तनत कालीन धार्मिक जीवन में विभिन्न संतों एवं धार्मिक सुधारकों का प्रार्दुभाव हुआ। भक्ति मार्ग को अपनाया जाना इस युग की प्रमुख विशेषता थी। इस भक्ति मार्ग के अनुसार भक्त अपने इष्टदेव के प्रति अनन्य श्रद्धा भक्ति और निष्ठा रखता था। भक्ति के द्वारा भक्त मोक्ष प्राप्त करने का प्रयास करता था। सल्तनत काल में अनेक संतों, महात्माओं और धर्म सुधारकों ने इस भक्ति मार्ग का प्रचार-प्रसार किया। इससे ही भक्ति आन्दोलन का सूत्रपात हुआ। जो समस्त उत्तर भारत और दक्षिण भारत में फैल गया।

भक्ति आन्दोलन का आरंभ **संत रामानंद** ने किया था लेकिन जिन संतों ने इसे गति दी और लोकप्रिय बना दिया उनमें **कबीर तथा नानक** प्रमुख थे। इन्होंने निर्गुण ब्रह्म की उपासना पर जोर दिया। इन्होंने हिन्दु तथा मुस्लिम समुदाय के मध्य सामंजस्य लाने का भी प्रयास किया। भक्ति आंदोलन के संतों का दूसरा वर्ग सगुण उपासना को मानने वाला भी था। वे साकार ब्रह्म की उपासना के द्वारा ईश्वर को प्राप्त करने का मार्ग बतलाते थे, इनमें **चेतन्य तथा मीराबाई** प्रमुख थीं।

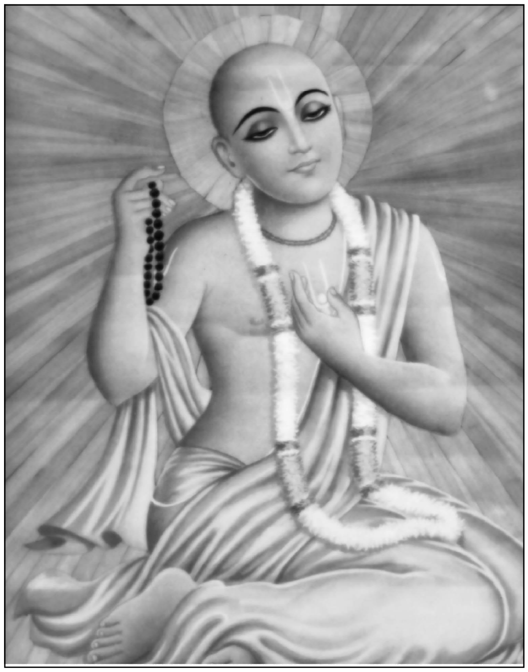

चित्र क्र. 4.1: चैतन्य

भक्ति आन्दोलन मुख्यतः **एकेश्वरवादी** है, चाहे वह सगुण हो या निर्गुण। सगुण ब्रह्म के उपासक वैष्णव कहलाते थे, ये भी कृष्ण मार्गी तथा राम मार्गी दो शाखाओं में बँट गए थे। राम और कृष्ण दोनों ही विष्णु के अवतार हैं। जबकि निर्गुण ब्रह्म के उपासकों ने मूर्तिपूजा का खण्डन किया है। उनका तर्क था कि ईश्वर सर्वव्यापी है और वह मनुष्य के हृदय में भी वास करता है।

भक्ति आन्दोलन के उत्तर और दक्षिण भारत के सभी संतों ने ज्ञान को भक्ति का आवश्यक अंग बतलाया है। ज्ञान के द्वारा ईश्वर को प्राप्त किया जा सकता है और ज्ञान गुरू के द्वारा प्राप्त होता है। भक्ति आन्दोलन ने जन्म और जाति के आधार पर होने वाले भेदभाव को अस्वीकार कर उसका विरोध किया। भक्ति आन्दोलन के संतों ने सामाजिक एकता तथा हृदय की शुद्धता पर बल दिया। भक्ति आन्दोलन के अधिकांश संत निम्न वर्ग के थे। भक्ति आन्दोलन के संतों ने धार्मिक कर्मकाण्डों का विरोध कर सच्ची व समर्पित भक्ति पर बल दिया। संतों ने जन भाषा या लोक भाषा में अपने उपदेश दिए जिससे उनके उपदेश जनसाधारण में समझे व स्वीकार किए गए।

भक्ति आन्दोलन के दो प्रमुख उद्देश्य थे। प्रथम उद्देश्य हिन्दु धर्म को आडम्बरों व व्यर्थ के कर्मकाण्डों से मुक्त कराकर हिन्दु धर्म में सुधार लाना था। जिससे वह सल्तनतकालीन विपरीत परिस्थितियों में भी सुदृढ़ता के साथ हिन्दू धर्म खड़ा रहा। दूसरा उद्देश्य हिन्दु तथा मुस्लिमों के मध्य एकता व मैत्री सम्बन्ध स्थापित करना था। भक्ति आन्दोलन के प्रभाव से हिन्दु धर्म में व्यर्थ के कर्मकाण्ड व आडम्बर बहुत कम हो गए थे। हिन्दुओं में जातिगत भेदभाव व छुआछूत की भावना में कमी आ गई थी।

इस प्रकार सल्तनत काल में प्रारंभ हुए भक्ति आन्दोलन ने सम्पूर्ण भारतीय समाज को सांस्कृतिक एकता के सूत्र में बाँध दिया था। रामानंद, कबीर, नानक, वल्लभाचार्य, चैतन्य महाप्रभु, नामदेव, तुकाराम, रामदास, ज्ञानेश्वर, व मीराबाई आदि महान संतों ने अपने-अपने क्षेत्रों में साम्प्रदायिक सद्‌भाव का प्रचार प्रसार किया। भक्ति आन्दोलन के द्वारा धार्मिक वातावरण निर्मित हुआ। धर्म के क्षेत्र में पर्याप्त समन्वय स्थापित हुआ।

चित्र क्र. 4.2: मीरा बाई

अपनी प्रगति जाँचिए

10. राम व कृष्ण किस धर्म के प्रमुख इष्ट देवता हैं?

(क) शैव (ख) वैष्णव

(ग) जैन (घ) सूर्य

11. भक्ति आन्दोलन के संतों ने किसे भक्ति का आवश्यक अंग बतलाया है?

(क) ज्ञान को (ख) मूर्ति पूजा को

(ग) धन संपत्ति को (घ) अहिंसा को

12. भक्ति आन्दोलन की स्थापना उत्तर भारत में किसने की थी?

(क) रामानंद ने (ख) तुलसीदास ने

(ग) शंकराचार्य ने (घ) मीराबाई ने

13. निर्गुण ब्रम्ह की उपासना पर जोर किसने दिया?

(क) कबीर तथा नानक (ख) तुकाराम

(ग) चैतन्य तथा मीराबाई (घ) तुलसीदास

4.5 सूफी आन्दोलन

सल्तनत काल में जिस तरह हिन्दुओं में भक्ति आन्दोलन का सूत्रपात हुआ, उसी तरह मुस्लिमों में सूफी आन्दोलन का सूत्रपात हुआ। सल्तनत काल में मुस्लिम संतों ने भी भक्ति और प्रेम का संदेश दिया। **'सूफी'** शब्द अरबी भाषा के 'सूफ' शब्द से बना है।

जिसका अर्थ होता है '**ऊन**'। ईरान के ये संत श्वेत ऊनी वस्त्र धारण करते थे, इसलिए उन्हे सूफी नाम से जाना गया। इन मुस्लिम संतों का रहनसहन और पहनावा अत्यंत ही सादगी पूर्ण एवं विलासिता से दूर रहता था। कुछ विद्वान **'सफा'** से सूफी शब्द की उत्पत्ति मानते है 'सफा' का अर्थ है **'पवित्रता'**। अर्थात जो संत आचार विचार से पवित्र थे वे **'सूफी'** कहलाए।

सूफी आन्दोलन के संतों ने पवित्र प्रेम के द्वारा ईश्वर प्राप्ति का मार्ग बतलाया। इस प्रकार भक्ति आन्दोलन के कुछ संतों ने ईश्वर और भक्त का संबंध प्रेमी और प्रेयसी के रूप में माना है। उसी तरह सूफी संतों ने अल्लाह ''ईश्वर'' को प्रेममय माना है। सूफी अल्लाह का प्रेमी बनकर उसे पाना चाहता था। सूफी संत अल्लाह की खोज में सदैव आनंदमय रहते हुए तल्लीन रहते थे।

सूफी संत भौतिकवादी जीवन व भोगविलास से दूर एवं एकदम सादा रहन-सहन व सादगी पूर्ण जीवन जीने में विश्वास करते थे। वे धार्मिक आडम्बरों एवं कर्मकाण्डों से मुक्त रहकर कर्म की शुद्धता, जीवन की पवित्रता और संयमित जीवन जीते हुए अल्लाह व ईश्वर को प्राप्त करने का उपदेश देते थे। वे मानव मात्र की सेवा और मानव– मात्र से प्रेम करने का उपदेश देते थे। वे तथा उनके अनुयायी ईश्वर या अल्लाह के प्रेम में तल्लीन रहते थे।

सल्तनत काल में सूफी आन्दोलन के संतों ने अपने प्रेममय व्यवहार, अपने सात्विक उपदेशों, शुद्ध तथा पवित्र विचारधारा के द्वारा उदार व सरल हृदय हिन्दुओं और मुसलमानों को प्रभावित किया। जिससे हिन्दु और मुसलमानों के मध्य परस्पर सौहाद्रता एवं समन्वय का वातावरण स्थापित हुआ। सूफी आन्दोलन के प्रमुख संतों ने हिन्दु व मुस्लिम धर्मों के अनुयायियों के मध्य समन्वय व एकीकरण में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की।

समस्त सूफी संतों में **शेख ख्वाजा मोईउद्दीन चिश्ती** का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। उन्होनें भारत में चिश्ती सिलसिले की स्थापना की थी। इसके बाद दूसरे महत्वपूर्ण चिश्ती संत शेख **फरीदउद्दीन-गंज-ए-शकर** (1175-1265 ई.) हुए जिन्हें बाबा फरीद के नाम से भी जाना जाता है। इनके बाद प्रमुख सूफी संत **हजरत निजामुद्दीन ओलिया** (1238-1325 ई.) हुए। **अमीर खुसरो** इनके शिष्य थे। तेरहवी शताब्दी ई. में **बहारूद्दीन जकारिया** ने भारत में सुहारवर्दी सिलसिले की स्थापना की। पन्द्रहवी शताब्दी ई. में **शेख अब्दुल्लाह सत्तारी** और **सैय्यद गौह वाला पीर** ने कादरी सिलसिले की नीव रखी। इसके अलावा सूफी आन्दोलन अनेक सिलसिलों में विभाजित हो गया था। इन सभी सिलसिलों में चिश्ती सिलसिले की अनेक प्रथाएं हिन्दुओं की प्रथाओं से मिलती थीं। चिश्ती संत गरीबी का जीवन जीने में विश्वास करते थे।

चित्र क्र. 4.3: अमीर खुसरो

सूफी आन्दोलन से भारत में इस्लाम को प्रतिष्ठा प्राप्त हुई। सूफी संतों ने इस्लाम की कट्टरता को दूर किया। सूफी आन्दोलन ने हिन्दु तथा मुसलमानों के बीच धर्मान्धता दूर कर आपसी प्रेम व सहिष्णुता का वातावरण निर्मित किया। उन्होंने दोनों धर्मों में समन्वय और हिन्दु-मुस्लिम एकीकरण में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

अपनी प्रगति जाँचिए

14. ''सूफी'' किस भाषा का शब्द है?

(क) अरबी (ख) हिन्दी

(ग) संस्कृत (घ) तमिल

15. ''सफा'' शब्द का क्या अर्थ होता है?

(क) मोक्ष (ख) मृत्यु

(ग) पवित्रता (घ) ईश्वर

16. हजरत निजामउद्दीन ओलिया किस सिलसिले के संत थे?

(क) कादरी (ख) सुहारवर्दी

(ग) नक्सेवंदी (घ) चिश्ती

17. शेख अब्दुल्लाह सत्तारी ने किस सिलसिले की नींव रखी?

(क) कादरी (ख) सुहारवर्दी

(ग) नक्सबंदी (घ) चिश्ती

18. बहाउद्दीन जकारिया ने भारत में किस सिलसिले की नींव रखी?

(क) कादरी (ख) सुहारवर्दी

(ग) नक्सेबंदी (घ) चिश्ती

4.6 सल्तनत काल में आर्थिक जीवन, उद्योग-धंधे एवं कृषि

सल्तनत कालीन भारत का आर्थिक जीवन उन्नतिशील था। भारतीय उद्योग-धंधे तथा कृषि उन्नत दशा में थे। इस युग में भारत आर्थिक दृष्टि से अत्याधिक सम्पन्न था। इब्नबतूता ने भारतीय कृषि की प्रशंसा की है। सुल्तानों की दृढ आर्थिक नीति के अभाव में भी विभिन्न उद्योग एवं कृषि व्यक्तिगत रूप से अबाध गति से चलते रहे। यद्यपि सल्तनतकाल में मुसलमान शासक के रूप में थे और राजनीति तथा सेना में उनका प्रभुत्व था। परंतु आर्थिक क्षेत्र में हिन्दुओं की प्रमुख भूमिका रही। उद्योग तथा कृषि क्षेत्र हिन्दुओं के हाथों में ही रहे।

सल्तनत कालीन कृषि –

सल्तनत कालीन आर्थिक जीवन कृषि पर आधारित था। जनसाधारण का मुख्य व्यवसाय कृषि था तथा राज्य की आय का मुख्य स्त्रोत कृषि ही थी। कृषि, मुख्यतः हिन्दुओं के द्वारा की जाती थी। इस काल भूमि उपजाऊ होने से प्रतिवर्ष दो या तीन फसलें उपजाई जाती थीं। दालें, गेहूँ, ज्वार, मटर, चावल, गन्ना और तिलहन मुख्य उपजें थीं। कपास की खेती भी होती थीं। फलों के बाग लगाए जाते थे। अंगूर, सेव, आम, नारंगी, छुहारा, तथा अंजीर बहुत अधिक उत्पन्न होता था। बहुसंख्यक कृषक हिन्दू थे, इसलिए उन्हें उपज का पचास प्रतिशत भूमि कर देना पड़ता था, परन्तु शासन की ओर से भूमि की उर्वरता बढ़ाने या खेती की उपज वृद्धि में कोई तकनीकि सुधार नहीं किए गए। तालाबों, कुओं और नदियों के जल से सिंचाई की जाती थी।

सल्तनत कालीन सुल्तानों में फिरोजशाह तुगलक के कार्यों की अवश्य प्रशंसा की जा सकती है क्योंकि उसने सिंचाई की समुचित व्यवस्था करके कृषि उत्पादन में वृद्धि के प्रयास किए। उसने अनेक नहरों का निर्माण भी कराया। उसे फलों के बाग लगवाने का शौक विशेष रूप से था। उसने अनेक करों में कटौती की थी जिससे कृषकों की स्थिति में सुधार हुआ।

इस प्रकार सल्तनत काल में कृषि की स्थिति संतोषजनक थी। कृषि उत्पादन की दृष्टि से देश आत्मनिर्भर था। कृषकों की आवश्यकताएँ सीमित थीं। अतः कृषक सामान्यतः संतुष्ट ही थे।

सल्तनत कालीन उद्योग-धंधे

सल्तनत काल में देश यद्यपि कृषि प्रधान था परन्तु फिर भी अनेक प्रकार के उद्योग-धंधे प्रचलित थे। वस्त्र उद्योग, धातु उद्योग, चर्म उद्योग, सूती, ऊनी, रेश्मी वस्त्रों की रंगाई छपाई का उद्योग, गुड़-शक्कर निर्माण उद्योग, लकड़ी व पत्थर की विभिन्न वस्तुएँ बनाने का उद्योग, शस्त्र निर्माण उद्योग, विभिन्न प्रकार गृह उद्योग, कागज उद्योग तथा अन्य उद्योग अस्तित्व में थे। दिल्ली में सुल्तानों के अनेक कारखाने थे। जिनमें सुल्तानों, शाही परिवार के सदस्यों तथा अमीरों और सामन्तों के लिए हजारों जुलाहे, रेश्मी, सूती, ऊनी वस्त्र बुनते थे। इन वस्त्रों पर अन्य शिल्पीगण सोने-चांदी की कसीदा कारी करते थे। सरकारी कारखानों में विभिन्न प्रकार के अस्त्र-शस्त्र भी निर्मित किए जाते थे। सल्तनत काल में दरियाँ और कालीन बनाने का कार्य भी बड़े पैमाने पर किया जाता

था। सल्तनत काल में **वस्त्र निर्माण** उद्योग के लिए दिल्ली, बंगाल, गुजरात, उड़ीसा तथा मालवा प्रमुख केन्द्र थे। काश्मीर, पटना, मुर्शिदाबाद, माल्दा व बनारस रेशम उद्योग के प्रसिद्ध केन्द्र थे। आगरा, अहमदाबाद, लखनऊ, फरूखाबाद तथा मछलीपट्टनम वस्त्रों की रंगाई के प्रमुख केन्द्र थे।

कागज उद्योग के लिए गुजरात प्रमुख केन्द्र था। आगरा, लाहौर, पटना, अवध, अहमदाबाद में भी कागज उद्योग के प्रमुख केन्द्र थे।

धातु उद्योग के अंतर्गत विभिन्न धातुओं से अस्त्र-शस्त्र, आभूषण, कृषि उपकरण व बर्तन बनाए जाते थे। अस्त्र–शस्त्रों में तलवारें लाहौर, सौराष्ट्र, बनारस, गुजरात और गोलकुण्डा में बनाई जाती थीं। आभूषण निर्माण केन्द्र बनारस, दिल्ली, गुजरात व आगरा थे। सोने-चांदी के बर्तनों के निर्माण के लिए गुजरात प्रसिद्ध केन्द्र था। लखनऊ व दिल्ली में ताँबे की वस्तुएँ बनाई जाती थीं।

चीनी उद्योग के लिए लाहौर, दिल्ली, कालपी, पटना तथा आगरा प्रमुख केन्द्र थे। **चर्म उद्योग** के अंतर्गत जूते, घोड़े की काठी, लगाम, मशक भी विभिन्न केन्द्रों पर निर्मित की जाती थी। शीशे के बर्तनों के लिए कोल्हापुर, सतारा, शोलापुर, अहमदनगर, गोरखपुर प्रसिद्ध केन्द्र थे। मूर्तियों, मृद्माण्डों, ईटों, खपरों आदि के लिए जयपुर, ग्वालियर, अवध, बनारस, लखनऊ, काश्मीर तथा दिल्ली प्रमुख केन्द्र थे।

इस प्रकार उद्योग-धंधो और कारखानों के विकास के परिणाम स्वरूप कारीगरों का एक बड़ा वर्ग सामने आया। विभिन्न उद्योग-धंधो में संलग्न शिल्पियों के पृथक-पृथक क्षेत्र बन गये थे। कुछ विशिष्ट उद्योग-धंधो के संचालकों के अपने-अपने संघ या संगठन बने हुये थे और वे अपने उद्योग-धंधो का संचालन खुद करते थे।

स्पष्ट है कि सल्तनत काल में उद्योग-धंधे अच्छी अवस्था में थे। विभिन्न प्रकार के उद्योग-धंधो का पर्याप्त विकास हुआ।

अपनी प्रगति जाँचिए

19. सल्तनत काल में आर्थिक जीवन का मुख्य आधार क्या था?

    (क) व्यापार (ख) कृषि

    (ग) उद्योग (घ) वाणिज्य

20. बाग लगवाने का शौक किस सुल्तान को विशेष रूप से था?

    (क) बलवन (ख) कुतुबुद्दीन

    (ग) इब्राहिम (घ) फिरोजशाह

21. सल्तनत काल वस्त्र निर्माण का प्रमुख केन्द्र कौन सा था?

    (क) बंगाल (ख) असम

    (ग) केरल (घ) तमिलनाडु

22. सल्तनत काल में कागज उद्योग का प्रमुख केन्द्र था?

    (क) काश्मीर (ख) असम

    (ग) पंजाब (घ) गुजरात

4.7 सल्तनत काल में प्रशासनिक व्यवस्था

दिल्ली सल्तनत का प्रशासन धर्म निरपेक्ष नहीं था। सुल्तान स्वयं ही सर्वोच्च शासक व धर्माधिकारी था। प्रशासन में इस्लाम को ही विशेष मान्यता प्राप्त थी। अन्य किसी धर्म को मान्यता प्राप्त नहीं थीं। अतः दिल्ली सल्तनत का प्रशासन एक **धर्म सापेक्ष प्रशासन** था। उलेमाओं का राज्य के नियमों पर बहुत प्रभाव था। वे यह देखते थे कि राज्य का प्रशासन कुरान के नियमों के अनुसार चल रहा है या नहीं।

सुल्तान, ही दिल्ली सल्तनत की संपूर्ण शक्तियों का स्त्रोत था। सेना का सर्वोच्च प्रधान व निर्देशक सुल्तान ही था। आम तौर पर चुनाव प्रक्रिया के माध्यम से सुल्तानों का चयन होता था। उलेमा, सरदार व धनाढ्य लोग आपस में तय करके किसी योग्य व्यक्ति को सुल्तान घोषित कर देते थे। अकुशल व निर्बल शासकों को सुल्तान के पद से हटाने के भी प्रावधान थे। लेकिन वास्तव में अधिकांश सुल्तान पैतृकता के कारण ही दिल्ली सल्तनत के सुल्तान बनने में सफल रहे। सुल्तान इल्तुतमिश के समय एक ऐसी परम्परा बनी थी जिसके अनुसार सुल्तान के पुत्र अथवा पुत्रों को विरासत में सिंहासन मिलता था। प्रत्येक सुल्तान को अपने उत्तराधिकारी को नियुक्त करने का अधिकार था। दिल्ली के सुल्तानों ने अपनी-अपनी शक्ति व स्वेच्छा से निरंकुश शासन प्रणाली अपनाई।

केन्द्रीय प्रशासन

सल्तनत काल में सुल्तान, मंत्रियों और प्रमुख अधिकारीगणों की सहायता से शासन करता था। शासन को सुचारू रूप से चलाने के लिए विभिन्न मंत्री और अधिकारी थे। कुछ प्रमुख अधिकारी व मंत्री परिषद के सदस्य निम्नलिखित थे–

बजीर – यह राज्य का प्रधानमंत्री होता था। बजीर, राजस्व विभाग का प्रधान होता था। यद्यपि सिध्दात रूप से वह वित्त मंत्री था किन्तु उसका प्रशासकीय नियंत्रण व्यवहारिक रूप से सार्वजनिक प्रशासन के सभी क्षेत्रों में था। बजीर, वस्तुतः दिल्ली सल्तनत के केन्द्रीय प्रशासन का महाप्रबंधक था। इसे दीवान-ए-बिजारत कहा जाता था।

नायब – रजिया के पश्चात् सुल्तान बहरामशाह के समय के यह पद प्रारंभ किया गया था। बहरामशाह के सरदारों ने शासन व्यवस्था अपने पास सुरक्षित रखने के लिए नायब का पद बनाया था। नायब, बजीर से श्रेष्ठ समझा जाता था।

दीवान-ए-रसालत – यह विदेश मंत्री था जो विदेशी मामलों का संचालन और कूटनीटिक पत्र व्यवहार करता था। यह अपीलों का भी मंत्री था। यह काजी-उल-कुजात के फैसले के विरूद्व अपीलों को सुनता था।

सद्र उल-सुदूर – यह धर्म विभाग का अध्यक्ष होता था। इस्लाम का प्रचार-प्रसार व उसका पालन कराना एवं मुस्लिमों के विशेष हितों की रक्षा करता था। सुल्तान को धार्मिक कार्यों में परामर्श देना उसका मुख्य उत्तरदायित्व था। आरिज-ए-मुमालिक – यह दीवान-ए अर्ज (सैन्य या प्रतिरक्षा) मंत्रालय का प्रमुख होता था। यह सैनिकों की भर्ती उनके वेतन का निर्धारण और वितरण करता था। यह सेना का समय-समय पर निरीक्षण करता था।

दवीर-ए-मुमालिक

यह दीवान-ए-इंशा विभाग का प्रमुख होता था। इस मंत्रालय के अंतर्गत शाही घोषणाओं का प्रारूप तैयार करना, शासकीय घोषणाओं को जारी करना, प्रांतीय गर्वनरों व अधिकारियों को पत्र आदि भेजना था।

काजी-उल-कुजात–

यह न्याय विभाग का प्रमुख होता था। यह निम्न स्तर पर नियुक्त काजियों के निर्णय पर पुर्नविचार करता था। सल्तनत काल में काजी-उल-कुजात तथा सद-उल-सदूर (अपील मंत्री) इन दोनों पद पर एक ही व्यक्ति नियुक्त किया जाता था।

वरीद-ए-मुमालिक

यह गुप्तचर विभाग का प्रमुख होता था। विभिन्न संदेश वाहक, गुप्तचर और डाक चौकियाँ इसके अधीन थीं।

उपर्युक्त मंत्रियों के अतिरिक्त एक सर्वोच्च परामर्शदात्री परिषद् भी थी। जिसे **मजलिस-ए-खास** कहा जाता था। सुल्तान महत्वपूर्ण मामलों में इस परिषद् से परामर्श लेता था।

प्रान्तीय शासन–

दिल्ली सल्तनत अनेक प्रान्तों (इक्तों) में बटा हुआ था। प्रत्येक प्रान्त (इक्ता) का प्रधान मुक्ती नाजिम, नाइव-सुल्तान या वली के नाम से जाना जाता था। प्रान्तीय प्रशासन केन्द्रीय प्रशासन के समान ही था।

अपने-अपने प्रान्तों में मुक्ती अथवा वली को असीम शक्तियाँ प्राप्त थी। वे अपने प्रान्तों के समुचित प्रशासन के लिए केन्द्रीय प्रशासन के प्रति प्रत्यक्ष रूप से उत्तरदायी थे। प्रान्तों में साहिब-ए-दीवान राजस्व विभाग का प्रमुख था। इसकी नियुक्ति सुल्तान स्वयं करता था।

प्रान्तों के मुखिया की नियुक्त सुल्तान करता था तथा उनको उनके पद से हटाया जाना भी सुल्तान द्वारा किया जाता था। वह अपने प्रांत में शांति व्यवस्था बनाए रखता था। विद्रोहों के उत्पन्न होने पर उनकों शांत करता था। करों की वसूली करता था। आय-व्यय का हिसाब सुल्तान को देकर बचे हुए धन को राजकोष में जमा करता था। वह अपने कार्यों के लिए सुल्तान के प्रति उत्तरदायी होता था।

सल्तनत काल में दुर्बल व कमजोर सुल्तानों के समय प्रान्तों के मुक्ती अथवा वली स्वच्छन्दता पूर्वक व्यवहार करने लगते थे।

स्थानीय प्रशासन

प्रान्तों का और भी उपविभाजन किया गया था। प्रान्तों का विभाजन जिलों में किया गया था जिसे **'शिक'** जिला कहा गया। **'शिको'** (जिलों) का मुख्य अधिकारी 'शिकदार होता था। कालान्तर में 'शिक' या जिले को परगनों में विभाजित किया गया था। परगना कई ग्रामों का समूह होता था। परगने का मुख्य अधिकारी 'फौजदार होता था। यह अपने परगने में शांति व सुव्यवस्था बनाए रखता था। परगना स्थानीय प्रशासन की एक महत्वपूर्ण इकाई समझा जाता था। स्वशासन व्यवस्था के अंतर्गत सबसे छोटी

इकाई गांव हुआ करती थी। ग्राम प्रशासन से संबंधित अधिकारी व कर्मचारियों में चौधरी, पटवारी, मुकद्दम, चौकीदार आदि सभी पैतृकता के आधार पर कार्य करते थे।

राजस्व प्रशासन–

सल्तनत काल में आय के दो प्रमुख साधन थे। धार्मिक कर तथा लौकिक धार्मिक कर मात्र मुसलमानों से लिया जाता था। इन्हें **'जकात'** के रूप में लिया जाता था। जकात अदा करना धार्मिक दायित्व था। **'जजिया कर'** हिन्दुओं से लिया जाता था, ताकि वे राज्य में जीवन व सम्पत्ति की सुरक्षा व सैनिक सेवा से मुक्त रहें। जजिया कर स्त्रियों, बच्चों, भिक्षुओं, साधुओं, अंधों व अपाहिजों पर नहीं लगाया जाता था।

''खिराज'' नामक लौकिक कर हिन्दुओं पर लगने वाला भूमि कर था। कालान्तर में यह मुस्लिमों से भी लिया जाने लगा। इसके अतिरिक्त सिंचाई कर, गृहकर, चराई कर, चुंगी कर, भी राजकीय आय के मुख्य स्त्रोत थे।

सैन्य प्रशासन–

सल्तनत काल में चार प्रकार के सैनिक होते थे। प्रथम, वे सैनिक थे जो सुल्तान के सैनिकों के रूप में भर्ती किए जाते थे इसमें शाही अंगरक्षक, शाही गुलाम तथा अन्य सैनिक सम्मिलित थे। द्वितीय सैनिक वे थे जो दरबार के सरदारों, प्रान्तीय इक्तादारों (मुक्तीयों) के द्वारा भर्ती किए जाते थे। तृतीय वे सैनिक होते थे जो केवल युद्ध के समय ही भर्ती किए जाते थे उन्हें उसी समय वेतन व रसद प्राप्त होती थी। चतुर्थ सैनिक वे थे जो हिन्दुओं के विरूद्ध युद्ध करने के लिए युद्ध में सम्मिलित होते थे। ये सैनिक इस्लाम के नाम पर युद्ध करते थे और लूटी हुई सम्पत्ति में ही हिस्सा प्राप्त करते थे।

सल्तनतकाल में एक सुसंगठित एवं शक्तिशाली सेना की अनिवार्यता ही दिल्ली सल्तनत के शासन की आधारशिला थी। अलाउद्दीन खिलजी ने स्थाई सेना की भर्ती की। घोड़े दागने की प्रथा तथा सैनिकों को नगद वेतन देने की व्यवस्था प्रांरभ की। सेना की भर्ती आरिज-ए-मुमालिक करता था।

न्याय प्रशासन–

राज्य की सर्वोच्च न्यायाधीश सुल्तान स्वयं होता था। सुल्तान द्वारा किया गया निर्णय अंतिम रूप से मान्य किया जाता था। सद्र अथवा मुती धार्मिक मामलों में तथा मुकदमों में काजी-उल-कुजात सुल्तान की सहायता करते थे। दण्ड विधान कठोर था। सम्पत्ति संबंधी और असैनिक मुकदमों में भी इस्लाम धर्म के कानूनों को मान्यता दी जाती थी। प्रत्येक नगर में एक शहर काजी की नियुक्ति की जाती थी। जो विवादों पर नियमानुसार निर्णय देते थे। सल्तनत कालीन न्याय प्रशासन का मुख्य दोष यह रहा कि किसी भी सुल्तान ने धर्मनिरपेक्ष न्याय व्यवस्था या कानून व्यवस्था तथा दण्ड व्यवस्था को लागू करने का प्रयास ही नहीं किया।

इस तरह सल्तनत काल में प्रशासनिक व्यवस्था सुचारू रूप से संचालित थी। सुल्तानों ने न्याय व्यवस्था द्वारा न्याय दिलाने की समुचित व्यवस्था की गुई थी। सल्तनत कालीन प्रशासनिक व्यवस्था उच्च कोटी की थी।

अपनी प्रगति जाँचिए

23. सल्तनत काल में सर्वोच्च शासक कौन था?
    (क) सुल्तान (ख) बजीर
    (ग) नायब (घ) काजी-उल-कुजात
24. सल्तनत काल में राजस्व विभाग का प्रधान कौन होता था?
    (क) सुल्तान (ख) बजीर
    (ग) नायब (घ) काजी-उल-कुजात
25. सुल्तान काल में विदेश मंत्री कौन होता था?
    (क) दीवान-ए-रसालत (ख) आरिज-ए-मुमालिक
    (ग) नायब (घ) काजी-उल-कुजात
26. सल्तनत काल में सैन्य विभाग का मुखिया कौन था?
    (क) बजीर (ख) आरिज-ए-मुमालिक
    (ग) नायब (घ) काजी-उल-कुजात
27. सल्तनत काल में 'इक्ता' क्या था?
    (क) जिला (ख) प्रान्त
    (ग) ग्राम (घ) परगना

4.8 अपनी प्रगति जाँचिए प्रश्नों के उत्तर

1.	(ख)	10.	(ख)	19.	(क)
2.	(ख)	11.	(क)	20.	(घ)
3.	(ख)	12.	(क)	21.	(क)
4.	(ख)	13.	(ग)	22.	(ख)
5.	(ख)	14.	(क)	23.	(क)
6.	(क)	15.	(क)	24.	(क)
7.	(क)	16.	(ख)	25.	(क)
8.	(ख)	17.	(ख)	26.	(ख)
9.	(ग)	18.	(घ)	27.	(ख)

4.9 सारांश

गुलाम वंश के प्रथम सुल्तान कुतुबुद्दीन ऐबक ने 1206 ई. में दिल्ली सल्तनत की स्थापना की। गुलाम वंश के पतन के पश्चात् दिल्ली सल्तनत पर खिलजी, तुगलक, सैय्यद तथा लोधी वंश के विभिन्न सुल्तानों ने शासन किया। 1526 ई. में इब्राहिम

लोधी के बाबर से परास्त होते ही दिल्ली सल्तनत का अंत हो गया। दिल्ली सल्तनत में बलबन अलाउद्दीन खिलजी, मुहम्मद तुगलक, फीरोजशाह तुगलक तथा इब्राहिम लोधी महत्वपूर्ण सुल्तान हुए। सल्तनतकालीन समाज में हिन्दु तथा मुसलमान दोनों को एक साथ रहना पड़ा। जबकि इन दोनों समाजों के सामाजिक एवं धार्मिक संस्कारों एवं परम्पराओं में मूलभूत अन्तर था। परन्तु कालान्तर में दोनों के मध्य समन्वय स्थापित हुआ। सल्तनतकाल में स्त्रियों की स्थिति में गिरावट आ गई थी। उनकी स्वतन्त्रता पर अनेक प्रतिबंध लगाए गए। धार्मिक जीवन में इस्लाम, हिन्दु तथा जैन आदि धर्मों को उनके अनुयायी अपनी-अपनी आस्था के आधार पर मानते थे। इस्लाम को राजधर्म की मान्यता दी गई थी। शक्ति, आतंक, बलप्रयोग तथा प्रलोभनों से अनेक हिन्दुओं को मुसलमान बनाया गया। फिर भी सल्तनतकाल में बहुसंख्यक हिन्दु धर्म के अनुयायी ही रहे। सल्तनतकालीन धार्मिक जीवन में भक्ति आंदोलन तथा सूफी आंदोलन के संतों ने हिन्दु तथा मुस्लिमों के मध्य धार्मिक सहिष्णुता व समन्वय का वातावरण निर्मित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। सल्तनतकालीन आर्थिक जीवन में हिन्दुओं पर करों की अधिकता थी। कृषि तथा उद्योग-धंधो को बहुसंख्यक हिन्दुओं के द्वारा संचालित किया जाता था। हिन्दुओं का जीवन सामान्य सुविधाओं से युक्त था। परंतु मुसलमानों विशेष रूप से सुल्तान, अमीरों, सरदारों तथा उच्च पदाधिकारियों का जीवन धन-धान्य तथा विलासिला से परिपूर्ण था। सल्तनतकाल में धन का वितरण असमान था। दोनों ही समाज के निम्न वर्ग की आर्थिक दशा दयनीय थी। सल्तनतकाल में प्रशासनिक व्यवस्था सुल्तान को केन्द्रीय स्थिति में रखकर संचालित होती थी। सुल्तान, शासन. व्यवस्था, न्याय व्यवस्था, सैन्य व्यवस्था तथा राजस्व व्यवस्था का सर्वोच्च अधिकारी था। वह सर्वोच्च धर्माधिकारी भी था। केन्द्रीय प्रशासन, प्रान्तीय प्रशासन, जिला, परजनों तथा ग्राम प्रशासन इस्लाम पर आधारित था। संपूर्ण सल्तनतकालीन प्रशासनिक व्यवस्था में हिन्दुओं को कोई महत्वपूर्ण स्थान नहीं दिया गया। सल्तनतकाल में धर्म-सापेक्ष प्रशासनिक व्यवस्था कायम रहीं। सल्तनतकाल भारतीय इतिहास का एक महत्वपूर्ण काल माना जाता है। इस काल में भारत में मुस्लिम राजसत्ता स्थापित हुई। भारत राजनीतिक रूप से एक केन्द्रीयत सत्ता के अधीन रहा। मुस्लिम-हिन्दु संस्कृति का समन्वय हुआ। धार्मिक समन्वय का माहौल निर्मित हुआ।

4.10 मुख्य शब्दावली

- सल्लनत कालीन सामाजिक जीवन
- धार्मिक जीवन
- सल्लनत कालीन आर्थिक जीवन
- सल्लनत कालीन प्रशासनिक व्यवस्था

4.11 स्व-मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. सल्तनतकाल में मुस्लिम संस्कारों पर प्रकाश डालिए।
2. सल्तनतकाल में हिंदू संस्कारों पर प्रकाश डालिए।

3. सल्तनतकाल में हिंदुओं के त्यौहार कौन से थे?
4. सल्तनतकाल में सती एवं जौहर प्रथा पर प्रकाश डालिए।
5. सूफी धर्म क्या है?
6. भक्ति आंदोलन के उद्भव की रुपरेख प्रस्तुत कीजिए।
7. सल्तनतकालीन उद्योग-धंधो पर प्रकाश डालिए।
8. सल्तनतकालीन स्थानीय शासन व्यवस्था का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।
9. सल्तनतकालीन प्रांतीय शासन के विषय में आप क्या जानते है?

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. सल्तनतकालीन सामाजिक जीवन पर प्रकाश डालिए।
2. सल्तनतकालीन धार्मिक जीवन का विवरण प्रस्तुत कीजिए।
3. सल्तनतकाल में भक्ति आंदोलन के योगदान को निरूपित कीजिए।
4. भक्ति आंदोलन पर एक निबंध लिखिए।
5. सल्तनतकालीन हिन्दु-मुस्लिम एकता के संदर्भ में सूफी संतों की भूमिका पर प्रकाश डालिए।
6. सल्तनतकालीन संस्कृति पर सूफी संतों का क्या प्रभाव पड़ा।
7. सल्तनतकालीन आर्थिक जीवन में कृषि की स्थिति पर प्रकाश डालिए।
8. सल्तनतकालीन भारत की आर्थिक स्थिति पर प्रकाश डालिए।
9. सल्तनतकालीन केन्द्रीय प्रशासन की विवेचना कीजिए।
10. सल्तनतकाल में सुल्तान की प्रशासन में भूमिका को स्पष्ट कीजिए।
11. सल्तनतकालीन प्रान्तीय तथा स्थानीय प्रशासन पर प्रकाश डालिए।
12. सल्तनतकालीन राजस्व, न्याय एवं सैन्य प्रशासन पर प्रकाश डालिए।

4.12 सहायक पाठ्य सामग्री

1. बी.के. श्रीवास्तव, मध्यकालीन भारत का इतिहास, एस.बी.पी.डी. पब्लिकेशन्स, आगरा, 2012।
2. बी.के. श्रीवास्तव, भारत का इतिहास, साहित्य भवन, आगरा, 2008।
3. एम.के. मित्तल भारत का सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक इतिहास, 2008।
4. नीरज श्रीवास्तव, मध्यकालीन भारत (प्रशासन, समाज एवं संस्कृति) ओरियंट ब्लैक स्वांन प्रा.लि., हैदराबाद, (द्वितीय संस्करण) 2012।
5. बी.एन. लूनिया, भारतीय संस्कृति, कमल प्रकाशन, इन्दौर (प्रथमसंस्करण) 1988–89।
6. विद्याधर महाजन, मध्य कालीन भारत, एस. चन्दर एण्ड कम्पनी, नई दिल्ली, 1990।
7. राधेशरण, मध्य कालीन भारत की सामाजिक संरचना, म.प्र. हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल, 1998।

टिप्पणी

इकाई 5 मुगल काल का प्रशासन, सामाजिक, धार्मिक एवं आर्थिक जीवन

संरचना

5.0 परिचय
5.1 उद्देश्य
5.2 मुगलकालीन प्रशासन एवं संस्थाएँ
5.3 मनसबदारी व्यवस्था
5.4 मुगलकालीन सामाजिक जीवन एवं स्त्रियों की स्थिति
5.5 मुगलकालीन धार्मिक जीवन
5.6 मुगलकालीन आर्थिक जीवन, कृषि, व्यापार, एवं वाणिज्य
5.7 स्थापत्य कला
5.8 अपनी प्रगति जाँचिए प्रश्नों के उत्तर
5.9 सारांश
5.10 मुख्य शब्दावली
5.11 स्व-मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
5.12 सहायक पाठ्य सामग्री

5.0 परिचय

मुगलकाल मध्यकालीन भारतीय इतिहास का सर्वाधिक महत्वपूर्ण काल माना जाता है। मुगल साम्राज्य की स्थापना बाबर के द्वारा की गई थी, अकबर महान के द्वारा उसे विशालता व स्थायित्व प्रदान किया गया था। जहाँगीर, शाहजहाँ तथा औरंगजेब के शासन काल में मुगल साम्राज्य चर्मोत्कर्ष पर रहा। मुगलों के विशाल साम्राज्य को सुव्यवस्थित प्रशासनिक व्यवस्था के माध्यम से संचालित किया जाता था। केन्द्रीय, प्रान्तीय, नगरीय एवं ग्रामीण प्रशासन के संचालन हेतु एक सुदृढ़ प्रशासनिक ढाँचा खड़ा किया गया था। मुगल साम्राज्य के सभी पदाधिकारियों को केन्द्रीय साम्राज्य का अंग रही मनसबदारी व्यवस्था के आधार पर नियोजित किया गया था। जिसमें शहजादों एवं शाही घराने के व्यक्तियों को उच्च मनसब प्रदान किए गए थे। मुगलकालीन समाज सामंतवादी व्यवस्था पर आधारित था। मुगलकालीन समाज में सामन्तों और मनसबदारों का विशिष्ट उच्च वर्ग माना जाता था। इनके विशिष्ट अधिकार सुविधाएं एवं प्रतिष्ठित पद होते थे। सामन्तों व मनसबदारों के नीचे मितव्ययी मध्यम वर्ग था और उसके नीचे निम्न वर्ग थे। समाज में हिन्दू और मुसलमान दो विभिन्न वर्ग थे। मुगलकाल में मुसलमानों और हिन्दुओं में अनेक कुरीतियों के कारण स्त्रियों का सामाजिक स्तर गिर गया था। निम्न वर्गीय मुस्लिम स्त्रियों की स्थिति अच्छी नहीं थी। कृषि कार्य में निम्न वर्ग की हिन्दु स्त्रियां संलग्न थी। हिन्दु पर्दा प्रथा, बहुपत्नी प्रथा, जौहर प्रथा तथा सती प्रथा विद्यमान थी। मुसलमानों और हिन्दुओं में अनेक कुरीतियों के कारण स्त्रियों का सामाजिक स्तर गिर गया था। मध्ययुग के प्रारंभ में प्रवाहित भक्ति आन्दोलन का स्त्रोत मुगलकाल में भी प्रवाहित होता रहा और भक्तों तथा संतों ने मनुष्य के दुखों को दूर करने के साधन बतलाए। भक्तिमार्गी संत भक्ति मार्ग का प्रचार कर रहे थे। उत्तर भारत

में सूर, तुलसी, बंगाल में चैतन्य महाप्रभु, दक्षिण में एकनाथ, तुकाराम, रामदास प्रभावी थे। पंजाब में सिक्ख धर्म प्रभावी था। इस्लाम का प्रचार तेजी पर था तथा उसमें सूफीवादी विचारधारा बल पकड़ रही थी। अकबर ने सुलहकुल के द्वारा हिन्दु तथा मुस्लिमों में मेल करने का प्रयास किया। मुगलकालीन आर्थिक जीवन कृषि प्रधान रहा। कृषि ही लोगों का प्रमुख व्यवसाय थी। कृषकों पर करों का बोझ अधिक था। ग्रामीण-जन कृषि के अतिरिक्त कृषि पर आधारित लघु उद्योगों में संलग्न थे। नगरों में विभिन्न व्यवसाय व उद्योग धंधे विकसित थे। अनेक समृद्धशाली नगर अस्तित्व में थे। नगरों में शिल्पी व कारीगर विविध वस्तुएँ बनाते थे। औद्योगिक नगरों में कारखाने स्थापित थे। मुगल युग में लोगों के विविध उद्योग धंधे तथा व्यापार अस्तित्व में थे। आंतरिक व विदेशी व्यवसाय गतिशील था। औरंगजेब के शासन काल में व्यापार, वणिज्य तथा कृषि की अवनति होने लगी थी। मुगलकालीन स्थापत्यकला न तो पूरी तरह मुगल कला है और न पूरी तरह भारतीय ही है। इस स्थापत्य कला में मध्य एशिया, दक्षिणपूर्वी एशिया तथा भारतीय स्थापत्य कला का समन्वय स्पष्ट नजर आता है। मुगल सम्राटों ने स्थापत्य कला को बहुत प्रोत्साहन दिया। बाबर से लेकर औरंगजेब तब सभी सम्राटों ने विभिन्न स्मारकों का निर्माण कराया। इस काल की स्थापत्य कला में मध्यएशिया तथा भारतीय स्थापत्य कला का समन्वय विशेष रूप से दृष्टिगोचर होता है।

5.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप—

- मुगलकालीन प्रशासनिक व्यवस्था व प्रशासनिक संस्थाओं, विशेष रूप से मनबसदारी व्यवस्था क्या थी एवं मुगलकाल में स्त्रियों की स्थिति कैसी थी।
- मुगलकालीन धार्मिक जीवन की क्या स्थिति थी।
- मुगलकालीन आर्थिक जीवन के अंतर्गत कृषि, व्यापार तथा वाणिज्य की स्थिति कैसी थी।
- मुगलकालीन स्थापत्य कला की स्थिति कैसी थी।

5.2 मुगलकालीन प्रशासन एवं संस्थाएँ

मुगल वंश के शासकों ने एक सुव्यवस्थित शासन प्रणाली के द्वारा अपने विशाल साम्राज्य के विभिन्न क्षेत्रों में अपनी छाप छोड़ी। केन्द्रीय एवं प्रान्तीय दोनों स्तर की प्रशासनिक व्यवस्था काफी प्रभावशील थी।

मुगल साम्राज्य का प्रशासनिक स्वरूप राजतन्त्रात्मक था। वह संगठनात्मक स्वरूप में पूर्णतः केन्द्रीकृत था। मुगलों ने अपनी प्रभुसत्ता का उपयोग बड़ी स्पष्टता से सम्पूर्ण साम्राज्य पर प्रशासनिक नियन्त्रण रखते हुए किया।

मुगल साम्राज्य बादशाह के एकाधिकार से नियन्त्रित केन्द्रीय राज्य था। प्रशासन के सभी पदों पर मनसबदार काबिज थे। प्रशासनिक सुविधाओं को ध्यान में रखकर ही साम्राज्य को सूबों, जिलों और नायब जिलों में बाँटा गया था। सभी प्रशासनिक पदाधिकारियों को अपने वरिष्ठ अधिकारी के प्रति उत्तरदायी रहना पड़ता था। मुगल

साम्राज्य का सर्वाधिक महत्वपूर्ण लक्षण उसकी शक्तिशाली केन्द्रीय प्रशासनिक व्यवस्था ही था। मुगल राज्य का स्वरूप राजतन्त्रात्मक था। वह अपने संगठनात्मक स्वरूप में पूर्णतः केन्द्रीयत तथा। मुगलों ने अपनी प्रभुसत्ता का उपयोग अपनी राजसत्ता के सभी सूबों पर पूर्ण प्रशासनिक नियन्त्रण रखते हुए किया। बादशाह, सम्पूर्ण साम्राज्य की शक्ति का स्त्रोत था, जिससे प्रत्येक सूबे के प्रशासनिक तन्त्र की सभी शाखाओं को प्राधिकारों की शक्ति प्राप्त होती थी।

केन्द्रीय शासन

बादशाह (सम्राट)

मुगलकालीन प्रशासनिक व्यवस्था में बादशाह सम्पूर्ण मुगल सत्ता की केन्द्रीय शक्तियों का सर्वोच्च स्त्रोत था। उस पर किसी का भी नियन्त्रण नहीं था। वह सर्वोच्च सेनापति, कानूनों का निर्माता, सर्वोच्च न्यायाधीश एवं इस्लाम का संरक्षक माना जाता था। बादशाह ने असीमित शक्तियों को अपने में समाहित कर लिया था। उसे उसके मंत्री, सलाहकार, सरदार आदि विभिन्न मुद्दों पर सलाह दे सकते थे, परन्तु वह उनकी सलाह मानने के लिए बाध्य नहीं था।

बादशाह (सम्राट) अपनी सहायता के लिए केन्द्रीय प्रशासन में विभिन्न मंत्रियों की नियुक्ति करता था। जो अपन-अपने विभागों के मुखियाँ थे। केन्द्रीय प्रशासन के संचालित करने के लिए निम्नलिखित मंत्री नियुक्त किए जाते थे–

1. **वकील (प्रधानमंत्री)**– यह मंत्रीमण्डल का सर्वोच्च पदाधिकारी था। यह समस्त विभागों का मुखियाँ होता था। मुगल प्रशासन में बादशाह के बाद सबसे महत्वपूर्ण पद प्रधानमंत्री या वकील का होता था। यह बादशाह के प्रतिनिधि के रूप में कार्य करता था। अकबर ने इस पद को समाप्त कर दिया था।
2. **दीवान (वित्तमंत्री)**– वकील (प्रधानमंत्री) के बाद दीवान का पद होता था। इसे 'वजीर के नाम से भी जाना जाता था। यह राजकोष विभाग का अध्यक्ष होता था। यह राज्य की आय-व्यय का हिसाब रखता था।
3. **मीर बख्सी**– यह सेना का मुख्य अधिकारी या सैन्य व्यवस्था के अतिरिक्त यह मनसबदारों की नियुक्ति एवं मनसबदारी व्यवस्था को सुचारू रूप से चलाने का महत्वपूर्ण कार्य भी सम्पन्न करता था। यह एक उच्च श्रेणी का मनसबदार भी था।
4. **सद्र-उस-सुदूर**– इसके पास दान विभाग, न्याय विभाग तथा शिक्षा विभाग होते थे। धार्मिक विषयों में बादशाह को सलाह देने का कार्य भी यही करता था।
5. **खान-ए-सामां**– यह शाही परिवार की भोजन व्यवस्था तथा शाही राजमहल की समस्त आवश्यकताओं की प्रबंध व्यवस्था का मुख्य अधिकारी था। यह उद्योगों व कारखानों की सम्पूर्ण व्यवस्थाएँ संचालित करता था।
6. **मुहतासिब**– इसका प्रमुख कार्य प्रजा में नैतिक आचरण के प्रति जागरूकता लाना करना व अनैतिक आचरण करने वालों को दण्डित करना था। इसके अतिरिक्त यह शहर की सफाई व्यवस्था व बाजार में वस्तुओं के भाव व माप-तौल पर भी नियन्त्रण रखता था।

7. **मीर-ए-आतिश**– इसे दरोगा-ए-तोपखाना भी कहा जाता था। इसके अधिकार क्षेत्र में शाही तोपखाना, तोपों का निर्माण, किलों में तोप की व्यवस्था करना, बन्दूकों का निर्माण कराना आदि कार्य सम्मिलित थे।
8. **काजी-उल-कुजात**– यह न्याय विभाग का अध्यक्ष था। यह काजियाँ का काजी होता था। इसका न्यायालय सबसे बड़ा न्यायालय होता था। काजियों की नियुक्ति, उन्हें पदच्युत करना उनका वेतन-निर्धारण इसके अधीन थे।
9. **दरोगा-ए-चौकी**– यह डाक विभाग का अध्यक्ष होता था। यह राज्य के सूचना एवं गुप्तचर व्यवस्था का प्रमुख होता था। गुप्तचरों की सहायता से प्राप्त सूचनाएँ बादशाह तक पहुँचाना इसका कार्य था।

उपर्युक्त मंत्रियों के अतिरिक्त मीरबहर (नौ सेना अधिकारी), मीर बार (वनों का अधिकारी) तथा दरोगा-ए-टकसाल आदि भी केन्द्रीय प्रशासन में महत्वपूर्ण अधिकारी होते थे।

प्रांतीय प्रशासन

मुगल काल में अकबर के शासन काल में व्यवस्थित प्रांतीय प्रशासन की शुरूआत हुई। विशाल मुगल साम्राज्य का एक केन्द्र से शासन करना सम्भव नहीं था अतः अकबर ने अपने साम्राज्य को 18 सूबों (प्रांतों) में विभक्त किया था। औरंगजेब के समय सूबों की संख्या बढ़ाकर 27 हो गई थी। इन सूबों या प्रान्तों के प्रशासन का स्वरूप केन्द्रीय प्रशासन की भाँति ही था। प्रत्येक प्रान्त में निम्नलिखित प्रमुख पदाधिकारी नियुक्त होते थे–

1. **सूबेदार (सिपहसालार)**– यह सूबे का शासक होता था। जो प्रान्त में बादशाह के प्रतिनिधि के रूप में कार्य करता था। सूबेदारों की नियुक्ति तथा उन्हें पदच्युत किया जाना बादशाह के अधिकार क्षेत्र में था। यह प्रान्त का प्रधान न्यायाधीश व सर्वोच्च सैनिक अधिकारी होता था। यह प्रान्त में शाही आज्ञा का पालन कराता था, प्रान्त में शांति तथा सुव्यवस्था स्थापित करता था।
2. **दीवान**– यह सूबेदार को उसके कार्यों में सहयोग प्रदान करता था। सूबेदार के पश्चात यह महत्वपूर्ण अधिकारी था। इसकी नियुक्ति भी बादशाह के द्वारा की जाती थी। इसका प्रमुख कार्य, प्रांत में आय-व्यय का हिसाब रखना था।
3. **सद्**– यह दान विभाग का प्रबंध करता था। इसकी नियुक्ति भी केन्द्रीय सरकार द्वारा की जाती थी।
4. **आमिल**– प्रांत में मालगुजारी वसूल करना तथा वसूल की गई मालगुजारी का पूरा विवरण केन्द्र सरकार को भेजना इसका कार्य था।
5. **बख्सी**– इसका प्रमख कार्य भूमि की किस्म, पैदावार तथा लगाव आदि का विवरण रखना तथा उसे सरकार को भेजना था। यह आमिल के अधीन कार्य करता था।
6. **पोतदार**– यह कृषकों से लगान (पोत) वसूल करने वाला (दार) अधिकारी होता था। वसूल किए गए लगान को राजकोष में सुरक्षित रखता था।
7. **फौजदार**– फौजदार, प्रांत में शांति व्यवस्था बनाए रखने तथा सूबेदार की प्रशासनिक कार्यों में सहायता करता था। इसकी नियुक्ति सूबेदार द्वारा की जाती थी।

8. **कोतवाल**– प्रान्त के नगरों की शांति तथा सुव्यवस्था हेतु प्रत्येक नगर में कोतवाल नियुक्त किये गए थे। नगरकोतवाल, नगर का सबसे बड़ा पुलिस अधिकारी होता था। नगर के बाजारों में माप-तौल का निरीक्षण करना इसका प्रमुख कार्य था।
9. **खबर नवीस**– ये प्रांत से सम्बन्धित सूचनाएँ केन्द्र को पहुँचाने वाले सूचना वाहक थे।
10. **मीर बहर**– प्रांतों में मीरवहर नाम अधिकारी प्रांत में नदियों पर पुल बनवाना व नदियों में नावों की व्यवस्था करना इसका प्रमुख कार्य था।

इस प्रकार मुगल काल में प्रान्तीय प्रशासन व्यवस्थित था। अकबर के पश्चात् प्रांन्तीय प्रशासन पर से केन्द्र का नियन्त्रण शिथिल पड़ गया था।

मुगल काल में स्थानीय शासन

मुगलकाल में प्रांन्त को स्थानीय प्रशासन की दृष्टि से सरकारों (जिलों) परगनों तथा ग्रामों में विभक्त किया गया था–

1. सरकार (जिले) का प्रशासन– प्रत्येक प्रांत अनेक सरकारों अथवा जिलों में विभक्त था। जिले का सबसे बड़ा अधिकारी फौजदार होता था जो जिले में शांति व्यवस्था, प्रजा को सुरक्षा प्रदान करना, शासन के आदेशों को लागू करवाने के महत्वपूर्ण कार्यों को सम्पन्न करता था। यह प्रांत के सूबेदार के आधीन कार्य करता था। इसके अतिरिक्त जिले के प्रशासन हेतु अमलगुजार (राजस्व एकत्रित करने व उसे शाही खजाने में जमा करने वाला) काजी (इस्लाम के अनुसार धार्मिक मामलों को निपटाने वाला) तथा खजानदार (जिले का खजांची) नामक अधिकारीगण जिले के प्रशासन में प्रमुख भूमिका निभाते थे।

2. परगने का प्रशासन– प्रत्येक जिला (सरकार) अनेक परगनों विभक्त था। परगने का प्रधान अधिकारी शिकदार था जो परगने की शांति व सुव्यवस्था के लिए उत्तरदायी था तथा फौजदारी मामलों में न्यायाधीश के रूप निर्णय देता था। प्रत्येक परगने में आमिल (वित्त अधिकारी) होता था। जो किसानों से लगान वसूल करता था। कानूनगो नामक अधिकारी पटवारियों का प्रधान अधिकारी होता था यह राजस्व विवरण तैयार करता था। परगने में फौतदार नामक अधिकारी खजाने का राजकोष का प्रभारी होता था।

3. ग्राम प्रशासन– प्रत्येक परगना अनेक गांवों में विभक्त रहता था। ग्राम प्रशासन की सबसे छोटी इकाई थी। मुकदम ग्राम का मुखियाँ होता था। यह लगान वसूल करने, ग्राम में शांति व सुव्यवस्था बनाए रखने व सरकारी कर्मचारियों की सहायता करने से सम्बन्धित कार्यों को करता था। ग्राम पटवारी राजस्व विभाग का सबसे छोटा परन्तु ग्राम प्रशासन में महत्वपूर्ण अधिकारी होता था। ग्राम में पटवारी का पद पैतृक होता था। मुगलों ने ग्राम प्रशासन अपने नियन्त्रण में रखा था परन्तु ग्राम पंचायतें ही गांव की सुरक्षा, शिक्षा, सफाई, ग्राम वासियों के विवादों का निपटारा करती थीं।

अपनी प्रगति जाँचिए

1. मुगल काल में केन्द्रीय प्रशासन में सर्वोच्च स्थान किसे प्राप्त था?

   (क) मीर-ए-आतिश (ख) बजीर

   (ग) बादशाह (घ) मीर बख्सी

2. मुगलकाल में प्रांतीय प्रशासन का मुखियाँ कौन होता था?

   (क) दीवान (ख) अमिल

   (ग) फौजदार (घ) सूबेदार

3. मुगलकाल में परगने का मुख्य अधिकारी कौन था?

   (क) शिकदार (ख) कानूनगो

   (ग) फोतदार (घ) पटवारी

5.3 मनसबदारी व्यवस्था

'मनसब' का अर्थ पद या स्थान होता था। मुगल प्रशासन में सम्मिलित होने के लिए मनसबदारों की श्रेणी में चयनित होना अनिवार्य था। मनसब में चयनित होने के लिए बादशाह के प्रति आस्था एवं योग्यता का नियम बनाया गया था। मनसबदारों के चयन प्रक्रिया में मीरबख्सी की महत्वपूर्ण भूमिका थी। किन्तु चयन का अंतिम निर्णय बादशाह का होता था। **'मनसबदारी'** श्रेणी में चयनित व्यक्ति को उसकी योग्यता के अनुसार **'जात'** एवं **'सवार'** का आबंटन किया जाता था। **'जात'** का अर्थ है प्रशासनिक योग्यता व **'सवार'** का सम्बन्ध सैनिक योग्यता से था।

आइने-अकाबरी में मनसबदारों की तीन श्रेणियां अमीर-ए-उम्दा, अमीर व मनबसदारों का उल्लेख किया गया है। मनसबदारों की कुल 66 प्रकार की श्रेणियों का उल्लेख हुआ है, परन्तु व्यवहारिक रूप से 33 प्रकार की श्रेणियों का प्रयोग होता था। अकबर के काल में सबसे छोटा मनसब 10 का एवं सबसे बड़ा मनसब 10000 का था। मनसब में तीन श्रेणियाँ थी। प्रथम श्रेणी के मनसब में मनसबदार को जात पद एवं सवार (घुड़सवार) बराबर-बराबर संख्या में रखने होते थे। द्वितीय श्रेणी के मनसबदार को जात पद के आधे या आधे से अधिक सवार (घुड़सवार) रखने होते थे तथा तृतीय श्रेणी के मनसब में मनसबदार को जात पद के आधे से कम सवार (घुडसवार) रखने होते थे। मनसबदारों की नियुक्ति पदोन्नति व पद से हटाने आदि समस्त अधिकार बादशाह के अधीन थे। मनसबदारों को वेतन में नकद राशि मिलती थी। किन्हीं किन्हीं मनसबदारों को वेतन बदले में जागीरें दी जाती थीं। मुगलकालीन मनसबदारी-व्यवस्था मुगल साम्राज्य का मूल आधार बन गई थी। मनसबदारी व्यवस्था मुगल प्रशासन व सैन्य संगठन का प्रमुख आधार थी। इस प्रणाली ने 16 वीं व 17 वीं शताब्दी ई. के मुगल साम्राज्य को स्थिरता प्रदान की थी।

अपनी प्रगति जाँचिए

4. 'मनसब' का अर्थ क्या होता था?

   (क) पद स्थिति (ख) युद्ध

   (ग) सिक्का (घ) धर्म

5. अकबर ने मनसबदारों की निम्नतम दर्जा क्या रखा था?

   (क) 5 का (ख) 10 का

   (ग) 50 का (घ) 100 का

6. मनसबदारों की कितनी श्रेणियाँ थीं?

   (क) तीन (ख) चार

   (ग) पांच (घ) छः

7. मनसबदारी व्यवस्था में 'सवार' का क्या आशय था?

   (क) सैनिक (ख) मंत्री

   (ग) घुड़सवार (घ) शहजादे

5.4 मुगलकालीन सामाजिक जीवन एवं स्त्रियों की स्थिति

मुगल काल में सामाजिक जीवन सामंतवादी व्यवस्था पर आधारित था। इसमें मुगल बादशाह का स्थान सर्वोच्च था। उसके बाद सामंतों और मनसबदारों का स्थान था। इन्हें अतिविशिष्ट अधिकार, सुविधाएँ प्राप्त थीं। इन अभिजात्य वर्ग के पश्चात मध्यम वर्ग और सबसे नीचे निम्न वर्ग था।

मुगलकालीन समाज में हिन्दुओं का बाहुल्य था। हिन्दु समाज अनेक जातियों और उपजातियों में विभाजित था। जाति-व्यवस्था कठोरता के साथ अस्तित्व में थी। सफाई कार्यों में संलग्न अछूत लोग समाज का निम्नतम वर्ग था। समाज में छुआछूत की भावना विद्यमान थी। हिन्दु समाज के अतिरिक्त जैन धर्म, सिक्ख धर्म, फारसी धर्म, ईसाई तथा मुस्लिम धर्मों को मानने वाले विभिन्न अनुयायी समाज में रहते थे।

मुस्लिमों में भी एक वर्ग उन मुस्लिमों का था, जो विदेशी मुस्लिम थे, इनमें अरबी, ईरानी, तुर्क, मंगोल, उजबेक, हन्सी आदि सम्मिलित थे, तो दूसरे मुस्लिम, भारतीय मुस्लिम थे, जो पीढ़ियों से भारत में रह रहे थे और शेष वे मुस्लिम जो बलपूर्वक हिन्दु से मुस्लिम बनाए गए थे। मुगलकाल में विदेशी मुस्लिमों को महत्वपूर्ण प्रशासनिक पद प्राप्त थे, जबकि भारतीय मुस्लिम वर्ग के लोग निम्न स्तर के समझे जाते थे। मुस्लिम भी शिया व सुन्नी समाज में विभक्त था।

मुगलकालीन समाज में हिन्दु व मुस्लिम दो विभिन्न सामाजिक वर्ग साथ-साथ रहते थे। उनके आचार विचार व जीवनपद्धति में बिल्कुल पृथक-पृथक थे। फिर भी पूरे मुगल काल में औरंगजेब के शासनकाल को छोड़कर हिन्दु तथा मुसलमान परस्पर सहिष्णुतापूर्वक निवास करते थे।

उनमें परस्पर मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध विद्यमान थे। अकबर का शासनकाल के हिन्दु मुस्लिम एकता का स्वर्ण काल था।

स्त्रियों की स्थिति

मुगलकाल में प्राचीन भारत की अपेक्षा स्त्रियों की स्थिति में गिरावट आ गई थी। पुत्री का जन्म हर्ष का विषय नहीं था। बहुत से परिवारों में पुत्री का जन्म अत्यन्त अशुभ माना जाता था और राजपूत परिवारों में तो पुत्री को जन्म लेते ही मार देने की कुप्रथा प्रचलित थी। अकबर ने स्वयं पुत्र प्राप्ति पर शेखमुइनद्दीन चिश्ती की दरगाह पर पैदल जाने की बात कही थी। मुगलकाल में स्त्रियों की स्थिति को निम्न लिखित रूप से वर्णित किया जा सकता है–

1. पर्दाप्रथा– मुगलकालीन मुस्लिम समाज में स्त्रियों में पर्दाप्रथा का प्रचलन था। विशेष अवसरों पर ही स्त्रियाँ घर से बाहर निकलती थीं। मुस्लिम समाज में प्रचलित पर्दा प्रथा हिन्दु समाज की स्त्रियों में भी प्रचलित हो गई थी। परन्तु श्रमजीवी तथा शिल्पी वर्ग की स्त्रियां व ग्रामीण महिलाओं में पर्दा प्रथा नहीं थी। साधारण व निम्न वर्ग की स्त्रियाँ विभिन्न क्षेत्रों में स्वतन्त्रतापूर्वक कार्य करती थी। ऐसा प्रतीत होता है कि हिन्दुओं में पर्दा प्रथा को अपनाने का प्रधान कारण स्त्रियों की सुरक्षा तथा अपनी सामाजिक प्रतिष्ठा को बचाए रखना था।

2. बाल विवाह– मुगलकालीन समाज में बाल विवाह प्रचलित थे। अकबर ने इसे रोकने के प्रयास अवश्य किए थे। फिर भी समाज में बाल विवाह होते थे। विवाह की निर्दिष्ट आयु नहीं थी।

3. बहु विवाह– शासकों, अमीरों और धन सम्पन्न व्यक्तियों में बहु विवाह प्रथा प्रचलित थी। कुरान में एक मुस्लिम को चार पत्नियाँ एक साथ रखने की अनुमति दी गई थी। साधारणतया हिन्दुओं में एक पत्नि रखने की प्रथा विद्यमान थी। शासकों के अधीन में तो सैकड़ों पत्नियाँ तथा उप पत्नियाँ रहती थीं।

4. सती प्रथा– मुगलकाल में हिन्दुओं में विशेष रूप से राजस्थान में सती प्रथा का प्रचलन था। यद्यपि अकबर ने इस प्रथा को रोकने का प्रयास अवश्य किया था।

5. जौहर प्रथा– मुगलकाल में राजपूत समाज में स्त्रियाँ जौहर करती थीं। राजपूत जिस समय रणभूमि में वीरगति प्राप्त कर लेते थे तो उनकी पत्नियाँ स्वेच्छा से सामूहिक रूप से अग्नि की भीषण ज्वाला में कूद कर अपना प्राणान्त कर लेती थीं। अबुलफजल ने भी चितौड़ पर मुगलों के अधिकार के पश्चात वहाँ की राजपूत स्त्रियों के जौहर का वर्णन अपने ग्रन्थ आईने-अकबरी में किया है।

6. स्त्रियों की शिक्षा– मुगलकालीन समाज में बादशाहों, शासकों, सरदारों और धन सम्पन्न व्यक्तियों की पुत्रियाँ और स्त्रियों की शिक्षा का उत्तम प्रबंध था, परन्तु साधारण व्यक्तियों की पुत्रियों व स्त्रियों की शिक्षा व्यवस्था की कोई उचित व्यवस्था नहीं थी। राजघरानों में जहाँआरा, रोशनआरा, नूरजहां, चांदबीबी, जीजाबाई, ताराबाई, मीराबाई, गुलबदन बेगम आदि विदुषी स्त्रियाँ थीं।

7. स्त्रियों का व्यवसाय– मुगलकाल में स्त्रियाँ सामान्यता अपने गृहकार्य में ही व्यक्त रहती थी। कुछ स्त्रियाँ नृत्यगान का व्यवसाय करती थीं। देवदासियाँ मंदिरों

में नृत्य करती थीं व भक्ति गीत गाती थीं। कुछ स्त्रियाँ वस्त्र व्यवसाय में संलग्न थीं। शिक्षित स्त्रियाँ अध्यापन कार्य भी करती थी। समाज में वेश्यावृत्ति करने वाली स्त्रियाँ भी विद्यमान थीं।

8. प्रशासन में राजकुल की स्त्रियाँ– मुगलकाल में राजकुल की स्त्रियों ने प्रशासिकओं के रूप में भी योगदान दिया। अकबर की धाय माँ माहमअनंगा, गढ़ामण्डला की रानी दुर्गावती, अहमदनगर की चाँद बीबी, जहांगीर की पत्नी नूरजहाँ, शिवाजी द्वितीय की माँ ताराबाई ने प्रशासिका के रूप में योगदान दिया।

फिर भी कुल मिलाकर उच्च वर्ग की स्त्रियों की स्थिति तो ठीक थी परन्तु सामान्य वर्ग की स्त्रियों की दशा हीन थी।

अपनी प्रगति जाँचिए

8. मुगलकाल में पर्दाप्रथा किस वर्ग की स्त्रियाँ प्रचलित नहीं थी?
   (क) शासक वर्ग की (ख) अभिजात्य वर्ग की
   (ग) श्रमिक वर्ग की (घ) मध्यम वर्ग की
9. मुगलकाल में बहु विवाह किस वर्ग में प्रचलित नहीं थे?
   (क) शासकों में (2) अमीरों में
   (ग) सम्पन्न व्यक्तियों में (4) साधारण हिन्दुओं में
10. जौहर प्रथा किस समाज में प्रचलित थी?
   (क) राजपूत समाज में (ख) मुस्लिम समाज में
   (ग) जैन समाज में (घ) ईसाई समाज में
11. नूरजहाँ किसकी पत्नि थी?
   (क) अकबर की (ख) जहांगीर की
   (ग) शाहजहाँ की (घ) औरंगजेब की
12. देवदासियाँ कहाँ पर नृत्य गान करती थी?
   (क) मंदिरों में (ख) बाजारों में
   (ग) विद्यालयों में (घ) महलों में

5.5 मुगलकालीन धार्मिक जीवन

सल्तनत युग में प्रारंभ हुए भक्ति आन्दोलन को मुगलकाल में विकसित होने का माहौल मिला। भक्ति आन्दोलन के प्रर्वतकों ने मानव मात्र के दुखों को दूर करने व मोक्ष प्राप्ति के माध्यमों को, अपने-अपने तरीकों को बतलाया। भक्ति के द्वारा मोक्ष प्राप्त करने के तथा समाज में समानता का अधिकार पाने के मूलतत्व प्राचीन धार्मिक व साहित्यिक ग्रन्थों में विद्यमान थे। उन्हें मुगलकाल में भक्ति आन्दोलन के संतों और समाज सुधारकों ने बहुत ही सरलता से समाज के समक्ष रक्षा। मुगलकाल में भक्ति आन्दोलन, रूढ़िवादी, समाज में व्याप्त आडम्बरों, कुरीतियों, अनैतिक रूढ़ियों के विरूद्ध खड़ा हुआ। भक्ति

आन्दोलन से जुड़े महत्वपूर्ण संतों ने शिव व विष्णु की भक्ति का प्रचार-प्रसार किया। दक्षिण भारत में अलवार (वैष्णव संत) एवं नयनार (शैव संत) संतों ने भक्ति मार्ग को जन साधारण में लोकप्रिय बनाया। महाराष्ट्र के संतों ज्ञानेश्वर, हेमाद्रि, चक्रधर, नामदेव तथा तुकाराम ने भक्ति आन्दोलन को गति प्रदान की। इस संतों ने अपने-अपने इष्टदेव की भक्ति पर बल दिया और सभी को एक भगवान की संतान बतलाया और समन्वय का वातावरण बनाया।

मुगल काल में रामानंद, कबीर, गुरूनानक, चैतन्य, श्री वल्लभाचार्य, रामदास, तुलसीदास आदि समन्वयवादी संतों ने अपने उपदेशों से धार्मिक व सामाजिक विषमता व वैमनस्यता को दूर करने का सफल प्रयास किया। उनके उपदेशों से समाज में शांतिपूर्ण वातावरण बना।

मुस्लिम समाज में भी सूफी संतों ने ईश्वर को सुन्दरता व प्रेम करने वाला मानकर, मनुष्य को उसकी भक्ति में लीन हो जाने बात कहीं। इन सूफी संतों या फकीरों ने शेख हजरत निजामुद्दीन औलिया की परम्पराओं को अपनाया। इन संतों में रज्जब, बुल्लेशाह, शेख सलीम चिश्ती, शाह बदखंशी, अहमद फारूकी आदि महत्वपूर्ण स्थान रखते थे। इन सूफी संतों ने लोगों को बतलाया कि मानव जीवन का लक्ष्य ईश्वर से प्रेम करना और अंत में उसी में विलीन होना था। वे सभी धर्मों के अनुयायियों को उपदेश देते थे परन्तु, किसी को भी अपना धर्म त्यागने का आदेश नहीं देते थे। उन्होंने एकेश्वरवाद के सिद्धांत को प्रतिपादित कर विभिन्न सम्पद्रायों के मध्य समन्वय स्थापित करके साम्प्रदायिक मतभेदों को दूर करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की।

भक्ति आन्दोलन के संतों और सूफी संतों के उपदेशों ने साम्प्रदायिक सामंजस्य स्थापित किया। इसी से प्रेषित होकर मुगल बादशाह अकबर ने 'दीन-ए-इलाही' धर्म को प्रतिपादित किया । अकबर धर्म के मामले में बहुत ही सहिष्णु था। विविध धर्मों के आचार्यों की शिक्षाओं को अकबर ने ग्रहण किया और एक नए धर्म (दीन-ए-इलाही) को प्रतिपादित किया, जिसमें सब धर्मों की अच्छी-अच्छी बातों का समावेश किया। अकबर स्वयं दीन इलाही का प्रवर्तक व गुरू बना। इस धर्म का मुख्य सिद्धांत यह था कि ईश्वर एक है और अकबर उसका पैगम्बर है। परन्तु यह धर्म विशेष लोकप्रिय नहीं हुआ और अकबर के शासन की समाप्ति के साथ समाप्त भी हो गया। अकबर के पश्चात् जहांगीर तथा शाहजहाँ ने भी अकबर की भाँति सहिष्णुता की नीति का अनुसरण किया, परन्तु औरंगजेब की असहिष्णुता की नीति ने हिन्दुओं तथा मुस्लिमों के मध्य के पारस्पारिक सद्भाव को समाप्त कर दिया था।

अपनी प्रगति जाँचिए

13. अलवार संत किसकी भक्ति का उपदेश देते थे?

    (क) विष्णु (ख) शिव

    (ग) सूर्य (घ) हनुमान

14. नायनार संत किसकी भक्ति का उपदेश देते थे?

    (क) विष्णु (ख) शिव

    (ग) सूर्य (घ) हनुमान

15. संत ज्ञानेश्वर किस प्रान्त से सम्बन्ध रखते थे?
    (क) पंजाब (ख) महाराष्ट्र
    (ग) केरल (घ) कश्मीर
16. गुरूनानक किस धर्म के प्रवर्तक थे?
    (क) जैन धर्म (ख) बौद्ध धर्म
    (ग) सिक्ख धर्म (घ) शैव धर्म
17. शेख सलीम चिश्ती किस मुगल सम्राट के शासक काल में हुए थे।
    (क) अकबर (ख) जहाँगीर
    (ग) शाहजहाँ (घ) औरंगजेब
18. दीन-ए-इलाही धर्म की स्थापना किस मुगल सम्राट ने की थी?
    (क) अकबर (ख) जहाँगीर
    (ग) शाहजहां (घ) औरंगजेब

5.6 मुगलकालीन आर्थिक जीवन, कृषि, व्यापार एवं वाणिज्य

मुगल काल का आर्थिक जीवन उन्नत अवस्था में था। मुगल कालीन आर्थिक जीवन का समृद्ध स्वरूप अकबर से लेकर औरंगजेब के शासन तक माना जा सकता है। जीवनोपयोगी वस्तुएँ सस्ती व सुलभ थीं। परन्तु औरंगजेब के शासन के पश्चात आर्थिक जीवन में गिरावट आ गई थी। मुगल काल में विभिन्न वर्गों में धन का विभाजन समुचित रूप में नहीं था। बहु संख्यक साधारण लोग परिश्रम करते और समाज के उच्च कुलीन तथा सम्पन्न वर्ग के थोड़े से लोग उनका लाभ उठाकर वैभवपूर्ण, शान-शौकत और विलासता का जीवन व्यतीत करते थे। समाज का आर्थिक ढाँचा निम्न वर्ग के शोषण पर ही आधारित था। फिर भी मुगलकाल में लोगों का आर्थिक जीवन संतोषजनक था।

कृषि–

मुगलकाल में भारत के आर्थिक जीवन का मूल आधार कृषि ही था। ग्रामों में कृषकों का, कृषि पर निर्भर रहने वाले श्रमजीवियों (कृषि श्रमिकों) और कृषि से संबंधित उपकरण बनाने वाले शिल्पियों का भी एक वर्ग था। मुगलकाल में गेहूँ, चावल, जौ, ज्वार, मक्का, बाजरा, कपास, चना, गन्ना, विभिन्न प्रकार की दालें, तिलहन, सन, नील, अफीम, आदि विभिन्न प्रकार की फसलें उत्पन्न की जाती थीं। फलों में आम अंगूर, केला, अनार, सेव, संतरा, ककड़ी, तरबूज आदि का उत्पादन होता था। समुद्रतटीय क्षेत्रों में नारियल की पैदावार होती थी।

कृषि के उपकरण परम्परागत ही थे सिंचाई के साधन पर्याप्त नहीं थे। नहरें बहुत कम होने से कृषक सिंचाई हेतु कुंओं, तालाबों और नदियों के जल पर निर्भर रहते थे। वर्षा के जल पर ही मूलतः निर्भरता थी।

कृषकों का, सरकारी अधिकारी शोषण करते थे। कृषकों पर करों का बोझ इतना अधिक था कि उनकी उपज का अधिकांश भाग कृषि कर के रूप में चला जाता था कृषक लिए गए ऋण व उस ऋण पर लगे ब्याज को चुकाने में ही परेशान रहता था। कृषकों का सारा जीवन ही ऋण के बोझ में दबा रहता था।

व्यापार तथा वाणिज्य

मुगल काल में आंतरिक व विदेशी व्यापार उन्नत अवस्था में था। मार्गों पर सुरक्षा व्यवस्था का समुचित प्रबंध रहता था। व्यापार व वाणिज्य के लिए समृद्धशाली व्यापारिक नगर और मण्डियाँ विकसित हो गयी थीं। पटना, आगरा, फतेहपुर सीकरी, दिल्ली, लाहौर, बुरहानपुर, बनारस आदि प्रमुख व्यापारिक नगर विकसित हो गए थे। इन नगरों को आपस जोड़ने वाली अनेक सड़कें निर्मित की गई थीं। उपर्युक्त सभी नगर एक विशाल राजमार्ग (ग्रांड ट्रेक रोड) से जुड़े हुए थे। इस प्रमुख राजमार्ग के अतिरिक्त अन्य मार्ग भी महत्वपूर्ण थे जिनके द्वारा प्रमुख व्यापारिक जुड़े हुए थे। गंगा, यमुना, सिन्ध, नर्मदा आदि नादियों में जलमार्ग के साधन के रूप में व्यापारिक जहाज व नावें चलती थीं। मुगल काल में एशियायी व यूरोपीय देशों के साथ भारत के व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित थे। व्यापारिक नगरों से जल व स्थल मार्गों से आंतरिक व बाह्य व्यापार सम्पन्न होता था। इनके अतिरिक्त बन्दरगाहों और समुद्री मार्गों से भी देशी व विदेशी व्यापार सम्पन्न होता था। भारत के पश्चिमी समुद्री तट पर लारी (लाहौरी), खंभात, भड़ौच, सूरत, द्वारका, गोवा, मालावार, (कोचीन–कालीकट) बन्दरगाह मुख्य थे। भारत के पूर्वी समुद्री तट पर मछली पटटनम, अंलेजी, जलेसर, श्रीपुर, चटगाँव, सतगाँव व सुनारगाँव प्रसिद्ध बन्दरगाह थे। इन बन्दरगाहों से भारत का व्यापारिक माल विदेशों में और विदेशों से व्यापारिक माल भारत में विक्रय के लिए आता था। भारत से बाहर जाने वाली व्यापारिक वस्तुओं में सूती, ऊनी व रेशमी वस्त्र, मिर्च–मसाले, नील, अफीम और औषधियाँ मुख्य थीं। भारत में आयात होकर आने वाली वस्तुओं में सोना, चांदी, घोड़े, हाथी दांत, मूंगे, अम्बर, मणि–माणिक्य, सुगन्धित पदार्थ प्रमुख थे। विदेशी व्यापार भारत में अनुकूल था। आंतरिक व्यापार भी काफी समृद्ध व उन्नत अवस्था में था।

मुगल काल में अकबर के शासन काल में अंग्रेज, पुर्तगाली और डच आदि यूरोपीय लोग व्यापारिक गतिविधियों में सक्रिय हो गए थे। अकबर के बाद में तो उनकी व्यापारिक गतिविधियों में उत्तरोत्तर वृद्धि होने से मुगल प्रशासकों का आर्थिक जीवन में प्रशासनिक नियंत्रण शिथिल होता गया।

अपनी प्रगति जाँचिए

19. मुगल काल में आर्थिक जीवन का मूल आधार क्या था?

(क) व्यापार (ख) उद्योग

(ग) कृषि (घ) कारखाने

20. मुगलकाल में कृषि हेतु कृषक किसके जल पर मुख्य रूप से निर्भर था?

(क) वर्षा के जल पर (ख) नहरों के जल पर

(ग) कुंओं के जल पर (घ) तालाबों के जल पर

21. भड़ौच बन्दरगाह किस राज्य के समुद्र तट पर स्थित था?
    (क) बंगाल (ख) तमिलनाडू
    (ग) केरल (घ) गुजरात
22. मुगलकाल में कृषकों का कौन शोषण करते थे ____________?
    (क) सरकार अधिकारी (ख) शासक
    (ग) व्यापारी (घ) मोगला

5.7 स्थापत्य कला

मुगल काल में स्थापत्य कला को अपूर्व वैभव प्राप्त हुआ। मुगलों की स्थापत्य कला में भारतीय तथा फारसी (ईरानी) शैली का सुन्दर समन्वय मिलता है। मुगलकालीन स्थापत्य कला के अंतर्गत ऊँचे गुम्बद, भवनों के कोने पर पतले व छोटे मीनार, पतले स्तम्भ, नुकीली मेहरावें, रंग बिरंगी पच्चीकारी, जड़ाऊ काम, सुन्दर नक्कासी आदि विशेषताएँ समाहित थीं।

मुगल स्थापत्य कला का इतिहास बाबर से प्रारंभ होता है। उसने आगरा, धौलपुर, ग्वालियर तथा अन्य स्थलों पर अनेक भवन निर्माण योजनाओं को आरंभ किया। हुमायूं को प्रतिकूल राजनीतिक परिस्थितियों में के कारण स्थापत्य-शिल्प को विकसित करने का अवसर ही नहीं मिला। अपने शासन के प्रारंभिक वर्षों में उसने दिल्ली में **'दीन पनाह'** (विश्व का आश्रय) नामक नगर का निर्माण करवाया था, लेकिन इस नगर के अवशेष उपलब्ध नहीं है। इस तरह मुगल स्थापत्य के विकास में बाबर और हुमायूं का योगदान विशेष उल्लेखनीय नहीं कहा जा सकता।

अकबर के शासन काल में मुगल कालीन स्थापत्य कला का सुव्यवस्थित विकास देखने को मिलता है। दिल्ली में स्थित हुमायूं का मकबरा भारतीय एवं फारसी स्थापत्य परम्पराओं के समन्वय का सुन्दर उदाहरण है। अकबर ने आगरा, लाहौर और इलाहाबाद के किलों का निर्माण कराया। अकबर की सर्वाधिक महत्वकांक्षी और भव्य स्थापत्यीय योजना **फतेहपुर सीकरी** (विजयनगर) नगर की स्थापना थी। फतेहपुर सीकरी में महल, प्रशासकीय कार्यालय तथा मण्डप निर्मित कराए। यहाँ पर स्थित सबसे महत्वपूर्ण स्थापत्य स्मारकों में **जामी मस्जिद व बुलन्द दरवाजा माने जाते हैं। सलीम चिश्ती की दरगाह भी महत्वपूर्ण श्रद्धा का स्मारक माना जाता है। दीवान-ए-खास, जोधाबाई का महल, बीरबल का महल व पंचमहल** प्रमुख भवन हैं। आगरा से लगभग छः किलोमीटर पश्चिम में सिकन्दरा में स्थित अकबर का अकबरा, अकबर के जीवन की अंतिम स्थापत्य योजना थी जिसे जहाँगीर ने पूरा किया था।

जहाँगीर को स्थापत्य कला से विशेष लगाव नहीं था। उसे चित्रकला से अधिक लगाव था। उसने अकबर का मकबरा पूरा करायस। इसके अतिरिक्त नूरजहाँ के पिता एतमाउद्दौला का आगरा में स्थित मकबरा एवं लाहौर के निकट शाहदरा में स्थित जहाँगीर का मकबरा, भारतीय ईरानी स्थापत्य शैली में नूरजहाँ के निर्देशन में निर्मित हुए।

शाहजहाँ के शासन काल में मुगलस्थापत्य कला अपने चरमोत्कर्ष पर पहुँच गई थी। शाहजहाँ ने अपने अधिकांश भवनों को प्राकृतिक पृष्ठभूमि, कृत्रिम नहरों और फौबारों से युक्त उद्यानों के मध्य में निर्मित कराया। शाहजहाँ ने आगरा के लाल किले में दीवान-ऐ-आम, दीवान-ए-खास खास महल, शीशमहल, मुसम्मन बुर्ज (चमेली महल) अंगूरी बाग और मोती मजिस्द का निर्माण कराया। शाहजहाँ ने अपने नाम पर एक नवीन राजधानी शाहजहाँ बाद की दिल्ली में नींव डाली, जिसका निर्माण 1648 ई. में पूरा हुआ। लाल किला यहाँ का प्रसिद्ध महल दुर्ग था। मुगलों द्वारा निर्मित यह अंतिम किला था। **लाल किला के अन्दर दीवान-ए-आम, खास महल, रंग महल निर्मित कराए गए। शाहजहाँबाद में शाहजहां ने जामी मस्जिद नामक प्रसिद्ध मस्जिद का निर्माण कराया। परन्तु आगरा में शाहजहां की पत्नी मुमताज महल (अर्जुमन्द बानो बेगम) का मकबरा ताजमहल, उसके द्वारा निर्मित भवनों में सर्वोत्कृष्ट और भव्यतम स्मारक है।** सुन्दरता, दिव्यता, अलंकरण, रचना-कृति और कलापूर्ण बनावट के यह विश्व के प्रमुख आश्चर्य में सम्मिलित किया गया है। ताजमहल में मुगलों द्वारा विकसित सभी शैलियों का सुन्दर समन्वय है। ताजमहल की विशेषता इसका विशाल गुम्बद और किनारे पर चारों कोनों पर स्थित चार मीनारें हैं। इसे **'संगमरमर में साकार स्वप्न'** भी कहा गया है।

चित्र क्र. 5.1

शाहजहां द्वारा निर्मित यह स्थापत्य कला का अद्भुत एवं अद्वितीय कृति है। मुमताज को याद में निर्मित की गई है।

चित्र क्र. 5.2

अकबर काल में निर्मित यह कृति अनुपम है ।
यही संत शेरप सलीम चिश्ती यहाँ निवास करते थे।

चित्र क्र. 5.3

फतेहपुर सीवरी (आगरा से 26 मील) लगभग 39 कि.मी. दूर सीकरी गांव के पास स्थित है।

शाहजहां के पश्चात् औरंगजेब ने स्थापत्य कला के क्षेत्र में कोई उल्लेखनीय कार्य नहीं किया। उसने दिल्ली में मोतीमस्जिद और लाहौर में जामा मस्जिद व औरंगाबाद में बीबी का मकबरा आदि का निर्माण कराया। यद्यपि औरंगजेब के पश्चात् भी इमारतों का निर्माण होता, लेकिन उनका वो स्तर नहीं रहा, जो मुगलों की महान स्थापत्य कला का था।

अपनी प्रगति जाँचिए

23. मुगल स्थापत्य कला शैली किन स्थापत्य शैलियों का सुन्दर समन्वय है?
    (क) तुर्की और फारसी (ईरानी) शैलियों
    (ख) फारसी (ईरानी) और भारतीय शैलियों
    (ग) तुर्की और अफगान की शैलियों
    (घ) मध्य एशियायी (तैमूरी) और भारतीय शैलियों
24. अकबर का मकबरा कहाँ स्थित है?
    (क) आगरा (ख) दिल्ली
    (ग) फतेहपुर सीकरी (घ) सिकन्दरा
25. फतेहपुर सीकरी नगर की स्थापना किस मुगल बादशाह ने की थी?
    (क) अकबर (ख) जहांगीर
    (ग) शाहजहां (घ) औरंगजेब
26. जहांगीर का मकबरा कहाँ स्थित है?
    (क) आगरा (ख) शाहदरा
    (ग) दिल्ली (घ) इलाहाबाद
27. लाल किला का निर्माण किस मुगल बादशाह ने कराया था?
    (क) अकबर (ख) जहांगीर
    (ग) शाहजहां (घ) औरंगजेब
28. ताजमहल का निर्माण किस मुगल बादशाह ने कराया था?
    (क) अकबर (ख) जहांगीर
    (ग) शाहजहां (घ) औरंगजेब

5.8 अपनी प्रगति जाँचिए प्रश्नों के उत्तर

1.	(ग)	11.	(ख)	21.	(घ)
2.	(ख)	12.	(क)	22.	(ख)
3.	(क)	13.	(क)	23.	(घ)
4.	(क)	14.	(ख)	24.	(क)
5.	(ख)	15.	(ख)	25.	(ख)
6.	(क)	16.	(ग)	26.	(ग)
7.	(ग)	17.	(क)	27.	(ग)
8.	(ग)	18.	(क)	28.	(ग)
9.	(घ)	19.	(ग)		
10.	(क)	20.	(क)		

5.9 सारांश

1526 ई. में पानीपत के प्रथम युद्ध में बाबर ने इब्राहीम लोधी को पराजित कर भारत में मुगल साम्राज्य की नीवं रखीं। बाबर के पश्चात् हुमायुं, अकबर, जहांगीर, शाहजहां, औरंगजेब मुगल वंश के उल्लेखनीय शासक हुए। अकबर को राष्ट्रीय सम्राट होने का गौरव प्राप्त है। अकबर मध्यकालीन भारत का महान सम्राट माना जाता है। मुगल सम्राट जहांगीर, शाहजहां और औरंगजेब के शासनकाल में मुगल साम्राज्य अपने वैभव की पराकाष्ठा पर रहा। मुगलों की प्रशासनिक व्यवस्था में सम्राट (बादशाह) सर्वोच्च स्थान पर माना जाता था। मुगल शासकों ने अपना प्रशासन सुव्यवस्थित रूप से संचालित करने के लिए उसे केन्द्रीय, प्रान्तीय, नगरीय तथा ग्रामीण स्तर पर विभाजित किया था। मुगलकालीन प्रशासन में मनसबदारी व्यवस्था के अंतर्गत प्रशासन संचालित था। मुगल कालीन समाज हिन्दु व मुस्लिम इन दोनों वर्गों में मुख्य रूप से विभाजित था। मुगलकाल में सम्पन्न वर्ग की स्त्रियों को छोड़कर अन्य सामान्य वर्गों में स्त्रियों की स्थिति सम्मानजनक नहीं थी। पर्दाप्रथा, बहुपत्नि प्रथा, बालविवाह, जौहरप्रथा, सतीप्रथा ने स्त्रियों की सामाजिक स्थिति को दयनीय कर दिया था। मुगलकालीन धार्मिक जीवन में भक्ति आन्दोलन के हिन्दु संतों व सूफी संतों ने सद्भाव का वातावरण बनाने में सराहनीय कार्य किया। मुगलकाल में भी देश कृषि प्रधान ही रहा, परन्तु कृषकों पर करों का बोझ अधिक था। विभिन्न लघु एवं कुटीर उद्योग ग्रामों में संचालित थे। नगरों में विभिन्न उद्योग-धंधे विकसित अवस्था में थे। मुगल काल में आंतरिक व विदेशी व्यापार उन्नति पर था।

मुगलकालीन स्थापत्य कला भारतीय व फारसी (ईरानी) कला शैलियों का मिश्रित परिणाम थी। अकबर व शाहजहां के शासन काल में स्थापत्य कला का चरमोत्कर्ष रहा। शाहजहां का शासन काल मुगल स्थापत्य के लिए स्वर्णिम काल माना जाता है।

5.10 मुख्य शब्दावली

- मुगलकालीन प्रशासन एवं संस्थाएँ
- मनसबदारी व्यवस्था
- मुगलकालीन सामाजिक व्यवस्था
- स्थापल्य कला
- धार्मिक जीवन
- आर्थिक जीवन

5.11 स्व-मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. मुगल शासन व्यवस्था में 'मीरबखशी' किसे कहा जाता था?
2. मुगलकालीन शासन व्यवस्था में प्रांतीय शासन का प्रधान क्या कहलाता था?
3. मनसबदारी प्रथा का प्रचलन किस मुगल शासन ने प्रांरभ किया था?
4. मुगलसेना कितने भागों में विभक्त थी?
5. मुगलकाल में हिन्दु स्त्रियों की स्थिति पर प्रकाश डालिए।
6. मुगल कालीन स्त्री शिक्षा पर प्रकाश डालिए।
7. मुगल कालीन स्थापत्य स्थलों नाम वाताहर।

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. मुगल कालीन केन्द्रीय प्रशासनिक व्यवस्था पर प्रकाश डालिए।
2. मुगलकालीन प्रांतीय प्रशासनिक व्यवस्था का वर्णन कीजिए।
3. मुगलकालीन मनसबदारी व्यवस्था पर निबंध लिखिए।
4. मुगलकालीन समाज पर प्रकाश डालिए।
5. मुगलकाल में स्त्रियों की स्थिति पर प्रकाश डालिए।
6. मुगलकाल की धार्मिक स्थिति का वर्णन कीजिए।
7. मुगलकालीन आर्थिक जीवन पर प्रकाश डालिए।
8. मुगलकालीन स्थापत्यकला पर निबंध लिखिए।
9. अकबर व शाहजहां कालीन स्थापत्यकला पर प्रकाश डालिए।

5.12 सहायक पाठ्य सामग्री

1. बी.के. श्रीवास्तव, भारत का इतिहास, साहित्य भवन, आगरा, 2008।
2. बी.के. श्रीवास्तव, मध्यकालीन भारत का इतिहास, एस.बी.पी.डी. पब्लिकेशन्स, आगरा, 2012।
3. राधेशरण, मध्यकालीन भारत की सांस्कृतिक संरचना, म.प्र. हिन्दी अकादमी, भोपाल (प्रथम संस्करण), 1998।
4. नीरज, श्रीवास्तव, मध्यकालीन भारत (प्रशासन, समाज एवं संस्कृति) ओरियंट ब्लैकस्वॉन प्रा. लि. हैदराबाद, (द्वितीय संस्करण) 2010।
5. बी.एन. लूनिया, भारतीय संस्कृति, कमल प्रकाशन, इन्दौर (प्रथम संस्करण), 1988-89।